बाण-कृत

हर्षचरित

पूर्वार्ध, उच्छ्वास १–४

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

सूर्यनारायण चौधरी

प्रकाशक

संस्कृत-भवन, कठौतिया

पो० काभा, जिला पूर्णियाँ

(बिहार)

प्रथम संस्करण] मार्च १९५० ई० [मूल्य २॥)

प्रकाशक
संस्कृत-भवन, कठातिया
पो० काझा, जिला पूर्णियाँ
(विहार)

प्रथम संस्करण १०००

बुद्ध-संवत् २४९३
फागुन—विक्रम-संवत् २००६

मुद्रक
ज्योतिष प्रकाश प्रेस
विश्वेश्वरगंज, बनारस

दान-सूची

(जुलाई १९४८ से फरवरी १९५० तक)

संस्कृत-भवनके पुस्तकालय और प्रकाशन-कार्यके लिए जिन उदार दाताओंने आर्थिक सहायता देनेकी कृपा की है, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए हम उनकी नामावली नीचे प्रकाशित करते हैं।—

	दाता	दान
१	श्री कामेश्वरनारायण सिंह, नरहन, दरभंगा ...	१५०)
२	शिक्षा-मंत्री, विहार ...	१५०)
३	सेठ जगन्नाथ जी बाजोरिया धर्मार्थ-निधि, काशी* ...	१०१)
४	श्री सेठ जुगलकिशोर बिरला, दिल्ली ...	१००)
५	जिला अफसर, पूर्णियाँ	७५)
६	शिक्षा-विभाग, विहार	६२)
७	कमिश्नर, भागलपुर	५०)
८	श्री रुद्रनारायण चौधरी, कठौतिया, पूर्णियाँ ...	२५)
९	श्री छोगमल जी, गुलाबबाग, पूर्णियाँ ...	२१)
	योग	७३४)

---

* निधिसे सहायता पाकर इतने ही रुपएकी पुस्तकें पारितोषिक आदिमें वितरणके लिए दी गईं।

विषय-सूची

निवेदन

पटना विश्वविद्यालयके एम० ए० क्लास (१९३३–३५) में गद्य-साहित्यके अन्तर्गत 'जातकमाला' के साथ 'हर्षचरित' हमारा पाठ्य-ग्रन्थ था। एम० ए० परीक्षाकी तैयारीमें मैंने इन दोनों ग्रन्थोंका अध्ययन किया था और गद्य-पत्रमें मुझे १०० में ६७ अङ्क प्राप्त हुए थे।

१९३७ के अक्तूबरमें मैंने हर्षचरितका अनुवाद आरम्भ किया और सवा दो वर्षोंतक प्रायः प्रतिदिन परिश्रमपूर्वक थोड़ा-थोड़ा करते हुए १९३९ के दिसम्बरमें सम्पूर्ण ग्रन्थका अनुवाद पूरा किया। अनुवाद-कार्यमें, विशेषतः दुरूह स्थलोंके अनुवादमें मैंने अनेक ग्रन्थोंसे, जिनका उल्लेख उत्तरार्धके 'निवेदन' में किया जा चुका है, यथेष्ट सहायता ली है। अनुवादमें मूलके लम्बे वाक्योंके टुकड़े कर दिये हैं और प्रायः पाद-टिप्पणियाँ देकर श्लिष्ट पदों एवं वाक्योंके अर्थोंका स्पष्टीकरण किया है। अलङ्कारों एवं कुछ दुर्बोध शब्दोंके अनुवादमें मुझे कहीं-कहीं बड़ी कठिनाई हुई है। मेरे जानते इस भाषान्तरमें जितनी त्रुटियाँ हैं, वास्तवमें उनसे कहीं अधिक होंगी। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके किसी अन्य अनुवादके अभावमें मेरा यह त्रुटिपूर्ण प्रयास भी क्षम्य समझा जाना चाहिए।

पूर्वार्धके भी अन्तिम दो उच्छ्वास ओरियन्टल कालेज पत्रिका (लाहौर) में पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। सम्पूर्ण पूर्वार्ध प्रेसमें देनेके पहले मैंने दोहरा लिया है। चतुर्थ उच्छ्वास दोहराते समय मैंने देखा कि उक्त पत्रिकाके सुयोग्य सम्पादकने उसमें कहीं-कहीं बढ़िया सुधार किया है। सम्पादकने प्रथम दो उच्छ्वास भी उस पत्रिकामें प्रकाशनार्थ मँगवाये थे। किंतु लाहौरके दंगेके कारण ये उसमें प्रकाशित न हो सके, इनकी प्रेस-कापी भी वहीं रह गई।

समयाभावके कारण जो पाठक इस सम्पूर्ण ग्रन्थको न पढ़ सकें वे लम्बे वर्णनोंके बीचके अंशको छोड़कर, केवल आरम्भिक और अन्तिम वाक्योंको ही देखते हुए तथा सरल शैलीमें लिखे हुए वार्तालाप आत्म-चिन्तन आदिको पढ़ते हुए ही इस ग्रन्थके सारांशसे अवगत हो सकते हैं। यदि पाठकोंने इस संस्करण का आदर किया तो मैं इस जटिल ग्रन्थका एक संक्षिप्त और सरल संस्करण निकालना चाहता हूँ, जो अलङ्कारोंके भारसे बहुत-कुछ मुक्त होगा। किंतु उसमें महत्त्वकी, विशेषतः ऐतिहासिक महत्त्वकी, कोई बात न छूटे, इसका ध्यान रखा जायगा।

पुस्तकके अन्तमें दी गई अनुक्रमणियाँ, आशा है, अनुसन्धान-कार्यके लिए उपयोगी सिद्ध होंगी। नामानुक्रमणीमें देवताओंके नामोंको प्रायः छोड़कर तथा प्रलापमें कहे गये काल्पनिक नामोंको सर्वथा छोड़कर भरसक अन्य सभी व्यक्ति-वाचक नाम दिये गये हैं। शब्दानुक्रमणीमें दूसरे शब्दोंके अतिरिक्त प्रायः सभी पशु-पक्षियों तथा वनस्पतियोंके नाम, तथा धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्वके शब्द दिये गये हैं। शब्दानुक्रमणी शीघ्रतामें तैयार की गई है, अतः सम्भव है कि इसमें कितने ही आवश्यक शब्द छूट गये हों और कितने ही अनावश्यक शब्द आ गये हों।

हिन्दीमें हर्षकालीन इतिहासके अध्ययनके लिए श्री राधाकुमुद मुकर्जी-प्रणीत 'श्रीहर्ष' तथा श्री गौरीशंकर चटर्जी-कृत 'हर्षवर्धन' नामक ग्रन्थ उपादेय हैं। इन विद्वान् लेखकोंने अपने ग्रन्थोंके लिखनेमें बाण एवं हर्षकी कृतियोंके अतिरिक्त चीनी यात्री ह्वेनसाँगके यात्रा-विवरण, तत्कालीन ताम्र-पत्रों, शिला-लेखों, मुद्राओं आदि साधनोंका पूरा उपयोग किया है।

कठौतिया
माघ, संवत् २००६

सूर्यनारायण चौधरी

भूमिका

बाणका जीवनचरित

वात्स्यायन-वंश भागीरथीके प्रवाहके समान पावन था। उस वंशमें असाधारण द्विज हुए थे। वे कवि, वक्ता और गृह-मुनि थे। नम्र नैष्ठिक दयालु और क्षमाशील थे। वे गङ्गा और शोणके संगमसे बहुत दक्खिनकी ओर तथा शोणसे कुछ ही पूरबकी ओर प्रीतिकूट नामक स्थानपर रहते थे। यह स्थान वर्त्तमान विहार प्रान्तके पटना या शाहाबाद जिलेमें कहीं होगा। प्रसवोंकी परम्परासे वात्स्यायन-वंशका अनवरत विकास हुआ था। छठी सदीके अन्तमें अथवा सातवींके आरम्भमें उसी वंशमें बाणका जन्म हुआ था। उसका वंश-वृक्ष यों है: —

- वत्स
  - कुबेर (बहुत पीढ़ियोंके बाद हुआ था)
    - अच्युत
    - ईशान
    - हर
    - पाशुपत
      - अर्थपति
        - भृगु
        - हंस
        - शुचि
        - कवि
        - महीदत्त
        - धर्म
        - जातवेदस्
        - चित्रभानु
          - बाण
        - त्र्यक्ष
        - अहिदत्त
        - विश्वरूप

बाणके पिताका नाम चित्रभानु था और माताका राजदेवी। पुत्रके बाल्य-कालमें ही माताका देहान्त हो गया था। पिताको पुत्रसे बड़ा स्नेह था और उसीने माताका काम किया। उचित समयपर उसके उपनयन

आदि संस्कार किये गये। वह भी अपने पूर्वजोंके अनुरूप ही बड़ा मेधावी निकला। चौदह वर्षकी आयुसे भी कुछ पहले ही स्नातक हो गया था। इसी समय उसका पिता भी अकाल ही अस्त हो गया। पिताकी मृत्युसे बाणको बड़ा शोक हुआ। दिन-रात जलते हृदयसे वह कुछ दिनों तक घरमें ही रहा।

तरुणावस्थामें ही माता-पिताके संरक्षणसे वंचित होकर बाण कुछ-कुछ उच्छृंखल हो गया। इसी अवस्थामें उसने शिशु-सुलभ कुछ चपलताएँ कीं। किंतु ये चपलताएँ क्या थीं इसका पता हमें नहीं है। उसे भिन्न-भिन्न देशोंके देखनेका प्रबल कुतूहल हुआ; अतः पूर्वजोंसे प्राप्त सम्पत्ति एवं अटूट विद्या-क्रमके रहनेपर भी साथियोंकी एक टोली बनाकर वह घरसे निकल पड़ा और बड़ोंके उपहासका पात्र बना। नैष्ठिक ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होनेपर भी उसके साथियोंमें विविध श्रेणीके लोग थे, यह उसकी उदार-हृदयताका परिचायक है। उसके साथियों में पुरुष भी थे और स्त्रियाँ भी थीं, वैज्ञानिक भी थे और कलाकार भी थे, बौद्ध भिक्षु भी थे और जैन भिक्षु भी थे, धूर्त भी थे और परिव्राजक भी थे। कलकार साथियोंमें सुनार, कुम्हार, संगीत-शास्त्रके उपाध्याय, गायक, वंशी और मृदंग बजाने-वाले, लिपिकार, पुस्तक-वाचक, कथक, लेखक और कवि थे। कवियोंमें प्राकृत-कवि और भाषा-कवि थे। यहाँपर 'भाषा' और 'प्राकृत'का अलग अलग उल्लेख होनेके कारण 'भाषासे' प्राकृतका बोध नहीं होता है, प्रत्युत प्राकृतसे भिन्न एक स्वतंत्र भाषाका। सम्भवतः यह हिन्दीकी ही अग्रदूतिका थी। अपनी लम्बी यात्रामें बाण राज-कुलों, गुरु-कुलों, गुणियोंकी सभाओं और विद्वानोंकी मण्डलियोंके सम्पर्कमें आया। इस सम्पर्कसे विपुल अनुभव प्राप्त कर वह घर लौट गया। चिरकालके बाद उसे देखकर उसके भाई-बन्धुओंके हृदयमें मानो स्नेहकी नदी उमड़ आई और उन्होंने उसका यथोचित सत्कार किया।

तब वह अपने भाई-बन्धुओंके घरोंमें सुखसे रहने लगा। उनके

घरोंके आँगनोंमें सोमके हरे-भरे पौधे लहराते थे। वहाँ मृग-चर्मोंपर बिखेरे हुए यज्ञके द्रव्य सूखते रहते थे। बालिकाएँ जंगली धानोंकी बलि बिखेरती रहती थीं। शिष्यगण हरे कुशोंका पूला तथा पलासकी लकड़ी लाया करते थे। यति-जन कमण्डल बनानेके लिए मिट्टी मलनेमें लगे रहते थे। होमके धुएँसे वृक्षोंके किसलय धूसर हो गये थे। गोपाल बालक चञ्चल नव-चात बछड़ोंका लालन किया करते थे। सुग्गों और मैनोंके द्वारा अध्ययन आरम्भ करनेपर उपाध्यायोंको विश्रामका आनन्द मिलता था।

भयानक ग्रीष्म-समयमें वहाँ एक दिन राजाधिराज हर्षके भाई कृष्णके यहाँसे मेखलक नामक एक विश्वस्त दूत आया। वह कृष्णका एक पत्र और संदेश लाया था। पत्रका सार अंश यह था—"आप-सरीखे बुद्धिमानों-को सफलताके बाधक विलम्बको पास नहीं फटकने देना चहिए।" संदेशका मुख्य अंश यों था—"जिस तरह दूरस्थ कुमुदालयके प्रति चन्द्र विना कारण ही स्निग्ध होता है, उसी तरह आपके प्रति मेरा हृदय स्निग्ध हो रहा है। आपका चित्त शिशु-सुलभ चपलताओंसे पराङ्मुख नहीं था, अतः किसी असहनशील व्यक्तिने चक्रवर्ती हर्षसे आपके बारेमें कुछ अनुचित बात कह दी। दुर्जनोंने भाँति भाँतिसे उन्हें आपके विरुद्ध किया। किंतु सत्यको खोजनेवाले हम लोगोंने दूरस्थ होनेपर भी आपको प्रत्यक्षकी तरह जान लिया और सम्राट्से निवेदन किया—'प्रायः प्रथम वयसमें सभी लोग चपलताएँ करनेके अपराधी होते हैं।' यह बात स्वामीने मान ली। अतः आप अविलम्ब राजकुलमें आवें। आपको न तो सेवाकी विषमतासे विषाद होना चाहिए और न सम्राट्के समीप आनेका भय ही होना चाहिए। ये स्वामी अमृतमय हैं और अहङ्कारसे सर्वथा रहित हैं। ये साधुओंका सन्मान करते हैं और गुणोंके पारखी हैं। इनकी आत्मा मित्रोंके उपकारके लिए है। इनकी प्रभुता भृत्योंकी भलाईके लिए है। इनकी विद्वत्ता पण्डितोंके उपकारके लिए है। इनकी लक्ष्मी

बन्धुओंकी भलाईके लिए है। इनका ऐश्वर्य दुःखियों के उपकारके लिए है। इनका सर्वस्व द्विजोंकी भलाईके लिए है।"

मेखलकके चले जानेपर बाण सोचने लगा—"क्या करूँ? राजाने मुझे कुछ और ही समझ लिया है। अकारण बन्धु कृष्णने इस तरहका संदेश भेजा है। और, सेवा कष्ट-दायक है। दासत्व विषम है[1]। राज-कुल अति गम्भीर है। वहाँ पूर्वजोंसे आई मेरी प्रीति नहीं है और न वंश-परम्परासे आई पहुँच ही है। न ऐसा कोई उपकार है, जिसके स्मरणसे अनुग्रह हो सकता है; और न बचपनकी सेवा ही है, जिसके कारण स्नेह हो सकता है। न ऐसा ज्ञान है, जिसके आदान-प्रदानका प्रलोभन हो सकता है। न अतिशय विद्या है, जिसके कारण उत्कण्ठा हो सकती है। न सुन्दर आकृति है, जिसके कारण आदर हो सकता है। न तो सेवाके अनुकूल-वाणी कौशल ही है, न तो विद्वानोंकी सभाके योग्य चतुरता ही है। पर जाऊँगा अवश्य। मेरे जानेपर भगवान् शिव सब प्रकारसे अच्छा ही करेंगे।" इस तरह सोचकर उसने जानेका निश्चय किया।

दूसरे दिन उठ सबेरे ही नहाकर उसने धवल रेशमी वस्त्र धारण किये और अक्षमाला लेकर प्रस्थानके उपयुक्त वैदिक सूक्त और मंत्र बार-बार पढ़े। दूधसे नहलाकर फूल, धूप, लेप, दीप आदिसे उसने देवोंके देव शिवकी पूजा की। द्विजोंको यथाशक्ति धन दिया। एक श्रेष्ठ गायकी प्रदक्षिणा की। उजले लेप, उजली माला तथा उजले वस्त्रसे अपनेको विभूषित किया। गिरिकर्णिकाके फूलोंसे अपने कानोंको अलङ्कृत किया। शिखामें सरसोंके कुछ दाने रख लिये। माताके सदृश, स्नेहसे आर्द्र हृदयवाली, श्वेत-वसना, पिताकी छोटी बहिन मालतीने यात्राके समय किये जाने योग्य सभी मंगल-कार्य किये। बन्धुओंके घरकी वृद्धा स्त्रियोंने आशीर्वाद

१ बाणने हंसवेगके मुखसे सेवाके कष्ट और दासत्वकी हीनतापर लम्बा व्याख्यान दिलाया है (पृ० १२१-२७३ उ)।

दिया। वृद्ध सेविकाओंने अभिनन्दन किया। गुरु-जनोंने आज्ञा दी। कुलके बड़ोंने उसके शिरको सूँघा। पक्षियोंने मधुर स्वरसे प्रस्थान करनेका उत्साह बढ़ाया। शुभ मुहूर्तमें आमके पल्लवसे युक्त एक पूर्ण कलशको देखा। कुल-देवताओंको प्रणाम कर वह प्रीति-कूटसे बाहर निकला।

पहले दिन चण्डिका-कानन पारकर वह मल्लकूट नामक गाँवमें गया। वहाँ जगत्पतिनामक भाई और मित्रने उसका सत्कार किया। दूसरे दिन भागीरथी नदी पारकर उसने यष्टिग्रहक नामक जंगली गाँवमें रात बिताई। तीसरे दिन वह शिविर पहुँचा, जो मणितार नगरके निकट अजिरवती[1] नदीके किनारे बनाया गया था। वह राज-भवनसे कुछ ही दूरपर ठहर गया।

स्नान भोजन और विश्रामके बाद मेखलकके साथ वह राज-द्वार गया। वहाँ उसने झुण्डके झुण्ड हाथी घोड़े और ऊँट देखे तथा सहस्त्रों आतपत्र और चामर देखे। वहाँ पराजित सामन्तगण लज्जासे मानो अपने ही अङ्गोंमें गड़े जा रहे थे। नाना देशोंके भूपाल वहाँ आये हुए थे, जो सम्राट्के दर्शनके समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ जैन, आर्हत, शैव, पाराशरी भिक्षु और ब्रह्मचारी, एकान्तमें बैठे हुए थे। सभी देशोंके निवासी और म्लेच्छ जातियोंके लोग वर्तमान थे। सभी देशोंसे आये हुए राज-दूत उपस्थित थे। राजद्वार को देखकर बाणको बड़ा विस्मय हुआ। कुछ देरके बाद पारियात्र नामक द्वारपाल भीतरसे बाहर आया। उसके बताये हुए रास्तेसे बाण कुछ भीतरकी ओर गया, जहाँ उसने वनायु, आरट्ट, कम्बोज, भरद्वाज, सिन्ध और फारस देशके अश्वोंसे विभूषित एक अश्वशाला देखी। कुछ और आगे बढ़नेपर उसने सम्राट्के प्रिय हाथी दर्पशातको देखा। उसे देखकर उसने सोचा—"इसका निर्माण करनेमें निश्चय ही पर्वत

१ अजिरवती (=राप्ती) के किनारे श्रावस्ती नगरी थी। मणितार (या मणितारा) अवध में कहीं होगा।

परमाणु बनाये गये होंगे, नहीं तो यह गौरव कहाँसे होता? यह एक आश्चर्य है।" तब हजारों भूपालोंसे भरे तीन आँगनोंको पारकर वह चौथे आँगनमें गया। वहाँ उसने चक्रवर्ती हर्षको देखा। सम्राट्को देखकर वह रोमाञ्चित हो गया और आनन्द के उष्ण अश्रु बहाने लगा।

निकट जाकर उसने स्वस्ति शब्दका उच्चारण किया। सम्राट्ने उसे देखकर गम्भीर स्वरसे पूछा—"क्या यही वह बाण है।" द्वारपालने निवेदन किया—"देवकी जैसी आज्ञा हो। यह वही है।" सम्राट्ने समीपमें बैठे हुए मालव-राजके पुत्र (=माधवगुप्त?) से कहा—"यह महान् भुजङ्ग है।" राजाका वचन न समझकर वह चुप रहा और राज-मण्डली भी चुप बैठी रही। एक क्षणके बाद बाणने निवेदन किया—"देव, आप क्यों ऐसी आज्ञा दे रहे हैं? जान पड़ता है जैसे आप सत्यको नहीं जानते हैं, मुझपर विश्वास नहीं कर रहे हैं, पर-वश हैं, लोक-वृत्तान्तसे अनभिज्ञ हैं। लोगोंका स्वभाव और प्रवाद स्वेच्छदाचारी और विचित्र होता है। किंतु बड़ोंको तो सत्यको देखना चाहिए। आप मुझे साधारण आदमी की तरह अन्यथा न समझें। मैं ब्राह्मण हूँ और सोम-पान करनेवाले वात्स्यायनोंके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार उचित समयपर किये गये हैं। मैंने अङ्गों सहित वेद अच्छी तरह पढ़ा है और यथाशक्ति शास्त्र भी सुने हैं। विवाहके समयसे मैं गृहस्थ हूँ। मेरी क्या भुजङ्गता (=लम्पटता) है? दोनों लोकोंके अविरुद्ध चपलताओंसे मेरा शैशव शून्य नहीं था, इतना मैं मानता हूँ। इसके लिए मेरा हृदय पश्चात्ताप-सा कर रहा है। किंतु इस समय सम्राट्के शासनमें कौन व्यक्ति अविनयका अभिनय करनेकी मनसे भी कल्पना कर सकता है? मनुष्योंकी बात तो दूर, आपके प्रभावसे भौरे भी मानो भयभीत होकर मधु पीते हैं, चक्रवाक भी प्रियाओंकी अतिशय आसक्तिसे लज्जित होते हैं, बन्दर भी मानो चकित हो चपलताएँ करते हैं, हिंसक पशु भी मानो सदय हो मांस खाते हैं। समय पाकर स्वामी

स्वयं ही मुझे जान जायँगे।" इतना कहकर वह चुप हो गया। सम्राट् भी "हम लोगोंने ऐसा सुना था" कहकर चुप हो गया। उसने संभाषण आसन-दान आदि सत्कारके बाह्य उपचारोंसे बाणको अनुगृहीत नहीं किया; किन्तु स्नेह-पूर्ण दृष्टि-पातोंसे आन्तरिक प्रीति प्रकट की। अस्ताभिलाषी सूर्यके नीचे उतरनेपर राज-लोकको विसर्जित कर सम्राट्ने भीतर प्रवेश किया। बाण भी निकलकर अपने निवास- स्थानपर चला गया।

उसने मनमें सोचा—"देव हर्ष अति उदार हैं। बाल्यावस्थाकी मेरी अनेक चपलताओंसे कुपित होने पर भी मन ही मन वे मुझसे स्नेह करते हैं। यदि मैं उनकी आँखोंका काँटा होता, तो वह मुझे दर्शन देने की कृपा नहीं करते। वह चाहते हैं कि मैं गुणवान् होऊँ। धिक्कार है मुझे, जिसका मन अपने ही दोषसे अन्धा हो गया है और जो बाह्य अनादरसे दुःखी होकर इस प्रकारके गुणवान् राजाके प्रति तरह तरहकी चिन्ताएँ कर रहा है। अब सभी प्रकारसे वैसा ही करूँगा, जिससे समय पाकर ये मुझे ठीक ठीक जान लेंगे। ऐसा निश्चय कर दूसरे दिन शिविरसे निकलकर वह अपने मित्रों और बन्धुओंके घर चला गया। वहाँ वह तबतक रहा, जब सम्राट् स्वयं ही इसके स्वभावको जानकर प्रसन्न हुआ। उसने राज-भवनमें पुनः प्रवेश किया। सम्राट्ने उसे सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठापर पहुँचा दिया।

अनन्तर, शरद् ऋतुका आरम्भ हुआ, जब आकाश धुली तलवारकी तरह निर्मल हो जाता है, सूर्य चमकता है, चन्द्रमा स्वच्छ हो जाता है, लाल, नीले और उजले कमल विकसित होते हैं, शेफालिकाओंसे रातें शीतल हो जाती हैं, यूथिकाओंका परिमल फैल जाता है, खिलते हुए कुमुदों से दशों दिशाएँ श्वेत हो जाती हैं तथा सप्तच्छदकी धूलसे समीर धूसर हो जाता है। ऐसे समयमें बाण अपने बन्धुओंको देखनेके लिए ब्राह्मणोंके निवास-स्थान अपने प्रीतिकूटको लौट आया, जहाँ प्रति दिन वेदाभ्यास होता था, व्याख्यान और तर्क होते थे, सुधा-वर्षी काव्यालाप

होते थे। सम्राट्के समीप बेतके आसनपर बैठनेवाले बाणको देखकर उसके बन्धुगण परम प्रसन्न हुए। गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल नामके चचेरे भाइयोंने बाणसे हर्षका चरित सुननेकी इच्छा प्रकट की। किंतु सौ पुरुषोंकी आयुसे भी हर्षचरितका अविकल वर्णन संभव न देखकर वह उसके एक ही अंशका वर्णन करनेको प्रस्तुत हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल ही उसने सभी बन्धुओंके सामने हर्षचरित कहना आरम्भ किया और लगभग छः अध्यायोंमें पूर्वजों-सहित हर्षके कतिपय कार्योंका वर्णन किया।

हर्षके इन कतिपय कार्योंका वर्णन इस हर्षचरित नामक ग्रन्थमें है। इसमें कुल आठ अध्याय (उच्छ्वास) हैं। आरम्भके सवा दो अध्यायोंमें लेखकने अपनी आत्म-कथा लिखी है। इसीके आधारपर इस निबन्धका यह ऊपरी अंश तैयार किया गया है।

हर्षचरितके अतिरिक्त बाणकी दूसरी विख्यात कृति कादम्बरी नामक कथा-ग्रन्थ है। इसे समाप्त करनेके पूर्व ही बाण स्वर्गीय हो गया। उसके विद्वान् पुत्र पुलिन (पुलिन्ध्र या पुलिन्द) ने उस अधूरी कथाको पूरा किया। कादम्बरीके उत्तर भागकी भूमिकामें उसने कहा है:—

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एव स मया न कवित्व-दर्पात्॥

[पिताके स्वर्गीय होनेपर उनकी वाणीके साथ ही पृथ्वीपर (कादम्बरी—) कथाका जो क्रम टूट गया, उसकी असमाप्तिसे होनेवाले सज्जनोंके दुःखको ही देखकर मैंने इसे आरम्भ किया है, न कि कवित्वके गर्वसे।]

कहा जाता है कि कवि मयूर और मातङ्गदिवाकर भी बाणके सम-कालीन थे। राजशेखरने 'सुभाषितावली' और 'शार्ङ्गधरपद्धति' में कहा है: —

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥

[यह वाग्देवताका ही प्रभाव है कि बाण और मयूरके समान मातङ्गदिवाकर भी श्रीहर्षका सभासद् हुआ ।] बाण किसी साधारण राजाका सभासद् नहीं था, वरन् सम्राट् हर्षका था, जो परोपकारी, महादानी, गुण-ग्राही, निरभिमान और विद्वान् था ।

दिवंगत पिताको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए पुत्र पुलिनने कहा है:—

आर्यं यमर्चति गृहे गृह एव लोकः
पुण्यैः कृतश्च यत एव ममात्मलाभः ।
सृष्टैव येन च कथेयमनन्यशक्या
वागीश्वरं पितरमेव तमानतोस्मि ॥

[जिन आर्यकी लोग घर घर पूजा करते हैं पुण्योंके ही कारण जिनका मैं पुत्र हुआ हूँ, और जिन्होंने इस अनन्यशक्या अर्थात् दूसरोंसे न हो सकने योग्य कथाकी सृष्टि की है, उन वाचस्पति पिताको प्रणाम करता हूँ ।] बाणकी मृत्युके बादसे आजतक अन्य अनेक कवियों और काव्य-मर्मज्ञोंने बाणकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है । मृत्युके बाद उसकी जो कीर्ति-चन्द्रिका फैली वह क्षण-भङ्गुर नहीं थी । वह दिन दिन बढ़ती ही गई और आज तो पृथ्वीके एक बड़े भागमें व्याप्त है ।

बाणके काव्य-सम्बन्धी विचार

'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित'के अतिरिक्त बाणभट्ट 'चण्डीशतक' तथा 'पार्वती-परिणय' का भी लेखक कहा जाता है, किंतु 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' की रचना तथा शैलीकी दृष्टिसे 'पार्वती-परिणय'को बाणकी रचना कहनेमें संदेह होता है । कीथके कथनानुसार 'पार्वती-परिणय'का प्रणेता वामन भट्टबाण है, जो पन्द्रहवीं शताब्दीमें हुआ था । 'चण्डीशतक' में चण्डीकी आराधनामें प्रायः एक सौ श्लोक रचे गये हैं ।

'कादम्बरी' एक गध्य-बद्ध कथा—उपन्यास है। 'हर्षचरित' एक आख्यायिका है। इस ग्रन्थको इस युगमें हम ऐतिहासिक उपन्यास कह सकते हैं। बाणके 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' दोनों प्रसिद्ध ग्रन्थ आदिसे अन्ततक, कुछ श्लोकोंको छोड़कर गद्य-बद्ध होनेपर भी काव्य कहे जाते हैं। 'हर्षचरित'के ही एक आरम्भिक श्लोकसे सूचित होता है कि वह काव्य है और दूसरे श्लोकमें स्वयं बाणने आख्यायिका-कारोंको 'कवीश्वर' अर्थात् श्रेष्ठ कवि कहा है। संस्कृतमें गद्य तथा पद्य दोनों काव्य कहे जाते हैं, यदि उन्हें काव्यका स्वरूप प्राप्त हो। 'काव्य-प्रकाश' के प्रणेता मम्मटने भी कहा है—"दोष-रहित, गुण-युक्त तथा कहीं-कहीं अनलंकृत भी अर्थात् सर्वत्र अलंकारोंसे युक्त और कहीं-कहीं अलङ्कार-रहित भी शब्द और अर्थ ही काव्यका स्वरूप है।" ये सभी बातें बाणके ग्रन्थों में पाई जाती हैं, इसलिए उसकी कृतियाँ काव्य हैं और वह कवि है।

बाणने 'हर्षचरित' की प्रस्तावनामें कवियों और काव्योंके सम्बन्धमें जो विचार व्यक्त किये हैं उनसे उसकी समालोचक प्रवृत्तिपर प्रकाश पड़ता है। यह प्रस्तावना साहित्यिक समालोचनाके इतिहासके अध्ययन-के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कविने काव्यके गुण-दोषोंका विवेचन करते हुए उसका जो आदर्श चित्र उपस्थित किया है वह इस युगके लिए भी आदर्श ही है।

बाणने कुकवियोंकी निन्दा करते हुए उनकी तुलना कोकिलों तथा कुत्तोंसे की है—"संसारमें कुकवि लाल आँखोंवाले कोकिलोंके समान प्रायः रागात्मक बुद्धिवाले, बहुत बोलनेवाले, कामोद्दीपन करनेवाले अथवा स्वेच्छाचारी होते हैं। बुरी प्रकृतिवाले कुत्तोंके समान घर-घर वर्णनात्मक काव्य करनेवाले असंख्य हैं। अधिकांश कवि नव-निर्माण करनेवाले नहीं होते हैं।" चोर-कविकी निन्दा करते हुए उसने कहा है—"सज्जनोंके बीच अप्रसिद्ध कवि दूसरोंके वर्णों अर्थात् शब्दोंको बदलनेसे तथा

रचनाके चिह्नोंको छिपानेसे चोर समझा जाता है।''

बाणने सामान्य रूपसे कुकवियोंकी निन्दा की है। वह व्यक्तिगत आक्षेपोंसे दूर है। उसने किसी भी कवि-विशेष अथवा काव्य-विशेषकी निन्दा नहीं की है, पर अनेकों कवियों तथा काव्योंकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। उसने कवि हरिचन्द्रके 'गद्य-प्रबन्ध'की उपमा राजासे दी है; सातवाहनके स्वभावोक्ति नामक अलंकारसे युक्त सूक्तियोंके अविनाशी तथा सुन्दर संग्रहकी तुलना विशुद्ध जातिके रत्नोंके अक्षय भंडारसे की है। प्रवरसेनको 'सेतुबन्ध' के द्वारा समुद्र-पारतक व्याप्त होनेवाली कीर्ति मिली थी, और भासको अपने नाटकोंसे प्रचुर यश मिला था। इन दोनों कवियों को जो कीर्ति प्राप्त हुई, उसका उल्लेख करते हुए बाणने स्वयं उसका मनोहर गान करनेमें हाथ बँटाया है। उसकी दृष्टिमें 'वासव-दत्ता' एक उत्कृष्ट रचना है, जिसके प्रकाशित होनेपर कवियोंका अभिमान अवश्य चूर्ण हो गया। उसने 'बृहत्कथा'को शिवकी लीलाकी भाँति विस्मय-जनक बताया है। वह नम्रतापूर्वक स्वीकार करता है कि आढ्य-राजकी कृतिके स्मरणमात्रसे उसकी वाणी कविता करनेसे विमुख हो रही थी। कालिदासकी प्रशंसामें कविने उसीके योग्य कहा है—"मधुर और सरस मञ्जरीके सदृश कालिदासकी सूक्तियोंके उच्चारणमात्रसे किसे आनन्द नहीं होता?"

अब बाणके आराध्यतम कविका उल्लेख करना है, जिसके आगे वह नतमस्तक है। वह है महाभारतका प्रणेता व्यास, जो सर्वज्ञ तथा प्रजा-पतिके तुल्य है। "उसने अपनी वाणीसे महाभारतको उसी तरह पवित्र कर दिया, जिस तरह सरस्वती नदीने भारतवर्षको।"

विविध प्रान्तोंके कवियोंकी शैलीकी समालोचना करते हुए कविने कहा है—"उत्तरके कवियोंका काव्य श्लेष-प्रधान तथा पश्चिमके कवियोंका काव्य अर्थ-प्रधान होता है। दाक्षिणात्योंके काव्यकी विशेषता है उत्प्रेक्षा नामक अलंकार। गौड़देशीय कवियोंकी रचनामें बहुधा शब्दाडम्बर

पाया जाता है।" इसके बाद कविने आदर्श शैलीका निरूपण करते हुए कहा है—"नया विषय, स्वभावोक्ति नामक अलंकार, सहज श्लेष, स्फुट रस, सुन्दर शब्दों की योजना—इनका एकत्र होना कठिन है।"

अन्तमें काव्यके प्रयोजनके सम्बन्धमें बाणके विचारको स्पष्ट करना है। जिस तरह सुन्दर सेजपर सोकर मनुष्य सुखपूर्वक नींदसे उठता है, उसी तरह आख्यायिकाके पढ़नेसे मनुष्यको अनायास ज्ञान होता है, अर्थात् सेजकी भाँति काव्यका प्रयोजन ज्ञान देना है, यह ज्ञान किसी एक विषयका नहीं, वरन सकल विषयोंका होना चाहिए।

बाणके उपर्युक्त विचारोंसे हम निम्न-लिखित निष्कर्षपर पहुँचते हैं—प्रजापति-तुल्य नव-निर्माणकारी सर्वज्ञ कवि ही आदर्श कवि है; स्वभावोक्तिसे युक्त, सहज श्लेषसे सम्पन्न, स्फुट रससे अन्वित, सुन्दर शब्दोंकी योजनावाली शैली ही आदर्श शैली है; समस्त विश्वके लिए सकल विषयोंके ज्ञानका वितरण ही काव्यका आदर्श प्रयोजन है। इस निष्कर्षको हम यों कह सकते हैं कि कविको सर्वज्ञ होना चाहिए; उसे समस्त विश्वमें सहज, सरस तथा सुन्दर शैलीमें नवनिर्माणवत् काव्यके द्वारा ज्ञानका प्रसार करना चाहिए। आजसे हजारों वर्ष पहले भारतवर्षमें एक ऐसा ही आदर्श कवि हुआ था, जिसने आदर्श शैलीमें रचित आदर्श काव्यके द्वारा इस आदर्श प्रयोजनको सिद्ध किया था। महाभारत तथा उसके अन्तर्गत गीताका प्रणेता अवश्य ही सर्वज्ञ था; महाभारतकी शैली सहज, सरस तथा सुन्दर है; वह नई सृष्टिके समान है, और आज भी समस्त संसारमें सभी प्रसिद्ध भाषाओंके माध्यमसे समग्र ग्रन्थ अथवा इसके चुने उपाख्यानों तथा गीतासे मिलनेवाला ज्ञान व्याप्त है। इसीलिए तो कवि बाण व्यासके आगे नतमस्तक है।

परवर्ती काव्योंमें बाणका उल्लेख

ज्यों ज्यों समय बीता त्यों त्यों बाणकी प्रसिद्धि बढ़ती गई, उसकी कृतियों की प्रामाणिकता स्वीकृत होती गई। कवियों और आलङ्कारिकोंने

अपनी कृतियोंमें प्रसङ्गवश बाणका या उसकी कृतियोंका उल्लेख किया और उनसे आवश्यक उद्धरण भी लिये।

(१) रुय्यकने अपने 'अलङ्कार-सर्वस्व'में कई बार 'हर्षचरित'का उल्लेख किया है। उसने यह ग्रन्थ लगभग ११५०ई० में लिखा था। 'अलङ्कार-सर्वस्व'में उद्धृत हर्षचरित के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं:—

" 'यस्तपोवनमिति मुनिभिः' (जिसको मुनियोंने तपोवन, अनुवाद पृ० १२३) इत्यादि हर्षचरिते श्रीकण्ठाख्यजनपदवर्णने"; "तथा च हर्षचरिते 'अनुरूपो देव्या इत्यात्मसंभावना' (देव देवीके अनुरूप हैं, यह अपनी बड़ाई है, अनु० पृ०४२-४३) इत्यादौ, तथा 'यामीति न स्नेहसदृशम्' (यदि कहूँ कि मैं जाता हूँ तो यह स्नेहके अनुरूप नहीं, अनु० पृ० १५०) इत्यादावुक्तविषय आक्षेपः"; "यथा हर्षचरिते राज्यवर्धनं प्रति श्रीहर्षोक्तिषु 'यदि बाल इति सुतरामपरित्याज्योऽस्मि...' " (यदि मैं बालक समझा जाऊँ तब तो किसी प्रकार भी त्याज्य नहीं हूँ, अनु० पृ० ६१ उ); 'नमन्तु शिरांसि धनूंषि वा कर्णपूरीक्रियन्तामाज्ञा मौर्व्यो वा' (शिर झुकावें या धनुष, आज्ञा पालन करें या प्रत्यञ्चा चढ़ावें, अनु० पृ० ७९ उ)।

अलङ्कार-सर्वस्वसे यह भी पता चलता है कि रुय्यकने हर्षचरित-वार्तिक नामक हर्षचरितकी टीका लिखी थी।

(२) ग्यारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्रने अपनी 'औचित्यविचारचर्चा'में 'कादम्बरी'से 'स्तनयुगमश्रुस्नातं' यह आर्या तथा 'जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतः' यह श्लोक उद्धृत किया है। क्षेमेन्द्र ने अपने 'कविकण्ठाभरण'में स्व-रचित 'पद्यकादम्बरी'से कई पद्य उद्धृत किये हैं। 'पद्यकादम्बरीका' आधार 'कादम्बरी' ही है।

(३) रुद्रट-प्रणीत 'काव्यालङ्कार'की अपनी व्याख्यामें नमिसाधुने कथा और काव्यके दृष्टान्तके लिए क्रमशः 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित'का नाम लिया है। उसने यह व्याख्या १०६९ ई० में लिखी थी।

(४) ग्यारहवीं शताब्दीमें मम्मटने ग्रन्थ या ग्रन्थकारका उल्लेख किये विना ही 'हर्षचरित'से स्वभावोक्तिके दृष्टान्तके लिए यह पद्य उद्धृत किया है:—

पश्चादङ्घ्रिं प्रसार्य '......' (सोकर उठा हुआ घोड़ा पाँवको पीछेकी ओर फैला रहा है, अनु० पृ० ११७)।

(५) ग्यारहवीं शताब्दीके प्रथमार्धमें भोजराजने अपनी कृति 'सरस्वतीकण्ठाभरण'में लिखा है—'यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः' (गद्य-रचनामें बाण जितना निपुण है उतना पद्य-रचनामें नहीं)।

(६) धनंजय-कृत 'दशरूपक'में बाण और 'कादम्बरी'का उल्लेख है। यह धनंजय भोजके चचा मुञ्जकी राज-सभाका पण्डित था।

(७) क्षेमेन्द्रने अपने 'सुवृत्ततिलक'में पद्य-बद्ध 'कादम्बरी-कथा-सार'के रचयिता अभिनन्दके अनुष्टुप् पद्योंकी प्रशंसाकी है।

(८) नवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें आनन्दवर्धनने अपने 'ध्वन्यालोक'में लिखा है:—

यथा स्थाण्वीश्वराख्यजनपदवर्णने भट्टबाणस्य 'यत्र च मत्तमातङ्ग-गामिन्यः' (वहाँकी प्रमदाएँ मातङ्ग-गामिनी हैं, अनु० पृ० १२३); यथा हर्षचरिते 'समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम्' (विरोधी पदार्थोंके समवाय सी, अनु० पृ० ३१); यथा हर्षचरिते सिंहनादवाक्येषु 'वृत्तेऽस्मिन् महाप्रलये' (इस महाप्रलयके उपस्थित होने पर, अनु० पृ० ७६ ३)। ग्रन्थ या ग्रन्थकारका उल्लेख किये विना ही आनन्दवर्धनने 'हर्षचरित'के द्वितीय उच्छ्वाससे यह वाक्य उद्धृत किया है:—'अत्रान्तरे कुसुमसमययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः फुल्लमल्लिकाधवलाट्टहासो महाकालः' (इसी बीच वसन्त-ऋतुका अन्त करता हुआ, पूर्ण विकसित मल्लिकाओंसे धवल अट्टहास करनेवाला ग्रीष्मकाल बढ़ने लगा, अनु पृ०५५)।

(९) आठवीं शताब्दीमें वामनने अपनी 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति'में 'कादम्बरी'से उद्धरण देते हुए लिखा है:—

'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' इत्यत्रापि, मन्ये, स्म शब्दः कविना प्रयुक्तो लेखकैस्तु प्रमादान्न लिखित इति (भगवान् नारायणका अनुकरण करता था; इस स्थलपर भी, मैं मानता हूँ, कविने 'स्म' अर्थात् 'था' शब्दका प्रयोग किया, किंतु लेखकोंने गलतीसे उसे नहीं लिखा)।

उत्तरकालीन कवियोंने बाणकी प्रशंसामें जो रचनाएँ की हैं उनमेंसे कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं:—

१ शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥—अज्ञात।

२ सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरीकथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ ॥—राजशेखर।

३ शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥—नलचम्पू।

४ युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ॥ —कीर्तिकौमुदी।

५ जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥—गोवर्धनकृत आर्यासप्तशती।

६ केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसंनिधिः ॥ धनपालकृत तिलकमञ्जरी।

७ सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥
—कविराज-कृत राघवपाण्डवीय।

८ श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ—
लंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी—
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥ —श्रीचन्द्रदेव।

९ बाणस्य हर्षचरिते निशितमुदीक्ष्य।

शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति ॥

—सोड्ढल-कृत उदयसुन्दरीकथा ।

१० हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥ —त्रिलोचन ।

११ मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुबन्धौ विधेः ।
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः ॥

—मंख-कृत श्रीकण्ठचरित ।

हर्षचरितकी शैली

आख्यायिका :—हर्षचरित आख्यायिका श्रेणी की रचना है। अमरसिंहसे लेकर विश्वनाथतक अनेक आचार्योंने आख्यायिकाकी परिभाषाएँ दी हैं, जो एक दूसरेसे कुछ-कुछ भिन्न हैं। इन्हें तथा हर्षचरितको देखते हुए हम कह सकते हैं कि आख्यायिकाके लिए इन निम्न-लिखित बातोंका होना आवश्यक है:—

(१) विषयका ऐतिहासिक होना (२) ग्रन्थका उच्छ्वासों में विभाजन (३) प्रत्येक उच्छ्वासमें वक्त्र और अपरवक्त्रनामक छन्दोंमें रचित कुछ पद्योंका होना।

बाण ही आख्यायिकाका पहला लेखक नहीं था। उसने स्वयं आख्यायिकाकार श्रेष्ठ कवियोंको वन्द्य बताया है। पहले पहल कात्यायनने अपने वार्त्तिकोंमें[1] आख्यायिकाका उल्लेख किया है। इन वार्त्तिकोंपर टीका करते हुए पतञ्जलिने महाभाष्यमें वासवदत्ता (सुबन्धु-रचित वासवदत्तासे भिन्न), सुमनोत्तरा और भैमरथी नामक तीन आख्यायिकाओंका उल्लेख किया है। अनेक प्राचीन ग्रन्थोंकी तरह इनके भी नाम ही शेष रह गये हैं।

---

१ लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम् (पा० ४.३.८७);
आख्यान-आख्यायिका-इतिहास—पुराणेभ्यश्च (पा० ४.२.६०)।

हर्षचरितकी शैलीकी तुलना:—बाणने हर्षचरितके प्रारम्भिक श्लोकोंमें व्यासके महाभारत, कालिदासकी सूक्तियों तथा वासवदत्ताकी प्रशंसा की है तथा विविध प्रान्तोंकी काव्य-विशेषताओंका उल्लेख करते हुए दुर्लभ आदर्श शैलीका निरूपण किया है। बाण इस आदर्श शैलीतक नहीं पहुँच सका है; क्योंकि वह स्वयं इसकी दुर्लभताको स्वीकार करता है। व्यास और कालिदासके महाकाव्यों और नाटकोंसे गद्य-बद्ध हर्षचरितकी तुलना नहीं हो सकती। किन्तु श्लेष और समासोंके अतिशय प्रयोग तथा वर्णनोंमें हर्षचरित वासवदत्तासे मिलता जुलता है। किसी अज्ञात संस्कृत-समालोचकके अनुसार कवि बाण तथा कवयित्री शीलाभट्टारिकाके काव्य पाञ्चाली शैलीके हैं, जिसमें शब्द और अर्थका समान 'गुम्फन' होता है।

वर्णन:—हर्षचरित आदिसे अन्ततक देश, नगर, ग्राम, राज-कुल, सेना, परिव्राजक, आश्रम, वन, उत्पात, स्वप्न, यात्रा, उत्सव, मृत्यु, ऋतु, समय आदिके छोटे-बड़े वर्णनोंसे भरा है। साधारणसे साधारण स्थान, अवस्था, और पात्रका भी काफी वर्णन किया गया है, जिससे कथाकी गति धीमी हो गई है। यही कारण है कि इतने बड़े ग्रन्थमें भी हर्षके पर्याप्त चरितोंका वर्णन नहीं हो सका और समूचे ग्रन्थके पढ़नेपर भी ऐतिहासिक की प्यास पूरी तरह नहीं मिट सकती।

हर्षचरितकी द्विविध शैली:—हर्षचरित की शैली दो तरहकी है—वर्णनात्मक और अवर्णनात्मक। वर्णन भी दो तरहके हैं—लम्बा और छोटा। लम्बे वर्णन प्रायः दो-एक ही वाक्यके हैं। एक एक वाक्य पचासों पंक्तियोंमें कई पृष्ठोंतक चला गया है, वाक्यके अन्तमें समापिका क्रिया रहती है, बीच में वर्णित वस्तुके विशेषण और इनके भी विशेषण रहते हैं, ये विशेषण समासों और अलङ्कारोंसे भरे होते हैं। सवा-सौसे भी अधिक पङ्क्तियोंके एक वाक्यमें किया गया नायकका—सम्राट् हर्षका—वर्णन सबसे बड़ा है। इसके अन्तिम दो शब्द हैं—'हर्षम् अद्राक्षीत्' अर्थात् हर्षको देखा। विशेषण-पुञ्जोंमें हर्ष के पलंग, पादपीठ, परिचारक-

परिचारिकाओं, अङ्ग-आभरणों आदिका आलङ्कारिक मनोमोहक वर्णन करके ही कवि संतुष्ट नहीं रहा। उसने मानो सम्राट्के अन्तस्तलमें भी प्रवेश कर पता लगाया है कि दोषोंके लिए अनाश्रयणीय, इन्द्रियोंके लिए निग्रह-रुचि, व्यसनों के लिए नीरस, कामदेव के लिए दुर्ग्रह-चित्तवृत्ति और परकलत्रोंके लिए नपुंसक होते हुए भी वह करुणाका आगार था।

कोई कोई छोटे वर्णन लम्बे समासों तथा अलङ्कारोंसे शून्य होनेके कारण सरल हैं। द्वितीय उच्छ्वासमें प्रीतिकूटसे निकलनेके समय बाणके आत्म-वर्णनमें एक ही उपमाका प्रयोग है, और वह भी अत्यन्त सरल। समास भी प्रायः छोटे-छोटे और सुबोध है। तृतीय उच्छ्वासके शुरूमें शरद्ऋतुके आरम्भका सुन्दर वर्णन अलङ्कारसे रहित होनेके कारण सरल है।

वार्तालाप, प्रलाप, आत्म-चिन्तन, भाषण, प्रयाणमें सैनिकोंके कोलाहल आदिको हम हर्षचरितकी अवर्णनात्मक शैलीके अन्तर्गत रखते हैं। इसमें वाक्य छोटे छोटे और सरल होते हैं। जैसेः—

प्रभाकरवर्धन—'वत्स कृशोऽसि' (वत्स, दुबले हो गये हो)।

भण्डि—देव, तृतीयमहः कृताहारस्य अस्य (देव, इन्हें भोजन किये आज तीसरा दिन हो गया)।

प्रभाकरवर्धन—वत्स, जानामि त्वां पितृप्रियम् अतिमृदुहृदयम्। नार्हसि आत्मानं शुचे दातुम्। निशितमिव शस्त्रं तक्ष्णोति मां त्वदीयस्तनिमा। तदुत्तिष्ठ। कुरु पुनरेव सर्वाः क्रियाः। कृताहारे च त्वयि अहमपि स्वयम् उपभोक्ष्ये पथ्यम्। (वत्स, जानता हूँ कि तुम पितृ-प्रिय हो तुम्हारा हृदय अत्यन्त मृदु है। तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। तुम्हारी दुर्बलता मुझे तेज शस्त्रकी तरह काट रही है। अतः उठो और सभी क्रियाएँ करो। तुम्हारे भोजन करनेपर मैं भी स्वयं पथ्य पाऊँगा)। (पृ० १६–१७ उ)

रसः—अधिकांश संस्कृत काव्योंकी अपेक्षा हर्षचरितमें श्रृंगार रसकी कमी है। शोण-तटपर पर्ण-कुटीमें कुमारी सरस्वती और आगन्तुक नवयुवक

दधीचके हृदयोंमें एक-दूसरेको देखकर प्रेम अङ्कुरित हुआ। दधीचके चले जानेपर दोनों एक-दूसरेके वियोगमें जलने लगे। यहीं कवि ने विप्रलम्भ-श्रृंगारका परिपाक दिखाया है। किन्तु शीघ्र ही सरस्वतीकी कुटीमें दोनोंका मिलन हुआ और कविने एक ही छोटे वाक्यमें सम्भोग श्रृंगारको समाप्त कर दिया है। इसके बाद तो श्रृंगार रस वास्तवमें कहीं है ही नहीं। हर्ष-चरितका प्रधान रस करुण ही है। इसका सुन्दर परिपाक पञ्चम उच्छ्वासमें हुआ है। हर्षके पिता प्रभाकरवर्धनकी असाध्य बीमारी का दृश्य, प्रवाससे लौटे हुए पुत्रका बीमार पिताके साथ मिलन, तथा स्वामीके स्नेह-भाजन वैद्य-कुमार रसायनके अग्नि-प्रवेशका समाचार पाषाण-हृदय व्यक्तिको भी रुला सकता है। मरनेको उद्यत रानियोंके मुँहसे निकले अन्तिम विदाके वाक्य कम करुण नहीं हैं। सती होनेसे पूर्व माता यशोवतीसे 'अम्ब त्वमपि मां मन्दपुण्यं त्यजसि' (मां, तुम भी मुझ क्षीण-पुण्यको छोड़ रही हो) पुत्र हर्षके इस एकही छोटे वाक्यमें करुण रसका सागर भरा है। अष्टम उच्छ्वासमें विन्ध्याटवीका वह दृश्य, जहाँ मरनेको उत्सुक स्त्रियाँ आलाप कर रही हैं और अग्निमें प्रवेश करनेको उद्यत राज्यश्री मूर्छित हो रही है, हृदय-द्रावक है।

परिहासः—हर्षचरितमें कहीं कहीं परिहासके के भी उदाहरण मिलते हैं। यथा—"बाणके बान्धवोंके घरोंमें सुग्गा और मैना द्वारा अध्ययन आरम्भ करनेपर उपाध्यायोंको विश्राम मिलता था (पृ० ५५)। "स्कन्दगुप्तकी नाक निज नृप-वंशके समान लम्बी थी" (पृ०८४ उ)। हर्षचरितकी अनेक अतिशयोक्तियोंमें परीहासका पुट निहित है।

अलङ्कारः—हर्षचरित प्रायः सर्वत्र अलङ्कृत है। पद-पद पर अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और श्लेष मिलते हैं। विरोध, उल्लेख, विभावना, अप्रस्तुत-प्रशंसा, तुल्य-योगिता, भ्रान्तिमान्, काव्यलिङ्ग, अतिशयोक्ति, दीपक, सहोक्ति, निदर्शना आदिका भी प्रयोग हुआ है। श्लेष सर्वत्र सहज नहीं है, अतः भाषा कहीं-कहीं दुरूह हो गई है। श्लेषके अतिशय प्रयोगके

कारण हर्षचरितका अविकल अनुवाद असंभव है। श्लेष-समाससे लदे विशेषण-पुञ्जोंसे बने लम्बे वाक्योंकी तीव्र आलोचनाकी गई है। किन्तु उस युगमें ये शैलीके दोष नहीं, बल्कि गुण समझे जाते थे। सुबन्धु तो प्रति अक्षरमें श्लेष भरनेका गर्व करता है। उपर्युक्त अलङ्कारोंमेंसे कुछके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

उत्प्रेक्षा—'अधर्म इस तरह विदीर्ण हो गया, जैसे यज्ञके खम्भे के लिए लकड़ी काटनेवाले कुठारोंसे कट गया हो'। (पृ० १२१)

विरोध और श्लेष—'वहाँकी प्रमदाएँ मातङ्ग-गामिनी हैं और शीलवती हैं'। 'मातङ्ग-गामिनी' के दो अर्थ हैं, (१) चण्डालके यहाँ जानेवाली और (२) गजगामिनी (पृ० १२३)।

उल्लेख—'उस स्थाण्वीश्वरको मुनियोंने तपोवन, वेश्याओंने काम-मन्दिर, नर्तकोंने सङ्गीतशाला ········ समझा। (पृ० १२३)

विभावना—'मन्द समीरसे झड़ी हुई फूलकी धूलसे आँखोंके पीड़ित नहीं होनेपर भी उसने अश्रु-जल बहाया'। (पृ० ३५)

भ्रान्तिमान्—'सिन्दूर-राशिसे सूर्य-मण्डल लाल हो जानेपर (चक्रवाक आदि) पक्षियोंको संध्या-समय होनेकी शङ्का हुई'। (पृ० १०२-३ उ)

व्याकरणः—बाण आलङ्कारिक ही नहीं, वैयाकरण भी था। कहीं-कहीं तो जान पड़ता है जैसे वह पाणिनिके सूत्रोंको उदाहरणद्वारा समझा रहा हो। एक वाक्यमें 'ललाटंतप' तथा अगले वाक्यमें 'असूर्यंपश्या' (पृ० ५६) का प्रयोग पाणिनिके सूत्र 'असूर्यललाटयोर्दृशितपोः' का स्पष्ट उदाहरण है। हर्षचरितकी भाषा व्याकरण-सम्मत है। किन्तु ढूँढ़नेसे आर्ष प्रयोग भी मिल सकते हैं।

पद्यः—हर्षचरित एक गद्यमय रचना है। किन्तु इसके आरम्भमें तथा बीच-बीचमें कुछ पद्य आ गये हैं। प्रथम उच्छ्वासके आरम्भमें २१ पद्य हैं। अन्य सात उच्छ्वासोंमें से प्रत्येकके आरम्भ में दो पद्य—आर्या-युगल या एक श्लोक और एक आर्या है। आख्यायिका के प्रत्येक उच्छ्वासके आरम्भमें

एक वक्त्र और एक अपरवक्त्र होना चाहिए—भामहके इस नियमका यहाँ पालन नहीं हुआ है। पहले छः उच्छ्वासोंके बीच-बीचमें वक्त्र, अपरवक्त्र, आर्या, श्लोक, वसन्ततिलक, शार्दूलविक्रीडित, और स्रग्धराके १४ पद्य आये हैं। इस तरह कुल २१ + १४ + १४ = ४९ पद्य हुए। किसी प्राचीन समालोचकके अनुसार गद्य-रचनामें बाण जैसा सफल हुआ है वैसा पद्य-रचनामें नहीं। साधारणतः बाणके पद्य सरल, सुन्दर और सूक्तिपूर्ण हैं। कुछ श्लिष्ट पद्य क्लिष्ट जान पड़ते हैं।

सूक्तियाँ— हर्षचरितसे कुछ चुनी हुई सूक्तियाँ नीचे दी जाती हैं:—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसांद्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

अर्थ—'मधुर और सरस मञ्जरीके सदृश कालिदासकी सूक्तियोंके उच्चारणमात्रसे किसे आनन्द नहीं होता।' (पृ० ४)। यह श्लोक बहुत ही लोकप्रिय हो गया है।

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
युगे-युगे व्यतीतानि कस्य ते कस्य वा भवान्॥

अर्थ—'हजारों माता-पिता और सैकड़ों पुत्र-कलत्र युग-युगमें बीत गये। वे किसके हुए या आप किसके हैं'? (पृ० ७ उ)। यह सरल और सुन्दर श्लोक यम-पट दिखानेवालेने गाया था। सम्भवतः यह श्लोक बाणके समयमें खूब प्रचलित रहा होगा। आज भी इस आशयके पद्य या शब्द भारतके गाँव-गाँवमें प्रतिदिन सुननेमें आते हैं।

अङ्गनवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य॥

अर्थ—कृत-प्रतिज्ञ वीरके लिए पृथ्वी आँगनकी वेदी है, सागर क्षुद्र सरिता है, पाताल स्थली है, और सुमेरु पर्वत कीड़ोंका बनाया हुआ मिट्टीका स्तूप है (पृ० ७९२ उ)। यह पद्य भी लोक-प्रिय है।

अब कुछ छोटे-छोटे सार-गर्भित वाक्योंका हिन्दी रूपान्तर-मात्र नीचे दिया जाता है:—

'क्षमा सभी तपोंका मूल है (पृ० ११)। परोपकार सज्जनोंका व्यसन है (पृ० ५४)। सेवा कष्टदायक है, दासत्व विषम है (पृ० ६८)। राजाओंके वास्तविक बन्धु प्रजा हैं (पृ० १७ उ)। जो शोकका शिकार होता है, उसे पण्डित कापुरुष कहते हैं (पृ० ५३ उ)। अनित्यता-नदी अति द्रुत-वाहिनी है' (पृ० १७५ उ)।

सम्राट् हर्ष

स्थाण्वीश्वर (= थानेसर, जि० कर्नाल) में प्रभाकरवर्धन नामक राजा हुआ। उसका दूसरा नाम प्रतापशील था। उसने हूणोंको मार भगाया तथा सिन्ध, गुर्जर (पंजाब, मारवाड़), गान्धार (कान्धार, पेशावर) लाट (दक्षिणी गुजरात, गुजरात-तट, भड़ौच, सूरत), और मालवको जीता[1]। वह बड़ा वीर और उदार था। उसकी प्रजा धार्मिक और सुखी थी।

उसकी रानी यशोवती (या यशोमती) बड़ी पतिव्रता थी। काल-क्रमसे उसने राज्यवर्धन नामक पुत्रको प्रसव किया। पुनः कई वर्षोंके बाद जेठमें कृत्तिका नक्षत्रमें कृष्ण-पक्षकी द्वादशीमें संध्या समयके बीतने पर[2] रानीने हर्षनामक द्वितीय पुत्रको जन्म दिया। जब राज्यवर्धन छः वर्षका और हर्ष दो वर्षका हुआ तब रानीने राज्यश्री नामकी पुत्रीको पैदा किया।

इसी समय रानी यशोवतीके भाई (मालव-राज) ने प्रायः आठ वर्षके भण्डिनामक अपने पुत्रको कुमारोंके अनुचरके तौरपर अर्पित किया।

---

१. हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गुर्जरप्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विप-कूटपाकलो लाटपाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मीलतापरशुः प्रतापशील इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः (अनुवाद पृ० १५४)।

२. ज्योतिषके गणनानुसार हर्षका जन्म ४ जून ५९० ई० को हुआ था।

दोनों कुमारोंको समुचित शिक्षा दी गई। उन्होंने शस्त्र-अभ्यास किया। उनकी कीर्ति समूची पृथ्वीमें फैल गई। एक बार राजाने मालव[1]-राजके पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्तको राज्यवर्धन और हर्षवर्धनके साथी और अनुचर नियुक्त किये। कुमारगुप्त और माधवगुप्त दोनों भाई थे। कुमारगुप्त बड़ा था और माधवगुप्त छोटा। उस समय कुमारगुप्त की अवस्था अठारह वर्षकी थी और राज्यवर्धन भी इसी उम्रका था।

राज्यश्रीने भी नृत्य-गीत आदि कलाओंकी शिक्षा पाई। क्रमसे वह तरुणी हुई। रानीकी भी राय लेकर राजाने मौखरि-वंशके राजा अवन्ति-वर्माके पुत्र ग्रहवर्माके साथ राज्यश्रीका विवाह किया।

एक बार राजाने राज्यवर्धनको, जो कवच पहननेके योग्य हो गया था, हूणोंको मार भगानेके लिए उत्तरापथ[2] भेजा। हर्ष भी उसके पीछे पीछे कुछ दूरतक गया। किंतु वह हिमाचलके अंचलमें ही शिकार खेलता रहा। कुछ समयके बाद राजधानीसे राजाकी बीमारी 'दाह-ज्वर' का समाचार आया। हर्ष तुरंत थानेसरकी ओर लौटा। रास्ते में बिना खाये पिये तीसरे दिन वह राजधानी पहुँचा। राजाकी बीमारी बहुत बढ़ गई थी। उसे मरणासन्न समझकर रानी यशोवती चिता जलाकर सती हो गई। शोकाकुल हर्षको अन्तिम उपदेश देते हुए राजाने कहा—"प्रजा पालन करो, शत्रुओंको निःशेष करो।' इतना कहते ही राजाने सदाके लिए अपनी आँखें मूँद लीं। नगरके समीप ही सरस्वती नदीके किनारे राजाका दाह-संस्कार हुआ।

हूण-विजय कर राज्यवर्धनके लौटनेपर दोनों भाई एक दूसरेसे गले गले मिले, दोनोंके हृदय दुःखसे मानो फटने लगे। राज्यवर्धन राज्यकी

---

१ उस समय मालव नामके दो तीन प्रान्त थे—जैसे पूर्वी मालव, पश्चिमी मालव तथा मालव खास।

२ उत्तरापथसे यहाँ थानेसरसे उत्तर या उत्तर-पश्चिमके भू-भागका बोध होता है।

ओरसे विरक्त होकर संन्यास-ग्रहणकी बात सोचने लगा और हर्षने भी अग्रजका अनुसरण करना ही श्रेयस्कर समझा। इतनेमें ही राज्यश्रीका परिचारक संवादक आ पहुँचा। उसने कहा—"देव,...जिस दिन राजा (प्रभाकरवर्धन) के मरनेकी बात फैली उसी दिन दुरात्मा मालव-राजने अपने पुण्य-सहित देव ग्रहवर्मा (राज्यश्रीके पति) को इस संसारसे पृथक् कर दिया। राजकुमारी राज्यश्री भी, जिसके चरणोंको लोहेकी काली बेड़ियोंने चूमा, चोर स्त्रीकी भाँति बाँधी जाकर कान्यकुब्जकी कारामें डाल दी गई। और, किंवदन्ती है कि सेनाको नायक-हीन समझकर वह दुर्बुद्धि इस देशको भी लेनेकी इच्छासे यहाँ आना चाहता है।[1]" (पृ० ५९)। मालव-राजद्वारा किये गये इस अपमानके प्रकट होने पर शोकका स्थान क्रोधने ले लिया। दस हजार घुड़सवारोंके साथ भण्डिको लेकर राज्यवर्धनने मालवके विरुद्ध प्रयाण किया।

बड़े भाईके चले जानेपर जब हर्ष उदास होकर किसी किसी तरह दिन काट रहा था तो एक बार राज्यवर्धनके घुड़सवार कुन्तलने आकर निवेदन किया—"यद्यपि राज्यवर्धनने मालव-सेनाको अनायास ही हरा दिया, तथापि गौडाधिपने मिथ्या उपचारोंसे उसका विश्वास उत्पन्न किया और अपने ही घरमें उस निश्शस्त्र एकाकी और विश्रब्धको मार डाला[2]"

१ 'देव,...यस्मिन्नहन्यवनिपतिरुपरत इत्यभूद्वार्ता तस्मिन्नेव देवो ग्रहवर्मा दुरात्मना मालवराजेन जीवलोकमात्मनः सुकृतेन सह त्याजितः। भर्तृदारिकापि राज्यश्रीः कालायसनिगडयुगलचुम्बितचरणा चौराङ्गनेव संयता कान्यकुब्जे कारायां निक्षिप्ता। किंवदन्ती च यथा किलानायकं साधनं मत्वा जिघृक्षुः सुदुर्मतिरेतामपि भुवमाजिगमिषतीति।'

२ हेलानिर्जितमालवानीकमपि गौडाधिपेन मिथ्योपचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितमश्रौषीत्।

(पृ० ६५-६६ उ)। यह सुनकर गौड़ाधमके प्रति हर्षकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और सेनापति सिंहनादने अपने उत्तेजक भाषणसे उसमें घीकी आहुति डाली। हर्षने दिग्विजय एवं पृथ्वीको निर्गौड़ (गौड़ाधिपसे रहित) करनेकी भीषण प्रतिज्ञा की और युद्धोद्योग की आज्ञा दी।

दिग्विजयके लिए प्रयाण करनेपर हर्षने एक बार अपने एक शिविरमें पहुँचकर राज-कुमारोंके ये उद्योग-द्योतक वार्तालाप सुनेः—"हिमालय और गन्धमादनका अन्तर अत्यल्प है, उत्साही व्यक्तिके लिए तुर्क देश हाथ भर है और शक-स्थान खरगोशका एक पग। पारियात्र[1] देशकी युद्ध-यात्रा आसान है। शौर्यरूप शुल्कसे दक्षिणापथ सुलभ है, इत्यादि।" उसी समय आसामके राज-कुमारके यहाँसे प्रचुर उपहारोंके साथ मित्रताका संदेश लेकर हंसवेग नामक दूत आया। हर्षने मित्रताकी प्रार्थना स्वीकार की और अपनी ओरसे भी बहुत-सा उपहार भेजा। रास्तेमें एक दिन उसने लेख-हारक (=पत्र-वाहक) से सुना कि राज्य-वर्धनके भुजबलसे उपार्जित मालव-राजका अशेष साधन लेकर भण्डि आ गया है। भेंट होनेपर भण्डिने भाईकी मृत्युकी सारी घटना कह सुनाई तथा राज्यश्रीके बारेमें बताया—"देव, राज्यवर्धनके स्वर्गीय होनेपर तथा गुप्त नामक व्यक्ति द्वारा कुशस्थल (=कान्यकुब्ज) लिया जानेपर बन्धनसे निकलकर देवी राज्यश्रीने सपरिवार (=परिचारिकाओं सहित) विन्ध्य-वनमें प्रवेश किया, यह बात मैंने लोगोंसे सुनी। उसकी खोजमें अनेक जन भेजे गये, किन्तु वे अबतक नहीं लौटे हैं।[2]" (पृ० १२९–३०)।

---

१. विन्ध्याचल और अर्वली पर्वतके पश्चिम, पश्चिमी मालवा। पारियात्र देशसे चलकर ह्वेनसांग मथुरा पहुँचा था।

२. "देव, देवभूयं गते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले देवी राज्यश्रीः परिभ्रश्य बन्धनाद्विन्ध्याटवीं सपरिवारा प्रविष्टेति लोकतो वार्तामश्रृणवम्। अन्वेष्टारस्तु तां प्रति प्रभूताः प्रहिता जना नाद्यापि निवर्तन्ते।"

हर्षने मालव-राजके साधनका निरीक्षण किया और यथाधिकारी अध्यक्षोंको स्वीकार करनेके लिए आदेश दिया। राजाने भण्डिको गौड़की ओर बढ़नेकी आज्ञा दी और स्वयं राज्यश्रीकी खोजमें विन्ध्य-वनकी ओर चला।

विन्ध्य-वनमें पहुँचकर राजाको जंगलके सामन्त शरभकेतुके पुत्र व्याघ्रकेतुसे भेंट हुई। उसने भूकम्प नामक शवर-सेनापतिके भागिनेय निर्घातको राजाके समक्ष उपस्थित किया। निर्घातने बताया कि वहाँसे कोशभरपर एक पहाड़ी नदीके तीरपर छात्र-समूहके बीच दिवाकरमित्र नामक एक भिक्षु रहता है। कदाचित् वह राज्यश्रीका समाचार जानता हो। निर्घातके बताये रास्तेसे वह आचार्य दिवाकरमित्रके आश्रममें पहुँचा। वहाँ एक भिक्षुसे अग्नि-प्रवेशके लिए उद्यत युवतियोंके बारेमें सुना। उस भिक्षुके बताये रास्तेसे उस स्थलपर पहुँचकर इन युवतियोंके बीच राज्यश्री और प्रज्वलित चिताको देखा। राजाके प्रयत्नसे राज्यश्रीका अग्नि-प्रवेश तो रुक गया; किन्तु पति एवं अपत्यसे रहित उसने राजासे काषाय-ग्रहणकी आज्ञा माँगी। यह सुनकर राजाने आचार्य दिवाकरमित्रसे कहा—"भाईका वध करनेवाले रिपु-कुलका नाश करनेकी मैंने प्रतिज्ञा की है। जबतक मैं यह प्रतिज्ञा पूरी न कर लेता हूँ तबतक मेरी बहिन मेरे समीप रहे, आप धार्मिक कथाओं और विमल उपदेशोंसे इसे प्रतिबोध कराते रहें। जब मैं अपना काम (गौड़-विनाश एवं दिग्विजय) समाप्त कर चुकूँगा तब मेरे ही साथ यह काषाय (= संन्यास-वस्त्र) ग्रहण करेगी[1]।" (पृ० १७६–७७ उ.)।

हर्षचरित (पृ० ११४–१५) के ये वाक्य हर्षकी विजयोंपर प्रकाश डालते हैं:—

१ "इयं तु ग्रहीष्यति मयैव समं समाप्तकृत्येन काषायाणि।"

१ इस विजेताने सहायकोंसे युक्त चञ्चल राजाओंको (जीतकर) निश्चल किया।

२ इस नरपतिने बचे हुए राजाओंके ऊपर क्षमा की।

३ इस नर-पुङ्गवने सिन्धु-राजको जीतकर राज्य-लक्ष्मीको अपनाया।

४ सम्राट्ने (आसामके राजकुमार) कुमारका अभिषेक किया।

५ सम्राट्ने हिमालयके दुर्गम दुर्गम प्रदेशोंसे कर लिया (दुर्गम प्रदेशोंसे नेपाल काश्मीर तुषार या अन्य पहाड़ी प्रान्तोंका बोध हो सकता है)।

अन्य सूत्रोंसे पता चलता है कि हर्षने वलभी-नरेश ध्रुवसेनको पराजित कर उसके साथ अपनी एकमात्र सन्तान अपनी कन्याका[1] विवाह कर दिया। गौड़-विजयके लिए जो उतनी तैयारी की गई थी उसका क्या परिणाम हुआ, यह न हर्षचरितसे ही जाना जाता है और न दूसरे सूत्रोंसे ही। संभवतः बौद्ध आचार्य दिवाकरमित्रके प्रभावमें आकर उसने गौड़के ऊपर बौद्धोचित क्षमा दिखलाई। हर्षने दक्षिण भारतकी ओर अपनी विशाल सेनाके साथ प्रयाण किया। किंतु नर्मदा नदीके

हर्षचरितमें हर्षके विवाहित होनेका स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है; किंतु कुछ ऐसे वाक्य हैं जिनसे उनके विवाहित होनेका अनुमान किया जा सकता है। यथा—"अपने स्तन-रूपी कलशोंसे वे (नर्तकियाँ) मानो उसका (हर्षका) स्वदार-संतोषरूपी रस निःशेष निकाल रही थीं (पृ० ९५)। दूसरोंकी स्त्रियोंने उसे (हर्षको) नपुंसक समझा (पृ० ९७)। मैं (हर्ष) स्त्रीकी रक्षा करूँ (पृ० ६२ उ)। पृष्ठ ८८ के 'ब्रह्मचारी'का अर्थ है एकपत्नीव्रतवाला (दे० मनु० ३।४५, ५०) तथा उसी स्थलके 'असिधाराव्रत' का अर्थ है पत्नीके साथ रहकर भी ब्रह्मचर्यका पालन करना (यत्रैकशयनस्थापि प्रमदा नोपभुज्यते। असिधाराव्रतं नाम वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥)।

तीरपर चालुक्यनरेश पुलकेशी द्वितीय (६०८–४२ ई०) ने उसे पराजित किया[1] और आगे बढ़नेसे रोक दिया। तबसे दक्षिण भारत और उत्तर भारतके इन दोनों समकक्षी सम्राटोंने नर्मदा नदीको मध्यवर्ती सीमा मान लिया। इस प्रकार उस समय प्रायः सम्पूर्ण भारत इन दो प्रतापी सम्राटोंके बीच विभक्त हो गया। दक्षिण भारतके शिलालेखोंके अनुसार हर्ष 'सकल-उत्तरापथेश्वर' अर्थात् सारे उत्तर भारतका सम्राट् था। ह्वेनसांगके अनुसार भी हर्ष पंच-भारतों अर्थात् सौराष्ट्र कान्यकुब्ज गौड़ मिथिला और उड़ीसाका अधीश्वर था। निश्चित है कि हर्षकी प्रभुता विन्ध्याचलके उत्तर प्रायः सम्पूर्ण देशमें व्याप्त थी। उसके राज्यमें पूर्वी पंजाब, युक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल और कोंगोद (=गंजाम) सहित उड़ीसा शामिल थे। वलभी, पूर्वी मालवा, सिंध तथा आसाम उसके प्रभाव-क्षेत्रमें थे।

६०६ ई० में हर्षने अपने अभिषेकका संवत् चलाया। उसके राज्यके आरम्भिक छः वर्ष लड़ाई-भिड़ाईमें बीते। उसके बाद ३६ वर्षतक उसने शान्तिपूर्वक राज्य किया। "बुद्धके समान शान्तचित्त, मनुके समान वर्णाश्रम-व्यवस्थाके पालक, धर्मराजके समान दण्डधारी सम्राट् हर्षके" (पृ० १०१) शासनमें प्रजा निर्भय और सुखी थी। किंतु कहीं कहीं चोर-डाकुओं और लुटेरोंका उपद्रव हो ही जाता था। चीनी यात्री हुएनसांग दो बार डाकुओंसे बचा था। बाणने भी चोरों और लुटेरोंका उल्लेख किया है।

ह्वेनसांगके अनुसार हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष अपने सर्वस्वका दान किया करता था[2]। उसकी लक्ष्मी बन्धुओंकी भलाईके लिए, उसका ऐश्वर्य दुःखियोंके उपकारके लिए और उसका सर्वस्व द्विजोंकी भलाईके लिए था

---

१ "भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः"—पुलकेशी द्वितीयका एहोल शिला-लेख (६३४ ई०)।

२ आजीवन अर्जित सर्वस्वके महादानके दीक्षा-चीरसे उसका वक्षःस्थल ढका था (पृ० ९२)।

(पृ० ६७)। उसके दानके लिए याचक पर्याप्त नहीं थे। हर्ष कवियोंको भी भरपूर दान दिया करता था। उसने बाणको भी विपुल धन-राशि दी थी[1] (पृ० १०४)। हर्ष विद्वानों और कवियोंका आश्रय दाता था। बाणके अतिरिक्त मयूर और मातङ्गदिवाकर भी हर्षके दरबारी कवि थे। राजा हर्ष स्वयं विद्वान् और कवि था। वह काव्य-कथाओंमें अमृत उगलता था, जिसे उसने पहले नहीं पिया था (पृ० ८९)। उसकी प्रज्ञाके लिए शास्त्र पर्याप्त नहीं थे और उसके कवित्वके लिए शब्द पर्याप्त नहीं थे (पृ० ९९)। हर्षने 'प्रियदर्शिका' 'रत्नावली' और 'नागानन्द' नामक तीन उच्च कोटिके नाटक लिखे थे। इनमेंसे नागानन्दका कथानक बौद्ध है। हर्षचरितमें भी हर्षका बौद्ध धर्मकी ओर झुकाव देखा जाता है।

हर्षका पूर्वज पुष्पभूति शिवका अनन्य उपासक था। हर्षका पिता प्रभाकरवर्धन सूर्यका बड़ा उपासक था। हर्षका अग्रज राज्यवर्धन बुद्धके समान पर-हित-निरत परम बौद्ध था[2]। स्वयं हर्ष, शिव सूर्य और बुद्ध तीनोंका भक्त था। विन्ध्य-वनके एक आश्रममें उसने जैन बौद्ध ब्राह्मण धर्मके विभिन्न सम्प्रदायोंके विद्यार्थियोंको बौद्ध आचार्य दिवाकरमित्रके चरणोंमें बैठकर शास्त्राभ्यास करते देखा था (पृ० १४५-४६ उ)। सब धर्मोंके प्रति समान भाव रखनेवाले हर्षके शिविरके एकान्त स्थानमें जैन, आर्हत, शैव पाराशरी भिक्षु और ब्रह्मचारी बैठे हुए थे (पृ० ७५)। आरम्भमें आचार्य दिवाकरमित्रके प्रभावमें आकर और पीछे चीनी यात्री ह्वेनसांगके सम्पर्कमें रहकर यद्यपि हर्षने बौद्ध धर्मके

---

१ हेम्नो भारशतानि वा मदमुचा बृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तयस्ताः
कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम्॥
—काव्यप्रकाशकी व्याख्या सारसमुच्चय।

२ दे० बँसखेर और मधुवनके ताम्र-लेख।

प्रति श्रद्धा बहुत बढ़ गई, तथापि वह अन्य धर्मों के प्रति भी आदर-भाव रखता था। उसने साम-वेदी और ऋग्वेदी ब्राह्मणोंका ग्राम देकर पुरस्कृत किया था[1]। सर्व-धर्म-समन्वयके अभिलाषी उस राजाके राज्यमें सब धर्मों और सम्प्रदायोंको स्वतंत्रता प्राप्त थी। वह धर्माचार्यों की परीक्षाके लिए शास्त्रार्थ तथा जनताके लाभके लिए धर्म-गोष्ठीका आयोजन किया करता था। वह धार्मिक वाद-विवादों और व्याख्यानोंमें बड़ा रस लेता था।

---

१ दे० बँसखेर और मधुवनके ताम्र-लेख।

हर्षचरित

प्रथम उच्छ्वास

उनके ऊँचे[1] शिरपर विराजमान चन्द्ररूपी चँवरके कारण सुन्दर दिखाई पड़नेवाले शिवको, जो त्रैलोक्यनगरके आरम्भिक मूल स्तम्भ हैं, प्रणाम करता हूँ। ॥ १ ॥

शिवके कण्ठालिङ्गनके आनन्द से उमाने अपनी आँखें मूँद लीं, मानो (शिवके कण्ठमें लगे) कालकूट नामक विषके स्पर्शसे उसे मूर्छा आ गई। ऐसी उमाको प्रणाम करता हूँ। ॥ २ ॥

उस सर्वज्ञ प्रजापति-तुल्य कवि व्यासको प्रणाम है, जिसने अपनी वाणीसे महाभारतको उसी तरह पवित्र कर दिया जिस तरह सरस्वती (नदी) ने भारतवर्षको। ॥ ३ ॥

संसारमें कुकवि लाल आँखोंवाले कोकिलके समान प्रायः द्वेषात्मक बुद्धिवाले, बहुत बोलनेवाले, तथा कामोद्दीपन करनेवाले[2] होते हैं। ॥ ४ ॥

बुरी प्रकृतिवाले कुत्तोंके समान घर-घर वर्णनात्मक (वक्रोक्ति-

१. शिवका मस्तक कहीं भी नत न होनेके कारण ऊँचा कहा गया है। 'शिरश्चुम्बी' का अविकल अर्थ होगा, शिरको चूमने या छूनेवाले।

२. 'कामकारिणः' का दूसरा अर्थ 'स्वेच्छाचारी' है।

शून्य) काव्य करनेवाले असंख्य हैं। अधिकांश कवि शरभोंके[1] समान नव निर्माण करनेवाले नहीं होते हैं। ॥ ५ ॥

सज्जनोंके बीच अप्रसिद्ध कवि दूसरोंके वर्णों अर्थात् शब्दोंके बदलनेसे तथा रचनाके चिन्होंके छिपानेसे चोर समझा जाता है[2]। ॥ ६ ॥

उत्तरके कवियोंका काव्य श्लेष-प्रधान, तथा पश्चिमके कवियोंका काव्य (श्लेष-यमक आदि अलंकारोंसे शून्य) अर्थ-प्रधान होता है। दाक्षिणात्योंके काव्योंकी विशेषता है उत्प्रेक्षा नामक अलङ्कार। गौड़-देशीय कवियोंकी रचनामें (बहुधा) शब्दाडम्बर पाया जाता है। ॥ ७ ॥

नया विषय, अग्राम्य जाति अर्थात् स्वभावोक्ति, सहज श्लेष, स्फुट अर्थात् सुबोध रस, सुन्दर-शब्द-योजना—इनका एकत्र होना कठिन है। ॥ ८ ॥

उस कविके काव्यसे क्या प्रयोजन, जिसकी वाणी सभी वृत्तान्तोंका बोध करानेवाली[3] (महाभारत-) कथाके समान तीनों लोकोंमें नहीं व्याप्त होती? ॥ ९ ॥

जिनके मुखमें सरस्वती (=वाग्देवता) है, वे उल्लास

१. एक प्रकारका पशु जिसके आठ पैर होते हैं। शरभके लिए देखिये म० भा० शान्तिपर्व ११७।

२. सज्जनोंके बीच अप्रसिद्ध व्यक्ति भी डरके मारे विवर्ण होनेसे तथा (कड़ी और बेड़ीके) बन्धनके चिन्होंको छिपानेसे चोर समझा जाता है।

३. 'सर्ववृत्तान्तगामिनी' का दूसरा अर्थ है—सभी वृत्तों अर्थात् छन्दों के अन्त तक जानेवाली; यह विशेषण 'वाणी' में लागू होगा।

(=अध्याय) के अन्तमें भी नहीं थकते हैं; तो फिर (उच्छ्वास-पूर्ण) आख्यायिकाके रचयिता कविश्रेष्ठ कैसे वन्दनीय नहीं हो सकते[1] ? ॥ १० ॥

जिस प्रकार इन्द्र-प्रदत्त शक्ति नामक अस्त्रके कर्णके निकट आनेपर द्रोण आदिका गर्व निश्चय ही विलीन हो गया, उसी प्रकार (सुबन्धु-कृत) वासवदत्ताके कवियोंके कानों तक पहुँचने पर उनका अभिमान अवश्य ही चूर्ण हो गया। ॥ ११ ॥

पूज्य हरिचन्द्रका[2] गद्य-प्रबन्ध राजाके समान (सबसे बढ़कर) है। वह शब्द-विन्यासके कारण उज्ज्वल है, और मनोहर है[3]। उसमें अलङ्कार शास्त्रके अनुसार वर्ण अर्थात् अक्षर रखे गये हैं[4]। ॥ १२ ॥

सातवाहन (=हाल) ने स्वभावोक्ति नामक अलङ्कारसे युक्त सूक्तियोंका एक अविनाशी तथा अग्राम्य संग्रह (=सप्तशती) बनाया, जो विशुद्ध जातिके रत्नोंके अक्षय एवं सुन्दर भंडारके सदृश है। ॥ १३ ॥

१. सरस्वतीका दूसरा अर्थ 'उत्तम अनिल' है। उच्छ्वास = कल्प, साँस छोड़ना। वक्त्र = मुख; वक्त्र नामक छन्द।

२. कवि हरिचन्द्रकी कोई भी गद्य-कृति आज उपलब्ध नहीं है। इस नामके एक कविकी चर्चा ना० प्र० प० के विक्रमाङ्क (पृ० ११८-२०) में हुई है।

३. राज-पक्षमें:—सैनिकोंके स्थिति-विशेषके कारण उज्ज्वल है और हार धारण करनेवाला है।

४. राजपक्षमें:—ब्राह्मण आदि वर्णोंका धर्मशास्त्रके नियमोंके अनुसार पालन करनेवाला।

जिस तरह सुग्रीवकी कपि-सेना सेतुके द्वारा समुद्रके उस पार पहुँच गई, उसी तरह प्रवरसेन नामक कविकी कुमुद-सदृश उज्ज्वल कीर्ति सेतु[1] नामक काव्यके कारण समुद्र-पार चली गई। ॥ १४ ॥

जिस तरह शिल्पियों द्वारा बनाये गये अनेक तलोंवाले पताका-विभूषित मन्दिरोंसे यश मिलता है, उसी तरह भासने उन नाटकोंसे ख्याति पाई, जिनकी प्रस्तावनाएं सूत्रधारों द्वारा कही गई हैं तथा जिनमें अनेक पात्र और पताकाएँ अर्थात् सहायक कथाएँ हैं। ॥ १५ ॥

मधुर और सरस मञ्जरीके सदृश कालिदासकी सूक्तियोंके उच्चारणमात्रसे किसे आनन्द नहीं होता ? ॥ १६ ॥

शिवकी लीला किसे नहीं चकित करती, जिसमें कामको अच्छी तरह जलाकर गौरीका मण्डन किया गया है ? (कहाँ कामके प्रति उतना क्रोध ! और कहाँ प्रियाका सिंगार करना !); उसी तरह बृहत्कथा[2] किसे नहीं विस्मित करती, जो कामको अच्छी तरह उत्तेजित करनेवाली है तथा जिसमें गौरीकी आराधना की गई है ? ॥ १७ ॥

१. इस श्लोकसे तथा 'सेतु' की शङ्कर-कृत व्याख्यासे स्पष्ट है कि 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत-काव्यका रचयिता प्रवरसेन ही था, न कि कालिदास।

२. पैशाची प्राकृतमें लिखी गई 'बृहत्कथा' इस समय उपलब्ध नहीं है; किन्तु इसीके आधारपर लिखे गये 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा कथा-सरित्सागर' विद्यमान हैं।

मेरे हृदयमें स्थित आढ्यराज[1] कृत उत्साहों[2] अर्थात् साहसके कार्योंके स्मरणमात्रसे माना मेरी जीभ भीतर खिंचती हुई कविता (करने) में प्रवृत्त नहीं हो रही है अर्थात् उससे विमुख हो रही है ।॥ १८ ॥

तो भी राजाके प्रति भक्ति होनेसे निर्भय हो, और (आख्यायिका) समाप्त करनेके लिए उत्सुक हो अपनी जीभ अर्थात् तुच्छ वाणीसे आख्यायिका कहनेकी ढिठाई करता हूँ, मानो (सागर) पार करनेके लिए उत्सुक हो सागरमें तैरनेकी चपलता करता हूँ ।॥ १९ ॥

सुखपूर्वक ज्ञान होनेके कारण ललित,[3] तथा सुन्दर-अक्षर योजनाके कारण उज्ज्वल शब्दोंसे प्रतिपादित आख्यायिका उस शय्याके समान शोभित होती है, जो नींदसे सुखपूर्वक जगानेके कारण आनन्ददायक है, तथा जिसके पाँव सोनेसे मढ़े होनेसे चमकीले हैं ।॥ २० ॥

दीप्तिमान् प्रतापाग्निकी दीवारसे संसारकी रक्षा करनेवाला तथा सभी प्रार्थियों अथवा मित्रोंके मनोरथ पूरा करनेमें सौभाग्य-पर्वत-स्वरूप सम्राट् हर्ष विजयी है ।॥ २१ ॥

---

१. शंकरके अनुसार आढ्यराज कोई कवि है। कहीं-कहीं आढ्यराजके स्थानमें आद्यराज है, जिससे हर्षवर्धनका बोध हो सकता है। सरस्वती कण्ठाभरण'में आढ्यराज नामक एक राजाका उल्लेख हुआ है (ना० प्र० प० का विक्रमाङ्क पृ० १०८)।

२. कीथके अनुसार 'उत्साह'का अर्थ (महाराज हर्षका) महान् कार्य है। शंकरने उत्साहके कई अर्थ दिये हैं, जो संदेहजनक जान पड़ते हैं।

३. आख्यायिकासे अनायास ज्ञान होता है, अतः इसकी गणना ललित साहित्यमें है।

परम्परासे ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन कालमें किसी समय भगवान् परमेष्ठी (=परम पदपर रहनेवाले), अपने लोकमें विकसित पद्मके आसनपर बैठे हुए और इन्द्रप्रमुख देवताओंसे घिरे हुए, ब्रह्मसम्बन्धी कथाएँ तथा अन्य दोषरहित विद्या-विषयक आलाप कर रहे थे[1]। मनु, दक्ष, चाक्षुष, प्रभृति प्रजापतियोंने तथा सभी महर्षियोंने, जिनके आगे सप्तर्षि थे, उस प्रकारसे बैठे हुए त्रिभुवन-पूज्य उन (भगवान्) की सेवा की। उनमसे कतिपयोंने स्तुति-प्रधान ऋचाओंका अच्छी तरह गान किया। कतिपयोंने यजुर्वेदसे पूजाके वाक्य पढ़े। कतिपयोंने प्रशंसा-भरे साम-स्तोत्रोंका गान किया। दूसरोंने यज्ञ-क्रियाओंके विवरण करनेवाले मंत्रोंकी व्याख्या की। विद्या-सम्बन्धी मतान्तरोंके कारण उन लोगोंके बीच विद्या-विषयक विवाद उत्पन्न हुए।

अनन्तर अत्रिका पुत्र, तारापतिका भाई, स्वभावसे अत्यन्त क्रोधी महातपस्वी दुर्वासा नामक मुनि मन्दपाल नामक दूसरे मुनिसे विवाद करने लगा और क्रोधान्ध होकर साम-गान करनेमें स्वर-भंग किया। सब मुनियोंने शापके भयसे मौन धारण कर लिया तथा ब्रह्माने दूसरोंसे बातें करनेके बहाने ध्यान नहीं दिया। किन्तु भगवती कुमारी सरस्वती वहीं थी। वह कुछ कुछ बाल-भावको छोड़कर नवयौवनको अलंकृत करनेवाली नई अवस्थामें थी, और वह चँवर पकड़नेसे हिलती हुई भुज-लतासे पितामह (=ब्रह्मा) के व्यजन डुला रही थी। (दुर्वासाकी) निन्दा करनेके लिए पृथ्वीपर पैर पटकनेसे लाल

---

१. देखिये "भारतमें गोष्ठीकी परम्परा"—जीवन-साहित्य, जून १९४८।

हुए स्वभावसे ही अरुण पाद-पल्लवोंसे वह चमक रही थी। (पैर पटकनेसे) झुनझुन करनेवाली दोनों पैजनियोंके द्वारा उसके पाँव वाचाल हो रहे थे, मानो (वैदिक) पद और क्रमके (उच्चारण) से मुखर दो शिष्य वैदिक चरणों अर्थात् शाखाओं-का पाठ कर रहे थे। उसकी दोनों जंघाएँ मदन-नगरके तोरणके खम्भोंकी शोभा धारण कर रही थीं। वह उत्सुक कलहंसोंके समान शब्द करनेवाली अपनी करधनी पर विलासपूर्वक किसलय-सदृश बायाँ हाथ रखे हुए थी। उसका शरीर, विद्वानोंके मानसमें रहनेवाले गुण-समूहके समान, कंधे पर लटकनेवाले जनेऊसे पवित्र हो रहा था। वह अनेक मोतियोंसे गुँथा हुआ तथा बीचमें एक चमकते हुए हीरेसे युक्त हार पहने थी, जो (हार) सूर्यके[1] मध्यमें ले जानेवाले अनेक मुक्त जीवों द्वारा अनुसृत मोक्ष-मार्गके सदृश जान पड़ता था। मुँहमें पैठी हुई सभी विद्याओंके पैरोंके महावरसे लाल (तथा क्रोधसे) फड़कते ओठसे वह शोभ रही थी। ब्रह्माके कृष्णमृग-चर्मकी प्रतिमा उसके कपोलमें प्रतिबिम्बित हो रही थी, मानो मधुर संगीत सुननेके लिए चन्द्रमाका मृग उतर आया था। अपमानपूर्वक अपनी भ्रू-लताको टेढ़ी करके ऊपर उठाए थी। आँखके कोनेसे निकले हुए आँसुओंके प्रवाहसे स्वरभङ्ग सुननेसे मलिन हुए एक कानको मानो धो रही थी, और खिले हुए सिन्धुवारको (सफेद) मञ्जरीके आभूषणसे मानो हँसते

१. 'परिव्राड् योगयुक्तश्च शूरश्चाभिमुखे हतः
द्वाविमौ पुरुषौ सूर्यमण्डलभेदिनौ ।"

हुए,[1] दूसरे कानसे उसका विद्याभिमान टपक रहा था। कर्णफूलके फूलोंमें लगे भौरोंसे, मानो श्रुतिके साथ रहनेवाले प्रणवों अर्थात् ओङ्कारोंसे, वह पूजित हो रही थी। सूक्ष्म तथा विमल ज्ञानके प्रसारके समान बारीक और सफेद रेशमसे उसका शरीर ढका था। ऐसी सरस्वती (स्वरभङ्ग) सुनकर दाँतोंकी छटाको, जो मानो वाणीके ही समान निर्मल थी, चारों ओर बिखेरती हुई हँस पड़ी।

उस प्रकारसे उसे हँसते देख उस मुनिने कहा—"अरी पापिनि, बुरे तरीकेसे थोड़ीसी विद्या पाकर अभिमानसे फूली नहीं समानेवाली, तू मेरा उपहास कर रही है?" उस समय वह (मुनि) शिर काँपनेके कारण बन्धन टूटनेसे बिखरे हुए भूरे रंगवाले जटा-कलापकी चमकसे, मानो क्रोधाग्नि रूपी द्रवसे, दशों दिशाओंको सींच रहा था। वह अपनी भृकुटि चढ़ाने लगा, जिससे उसका ललाटरूपी अष्टापद[2] धुँधला हो गया, तथा जो (भृकुटि) यमकी स्त्रियोंके सिंगारके लिए घड़ियालकी छवि-जैसी थी; जान पड़ता था जैसे काल समीप आ गया हो। वह अत्यन्त रक्त नेत्रसे क्रोधदेवको अपने लोहूका मानो उपहार दे रहा था। निर्दयतापूर्वक ओठ दबाये जानेपर भयसे मानो भागती हुई वाणीको वह दाँतोंकी प्रभासे रोक रहा था। कंधे परसे गिरते हुए कृष्णमृगचर्मकी, मानो शापके शासन-पट्टकी, गिरहको दूसरे प्रकारसे बाँध रहा था। उसके

---

१. सिन्धुवार फूल उज्वल होता है और हँसी भी उजली ही समझी जाती है।

२. सतरंज खेलनेका बोर्ड, इसमें आठ पौंतियाँ होती हैं और प्रति पौंती में आठ पैर।

प्रत्येक अंगका आश्लेष किये हुए असुर और मुनि उसके स्वेदमें प्रतिबिम्बित हो रहे थे; मानो शापकी शङ्कासे वे उसकी शरणमें आ गये थे। तब उसने हाथसे, जिसकी अँगुलियाँ क्रोधसे काँप रही थीं, अक्षमालाको—मानो उसे प्रसन्न करनेमें लगे अक्षरोंकी मालाको—फेंक दिया और कमण्डलके जलसे आचमन करके शाप देनेके लिए जल लिया। उस समय ब्रह्माके समीप मूर्त्त देवी सावित्री कल्प-वृक्षकी अमृतफेन-सी सफेद रेशमी छाल पहने बैठी थी। उसके उन्नत स्तनोंके बीच कमल-नालके रेशेसे बने वस्त्रसे एक खास तरहकी (स्वस्तिकाकार) गिरह बँधी हुई थी। उसका ललाटरूपी आँगन भस्मसे चिह्नित तीन रेखाओंसे, मानो तपोबलसे जीती हुई तीनों लोकोंकी विजय-पताकाओंसे, शोभायमान था। उसके कंधेपर लटकते, अमृत फेनके सदृश उजले योगपट्टकसे, जैसे तपस्याके प्रभावसे कुण्डलीकृत (वक्रित) गङ्गाकी धारासे, वैकक्ष[1] बन गया था। वह बाएँ हाथसे ब्रह्माके उत्पत्ति-कमलके मुकुलके समान स्फटिक-कमण्डल पकड़े हुई थी। दाहिने हाथको, जो अक्षमालासे घिरा हुआ तथा शंखसे निर्मित बालाओंसे आभूषित था, ऊपर उठाकर, तर्जनी अँगुलीको क्रोधसे कँपाती हुई वह बोलने लगी "आः पापी, क्रोधोपहत,[2] दुष्टात्मा, मूर्ख, अपनेको नहीं पहचाननेवाले, निकृष्ट ब्राह्मण, दुष्ट मुनि, नीच, निराकृत, अपनी गलतीसे लज्जित हो, क्योंकर सुर, असुर, मुनि, और मनुष्यके द्वारा पूजनीय तीनों लोकोंकी माता भगवती सरस्वतीको शाप देनेकी अभिलाषा कर

१. एक प्रकारका वस्त्र या हार जो छातीपर तिरछा करके रखा जाता है।
२. क्रोधसे नष्ट, क्रोधान्ध।

रहे हो ?" यह कहती हुई सावित्री कुशका आसन छोड़ उठ खड़ी हुई। उसके साथ मूर्तिमान् चारो वेदोंने भी बेतके बने आसन क्रोधसे छोड़ दिये। उनके मुख ओङ्कारसे मुखरित हो रहे थे। ऊपर फेंकनेसे हिलती हुई जटाओंके भारसे वे दिशाओं को व्याकुल कर रहे थे। कमर कसनेमें घुमाये जानेपर फैले हुए कृष्णमृगचर्मके रंगसे दिवस अंधियाला हो रहा था। क्रोधके कारण उनकी लम्बी साँसोंसे ब्रह्म-लोक हिलने लगा। स्वेद-जलके बहाने वे मानो सोम-रस चुआ रहे थे। अग्निहोत्रके पवित्र भस्मसे उनके ललाट चमक रहे थे। वे कुशके बने सुन्दर चँवर, वल्कल-वस्त्र, पलास-दण्ड और कमण्डल धारण कर रहे थे।

तब "भगवन्, क्षमा करो, यह शापके योग्य नहीं है। इस प्रकार विद्वानोंके द्वारा अनुनय किये जानेपर भी, "उपाध्याय, एक त्रुटि क्षमा करो" इस प्रकार हाथ जोड़े अपने शिष्योंके द्वारा मनाये जानेपर भी, "पुत्र तपस्यामें विघ्न मत करो" इस प्रकार अत्रिके रोकनेपर भी, क्रोधावेशसे विवश दुर्वासाने "दुर्विनीते, तेरे इस विद्याभिमानको दूर करता हूँ, तू नीचे मर्त्यलोकमें चली जा" इतना कह उस शाप-जलको छोड़ दिया। शापके बदले शाप देनेको उद्यत सावित्रीको "सखि रोष रोको, कुटिल मतिके होनेपर भी द्विज अपनी जातिके ही कारण, माननीय हैं" कहती हुई सरस्वतीने ही रोका।

अनन्तर पितामह ब्रह्माने उस प्रकारसे शापित सरस्वतीकी ओर देखा। उनके शरीरपर उजला जनेऊ ऐसे शोभ रहा था, जैसे कमलसे उत्पत्तिके समयके कमलनालके रेशे लगे हुए हों। उन्होंने दाहिने हाथसे, जिसकी अच्छी अँगूठीकी मरकतमणिसे

किरणें फूट रही थीं और इस प्रकार जो त्रिभुवनकी विपत्तिकी शान्तिके लिए मानो कुशका गुच्छा धारणकर रहा था, शापजन्य कोलाहलको शान्त किया। वे अपने दाँतोंसे निकलती हुई निर्मल और लम्बी किरणोंसे चारों ओर भावी कृतयुगके आरम्भका सूत्रपात-सा कर रहे थे। सरस्वतीकी बिदाईके समयके मंगल-मृदंगके समान अपनी वाणीसे दिशाओंको गुञ्जायमान करते हुए ब्रह्मा गम्भीरतापूर्वक बोलने लगे "ब्राह्मण, आपने जिस मार्गका अवलम्बन किया है, वह साधुओंके चलनेका नहीं है। अन्तमें वह घातक सिद्ध होता है। इन्द्रियोंके उच्छृङ्खल रहनेसे उत्पन्न रजोगुणसे अजितेन्द्रियकी बुद्धि उसी प्रकार कलुषित[1] हो जाती है जिस प्रकार बेलगाम चलनेवाले घोड़ोंसे उठी धूलिसे रथको वशमें नहीं रख सकनेवाले (सारथी) की दृष्टि। यह भौतिक आँख देख ही कहाँ तक सकती है? विशुद्ध विचारसे ही बुद्धिमान् लोग भली-बुरी सभी बातोंको देखते हैं। जल और अग्निके समान धर्म और क्रोधका एकत्र निवास प्रकृतिके विरुद्ध है। आलोक छोड़ क्यो अन्धकारमें डूब रहे हो? क्षमा ही तो सभी तपस्याओंका मूल है। दूसरोंके दोष देखनेमें निपुण नेत्रके सदृश कुपित मन अपना ही राग[2] रूपी दोष नहीं देखता है। कहाँ महती तपस्याका भार वहन करना और कहाँ केवल अवगुण ग्रहण करना! अति क्रोधी मनुष्य आँखवाला होकर भी अन्धा ही है। कोपसे कलुषित मन कर्तव्याकर्तव्यका विचार

१. सुमार्ग और कुमार्गको देखनेमें असमर्थ।

२. मनके पक्षमें—क्रोध। नेत्रके पक्षमें—लाली।

नहीं कर सकता। क्रोधीकी पहले विद्या अँधियारी होती है और पीछे भौंह। राग पहले इन्द्रियोंपर धावा करता है पीछे नेत्र पर। (क्रोधीकी) पहले तपस्या चूती है पीछे पसीनाका जल, पहले अयश फैलता है और पीछे होंठ काँपता है। क्या विष-वृक्ष की भाँति तुम्हारी जटा तथा वल्कल लोक-विनाशके लिए ही हुआ है? इस मुनि-भेषके लिए यह शील-शून्य चित्त-वृत्ति मुक्ताहारकी तरह अनुचित है। नाटकके पात्रके सदृश तुम शान्तिशून्य चित्तसे यह बनावटी तापस-भेष व्यर्थ ही ढो रहे हो। तुम्हारी थोड़ी-सी भी कुशल नहीं देखता हूँ। इसी हलकापनके कारण अब तक तुम ज्ञान-सागरके ऊपर ही तैर रहे हो। ये सब महर्षि बहरे, गूँगे, और मूर्ख नहीं हैं। रोषरूपी दोषका निवास-स्थान अपना हृदय नियन्त्रित करनेके योग्य होनेपर भी क्यों तुमने निरपराध सरस्वतीको नियन्त्रित किया? यह तो अपनी ही असावधानीसे हुई गलतियोंसे लजानेका अवसर है, जिससे मूर्ख कलङ्कित होता है।" इतना कह चुकने पर उसने फिर (सरस्वतीसे) कहा—"वत्स सरस्वती, विषाद मत कर। यह सावित्री तेरे साथ जायगी और हमलोगोंसे वियोगके कारण (तुझ) दुःखिनीका मनोविनोद करेगी। पुत्रके मुखकमल देखने तक इस शापकी अवधि रहेगी।" इतना कह ब्रह्माने सुरों, असुरों, मुनियों, और मनुष्यों की मण्डली तोड़ दी तथा शीघ्रता से आये हुए नारदके कंधेपर हाथ रखकर समुचित दैनिक क्रिया करने के लिए उठ खड़े हुए।

सरस्वती शाप पाकर कुछ अधोमुखी हो गई और कृष्णमृग-चर्मकी रेखा-सी उजली और नीली दृष्टिको छातीपर डाल रही थी। तब वह भी सावित्रीके साथ घर चली गई। साँसकी

सुगन्धि में चिपके हुए भ्रमरोंसे, मानो मूर्त्त शापके शब्दोंसे, सरस्वती खिंची जा रही थी। शापके शोकसे उसके हाथ ढीले हो गये थे। हाथोंके नखोंसे नीचेकी ओर निकलता किरणसमूह उसे मर्त्य-लोकमें उतरनेका मानो रास्ता बता रहा था। नूपुरों के शब्दसे बुलाये गये घरेलू हंस, मानो ब्रह्मलोकमें रहनेवालोंके हृदय, उसके पीछे-पीछे जा रहे थे।

इसी बीच सूर्य मानो सरस्वतीके अवतरणकी बात कहनेके लिए मध्यलोक (पृथ्वी) पर उतरा। धीरे धीरे दिनका अवसान होने लगा तथा कमलोंके बन्द होनेके दुःखसे सरोवर दुःखी होने लगे। शराबके नशेमें मत्त कामिनियोंके कुटिल कटाक्षसे मानो गिराया जाता हुआ[1], तरुण वानरके मुखके समान लाल, लोकोंका एकमात्र नेत्र, भगवान् (सूर्य) अस्ताचलक शिखरपर तेजीसे उतर रहा था। दिव्य आश्रमके निकटवर्ती स्थान आर्द्र-स्तनवाली गौओंके झुण्डसे बहती हुई दुग्धधारासे धवल हो रहे थे, मानो समीपवर्ती चन्द्रोदयसे बढ़े हुए क्षीर-सागरकी तरंगोंसे प्रक्षालित हो रहे थे। दिनके तीसरे पहरमें घूमनेके लिए निकला हुआ, चँवर-युक्त ऐरावत गंगाके तटको स्वच्छन्दता पूर्वक खोद रहा था तथा (इसके) सुवर्ण-तटपर प्रहार करनेसे उसके दाँत बज उठते थे। आकाश लाल हो रहा था; मानो विद्याधरोंकी विचरती हुई अनेक अभिसारिकाओंके सहस्र चरणोंके अलक्तकसे वह लिप्त हो रहा था। आकाशमें यात्रा करते हुए सिद्धोंके द्वारा सूर्यास्तके अर्घ्यमें ढाला गया,

---

१. 'संभोगमें विघ्न डालनेवाले सूर्यका उस समय तक अस्त नहीं होनेके कारण कामिनियोंको कोप हो रहा था'—शंकर।

दिशाओंको लाल करनेवाला, लाल चन्दन स्रवित हो रहा था; मानो शिवकी पूजामें आनन्द-विभोर संध्या (के शरीर) से लाल रंगका स्वेद-प्रवाह निकल रहा था। वन्दनशील श्रेष्ठ मुनिगण संध्योपासनामें अञ्जलियाँ बाँध रहे थे; जान पड़ता था जैसे ब्रह्माकी उत्पत्तिवाले कमलकी सेवा करनेके लिए सभी कमलालय आ गये हों। ब्रह्मा तृतीय सवनके[1] वेद-वाक्यका उच्चारण कर रहे थे। सप्तर्षियोंके मंदिरोंके आँगनोंमें यज्ञकी जलती आगसे ज्वालाएँ उठ रही थीं, मानो धर्म-साधन शिविरमें आरती उतारी जा रही थी। अघमर्षण[2] मंत्रके द्वारा पापरूपी विष-व्याधिके चुराये जानेपर (हरण होनेपर) यतिगण स्वस्थ हो रहे थे। संध्योपासनाके लिए बैठे तपस्वियोंकी पाँतियोंसे गङ्गाका वालुकामय तट पवित्र हो रहा था तथा ब्रह्माके वाहन धवल हंसोंसे गङ्गाकी तरंगें बड़े बड़े दाँतोंवाली हो रही थीं अर्थात् वे तरंगें बड़े-बड़े दाँत दिखाकर हँस रही थीं। जल-देवताओंका आतपत्र-स्वरूप, पक्षि-कुलकी कामिनियोंका प्रासाद-स्वरूप, अपने ही मधुके मधुर आमोदसे सुगन्धित, आनन्द-प्रद, कुमुद-समुदाय विकसित होनेकी अभिलाषा कर रहा था। दिवसके अन्तमें मुकुलित होते कमलोंके मधुर मधुके सहपानसे प्रसन्न राजहंसोंका झुण्ड, जो कोमल कमल-नालोंसे नुचवानेके लिए अपने कंधोंको झुकाये था और अपने हिलते परोंसे कमलोंके व्यजन डुलाता था, सोनेकी इच्छा कर रहा था। निशाके

---

१. सोम-रस चढ़ाना अथवा सोम-यज्ञमें स्नान करना। यहाँ तृतीय सवनसे संध्याकालके सवनका बोध होता है।

२. ऋग्वेदका अन्तिम सूक्त।

निःश्वासके समान सायङ्कालीन मन्द समीर किनारेकी लताओंके फूलोंके परागसे सरिताको धूसर करते हुए, सिद्धोंके नगरकी उत्तम महिलाओंके संयत केशोंकी मल्लिकाओंकी गन्ध ग्रहण करते हुए, बहने लगा। भ्रमर-वृन्द ऊपर उठे ऊँचे केसरोंसे युक्त कमल-कोशकी कोटररूपी कुटीमें विश्राम कर रहा था। आकाश ताराओंके गुच्छोंसे, मानो नृत्यमें हिलती हुई शिवकी जटाओंके कुटज नामक फूलोंकी कलियोंसे, भर रहा था। संध्याके संस्कारसे (कुछ कुछ) लाल, पकते ताल-फलके छिलके जैसा रंगवाला, काले मेघके समान घना, नयी वयसका अन्धकार पृथ्वीको घेर रहा था। तरुण तिमिर-पटलको विदीर्ण करनेमें तीक्ष्ण दीप-समुदाय दीप्त हो रहा था, मानो यामिनीरूपी कामिनीके कर्णफूल-स्वरूप चम्पक फूलोंकी कलियाँ खिल रही थीं। चन्द्रमाकी विरल तथा सुन्दर किरणोंके आलोकसे धवल पूर्व दिशा, जो कुछ कुछ सूखे तथा नीले जलसे मुक्त यमुना-तटके बाल पुलिनके[1] समान दिखती थी, अंधकारको क्षीण कर रही थी। निशारूपी शबरीका कुन्तल-कलाप स्वरूप, चाष नामक पक्षीके पङ्ख-जैसा रंगवाला आकाशको छोड़ता हुआ, विकसित कमलोंके सरोवरोंको अंधियारा करता हुआ, चन्द्रके करोंसे केश पकड़े जानेसे दूषित हुआ, अन्धकार मानिनीके मनकी भाँति विलीन हो रहा था। भगवान् चन्द्रका उदय हो गया था। वह रात्रि-रूपी वधूके उदय-रागसे युक्त अधरकी तरह लाल शरीर धारणकर रहा था, जो मानो उदयाचलकी चोटीके पासकी गुफामें रहनेवाले सिंहके तेज पंजारूपी अस्त्रसे निहत अपने ही

१. तटका बालुकामय भाग।

हरिणके शरीरसे निकलती रुधिर-राशिसे ढका हुआ था। अन्धकार ध्वस्त हो गया, मानो उदयाचलसे बहती हुई चन्द्र-कान्तकी जल-धारासे धुल गया। चन्द्रमण्डलने—मानो गो-लोकसे बहती दुग्ध-धारासे परिपूर्ण, मकर-मुखके समान अग्र-भागवाले, हाथी-दाँत के बने एक बड़े नलने—समुद्रको भरना आरम्भ कर दिया।

(इस तरह) संध्याकाल स्पष्ट होनेपर सावित्रीने सरस्वतीसे, जिसका हृदय सूना-सा था और जो आँसू बहाती कुछ सोच रही थी, कहा—"सखि, तू तीनों लोकोंको उपदेश देनेमें निपुण है। तेरे सन्मुख बोलनेमें मेरी जीभ लजाती है। तुझे मालूम ही है कि दैवका[1] नीच व्यवहार किस तरह मर्यादा-रहित, गुणवान् मनुष्यके भी साथ दुर्जन-सा क्रूर, क्षण-क्षणमें बदलने-वाला, अवश्यंभावी और अप्रिय होता है। निकृष्ट व्यक्तिसे अकारण निकलता हुआ अपमानका कणमात्र भी मनस्वी व्यक्तियोंके मानसको[2] कलुषित कर देता है। अनवरत अश्रुजलसे सींचा जानेपर विपत्तिका लेशमात्र भी पल्लव-रहित वृक्षके समान हजारों कोंपलें छोड़ता है। संतापके[3] परमाणु मालती-कुसुमके समान सुकुमार व्यक्तिको भी मुरझा देते हैं। बड़ोंके ऊपर थोड़ा-सा भी क्लेशका निपात उसी तरह पीड़ा पहुँचानेमें समर्थ है जिस तरह बड़े हाथियोंपर छोटे अङ्कुशका निपात।

---

१. वामका अर्थ 'स्त्री' भी है और उसका भी व्यवहार वैसा ही होता है जैसा कि दैवका।

२. मानसका दूसरा अर्थ 'मानसरोवर' होगा।

३. संतापका दूसरा अर्थ 'गर्मी' है।

स्वाभाविक स्नेह-पाशसे बँधी हुई बन्धु-सदृश जन्मभूमिको छोड़ना कठिन है। आरेके निपातके समान परिचित जनोंका दारुण वियोग हृदयको विदीर्णकर देता है, किन्तु तू उस योग्य नहीं। तू सुखरूपी विषके पौधेके अंकुरित होनेके लिए (अनुकूल) भूमि नहीं है। और भी, पहलेका किया हुआ बलवान् कर्म, शुभ हो या अशुभ, फल देनेवाला है, यह स्वामी हमारे आगे और पीछे रहता है; तब फिर विद्वानोंके लिए शोकका कौन-सा अवसर रह जाता है? ये अशुभ अश्रुविन्दु तीनों लोकोंका मंगल करनेहारे तेरे इस मुखकमलको क्यों अपवित्र कर रहे हैं? यही बहुत है। अब बता कि तू किस भू भागको अलंकृत करना चाहती है? तेरा हृदय किस पवित्र प्रदेशमें उतरनेकी इच्छा करता है? अथवा तू किन तीर्थोंको अनुगृहीत करनेकी अभिलाषा करती है? अथवा किन धन्य तपोवनोंमें तप करती हुई तू ठहरनेकी इच्छा करती है? सेवा करनेमें चतुर तथा धूलमें एक साथ खेलनेके समयसे ही परिचित तेरी यह प्रिय सखी पृथिवीपर उतरनेके लिए तैयार है। आजसे तू अनन्यशरणा होकर मन, वचन और कर्मसे शिवको भज। वह सभी विद्याओंके विधाता और कल्याणके देनेवाले हैं। उनके चरणोंकी रजसे देव और असुर पवित्र होते हैं। चन्द्रमाकी कलासे ही उनका कर्णफूल बनता है। वे देवोंके देव तथा तीनों लोकोंके गुरु हैं। अल्प कालमें ही वे तेरे शाप-शोकका नाश करेंगे।"

इस प्रकार कही जानेपर, मोतियों के सदृश उजले अश्रुजल-विन्दु टपकाती हुई सरस्वतीने उत्तर दिया—"प्यारी सखी, यदि तू मेरे साथ रहेगी तो ब्रह्म-लोकका वियोग अथवा शाप-

शोक मुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकेगा। केवल पितामहकी सेवाका सुख (जिससे कि मैं वञ्चित हो रही हूँ) मेरे हृदयको आर्द्र कर रहा है। और भी, पृथिवीपर धर्म समाधि तथा योगके अनुकूल स्थान भी तो तू ही जानती है।" इतना कह सरस्वती रुक गई और उद्वेगके कारण उसे नींद नहीं आई और खुली आँखोंसे ही उसने वह रात बिता दी।

दूसरे दिन त्रिभुवनशेखर उदयाचलके शिखरके मणि-स्वरूप भगवान् सूर्यका उदय हुआ। जान पड़ता था जैसे खण खण शब्द करती हुई तीक्ष्ण लगामसे अपने ही घोड़ोंके घायल हुए मुखोंसे निकलते हुए लोहूसे उसका शरीर लाल हो रहा हो। वृद्ध ताम्रचूड नामक पक्षीकी चूड़ा-सा लाल अरुण उसके आगे था। ऐसे ही समयमें कुछ ही दूरपर ब्रह्माके विमान (सवारी) के हंसोंके रक्षकने विचारकर अपरवक्त् नामक यह पद्य उच्चस्वर से गाया—

"निर्मल मानसमें[1] निवास पानेसे (उसकी) लाड़ली राजहंसी, क्यों तू अपनी उत्सुक आँखोंको चञ्चल कर रही है ? तू वापीमें[2] उतर, फिर कमलालयको[3] लौट आयेगी।"

यह सुनकर सरस्वती ने सोचा "मैं ही लक्ष्य करके कही गई हूँ। अच्छा, मुनिकी बात मानती हूँ।" इतना कहकर वह उठ खड़ी हुई और उसने पृथ्वीपर उतरनेका संकल्प

१. निर्मल मानससे ब्रह्माका भी बोध होता है।

२. वापीसे मर्त्यभूमिका भी बोध होता है।

३. कमलालयका अर्थ ब्रह्मा भी है।

किया। वियोगसे विकल अपने परिजनोंको छोड़कर, अपने भाई-बन्धुओंकी अवहेलना कर, अपने गणों अर्थात् साथियोंसे अलग हो, ब्रह्माकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, अनुयायी तपस्वि-समूहको विनयपूर्वक किसी-किसी प्रकार लौटाकर, वह (अपनी सखी) सावित्रीके साथ ब्रह्मलोकसे निकल गई।

वहाँसे धीरे धीरे वह ध्रुवसे[1] निकली हुई (दिव्य) गङ्गाका अनुसरण करने लगी। धर्मधेनुके समान वह (गङ्गा) नीचे लटकते पयोधर[2] धारण कर रही थी, गम्भीर गर्जन कर रही थी। वह शिवके शिरकी मालती-माला-सी मालूम होती थी। उसका तट निश्चल वालखिल्य मुनियोंसे भरा था। वहाँ अरुन्धती वल्कल धोती थी। उसकी ऊँची उठती हुई लहरोंको पार करते हुए उजले तारे तरल होरहे थे। उसका तट तपस्वियों द्वारा वितीर्ण तिलोदकसे[3] पुलकित हो रहा था। स्नानसे पवित्र ब्रह्मा के द्वारा गिराये गये पितृपिण्डसे[4] उसके तट उजले हो रहे थे। उसके निकट ही सोये हुए सप्तर्षियोंकी कुशशय्यासे सूर्य-ग्रहणके अशौचके कारण किया गया उपवास सूचित हो रहा था। आचमन करके पवित्र हुए इन्द्रके द्वारा छोड़े गये पूजाके फूलोंसे वह रंग-बिरंगी हो रही थी। वह शिवपुरसे गिरी हुई पूजावशेष मन्दार फूलोंकी माला धारण कर रही थी। वह मन्दराचलकी गुहाकी चट्टानोंको अनादरके साथ टुकड़े टुकड़े कर रही थी। अनेक देवाङ्गनाओं

---

१. विष्णु, नित्य स्थान।

२. धेनु-पक्ष में—स्तन। गङ्गा के पक्ष में बादल।

३. तिलमिश्रित जल।

४. देवताओंको अर्पित पिण्ड।

के स्तन-कलशोंसे उसका (जलमय) शरीर तरंगित हो रहा था। घड़ियालों तथा चट्टानों पर गिरनेसे उसकी धारा मुखरित हो रही थी। सुषुम्णा नामक सूर्य-किरण से निकले हुए चन्द्रमाके अमृतमय छींटोंसे उसके तीरपर मानो ताराएँ बिछ गई थीं। बृहस्पतिके अग्निकर्मके[1] धुएँसे उसका बालुकामय तट धूसर होरहा था। वहाँ सिद्धों द्वारा बालूसे बनाये गये लिङ्गोंके लङ्घनके भयसे विद्याधर भाग रहे थे। वह आकाश-सर्पके द्वारा छोड़ी हुई केचुली-सी, स्वर्गरूपी विट (विलासी पुरुष) के ललाटके लीला-अलङ्कार-सी, पुण्यरूपी सौदोंकी दूकानोंकी गली-सी, नरक-नगरके द्वारको बन्द करनेवाली अर्गला-सी, सुमेरु नृपकी रेशमी पगड़ी-सी, कैलास-कुञ्जरकी रेशमी पताका-सी, मोक्ष-मार्ग-सी, कृत-युगरूपी पहियेकी नेमि-सी, और क्षीरसागरकी पटरानी-सी दिखाई पड़ रही थी।

ऐसी मन्दाकिनीका अनुसरण करती हुई सरस्वती मर्त्यलोक में उतरी। आकाशमें ठहरी हुई ही उसने भगवान् पितामह (ब्रह्मा) की सन्तान हिरण्यवाह नामकी स्वच्छ, शीतल और सुरस जलसे भरी हुई बड़ी नदीको, जिसे लोग शोण कहते हैं, देखा। वह वरुणकी माला-सी, चन्द्रनामक पर्वतकी अमृत-निर्झरिणी-सी, विन्ध्याचलकी चन्द्रकान्त-मणिकी धारा-सी, दण्डकारण्यके कर्पूर-वृक्षके रसकी प्रवाह-सी, दिशाओंके लावण्य रसकी झरना-सी तथा आकाश-लक्ष्मीकी स्फटिकमय शिलाकी शय्या-सी प्रतीत हो रही थी। उसे देखने पर उसकी रमणीयता ने सरस्वतीका हृदय हर लिया और उसने उसीके तटपर ठहरने

---

१. होम इत्यादि।

को सोचा। तब उसने सावित्रीसे कहा "यह बड़ी नदी गङ्गाकी कान्तिको भी मात कर रही है। इसके तटवर्ती स्थानों पर मोर मीठी बोली बोल रहे हैं, यहाँके तरुतल पुष्पपरागके ढेरसे ढके हैं। फूलोंकी सुगन्धसे मत्त भ्रमरोंकी श्रेणी रूपी वीणाकी ध्वनिसे ये स्थान रमणीय हैं और मुझे प्रिय लग रहे हैं। मेरा हृदय यहीं ठहरनेके पक्षमें है।" सावित्रीके द्वारा उसके कथनका "ऐसा ही हो" कहकर अनुमोदन करने पर वह उसके पश्चिम तटपर उतरी; उसने शिलातलसे युक्त तटवर्ती एक पवित्र लतामण्डपमें ठहरनेका विचार किया। थोड़ी देर विश्राम कर वह उठ खड़ी हुई तथा सावित्रीके साथ पूजाके फूल चुनकर स्नान किया। नदी-तटपर बालूके बने हुए शिवलिङ्गका प्रतिष्ठान कर, पञ्चब्रह्म[1]-स्तुति-पूर्वक ध्रुवागीत गाकर परम भक्तिसे अच्छी तरह मुद्राबन्ध[2] नामक विधि सम्पादन करके, पृथिवी, वायु, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और यजमानमयी आठों मूर्तियोंका खूब देर तक ध्यान करके उसने आठ फूल चढ़ाये। अनायास-प्राप्त फल-मूलसे तथा मिठासमें अमृतरसको भी मात करनेवाले शोणके शीतल जलसे उसने शरीर-स्थिति[3] की। दिवस व्यतीत कर वह उसी लता-मंडपके शिलातलपर पल्लवोंकी शय्या बनाकर सो रही। दूसरे दिन भी इसी क्रमसे उसने समय बिताया।

१. सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, और ईशान, इन पाँचोंकी स्तुति।

२. अङ्गुलियोंकी एक खास मिलावटवाली विधि।

३. शरीर-रक्षा-मात्रके लिए अल्प भोजन करना।

इस तरह कितने दिन बीत गये, कितना समय चला गया। (एक दिन) सूर्योदयके एक पहर होने पर उसने उत्तर दिशा में घोड़ोंके हिनहिनानेकी गंभीर और स्पष्ट ध्वनि सुनी, जिससे वन और कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं। उत्कण्ठित होकर लतामण्डपसे बाहर आकर वह देखने लगी। थोड़ी दूर पर ही उसने खिले हुए केतकी फूलकी भीतरी पत्ती-सी उज्ज्वल धूलि-राशिको सामने आते देखा। धीरे धीरे निकट आनेके कारण स्पष्ट होता हुआ घोड़ोंका झुंड शफरीकी उदर-सी धूसर उस धूलि-राशिमें ऐसा मालूम होता था, मानो पानीमें घड़ि-यालोंका समुदाय तैर रहा हो। (घोड़ोंके) आगे केवल हजार नवयुवकोंकी पैदल सेना दौड़ती जा रही थी। लम्बे और घुंघराले केश-पल्लवोंसे रचे हुए जटाजूट उनके ललाट पर शोभ रहे थे। दन्तपात्रिका नामक कानके उजले अलङ्कारकी दीप्तिसे उनके प्रशस्त कपोल हँस रहे थे। 'अगुरु' चन्दनसे लिपी हुई उनकी काली और रंग-बिरंगी कञ्चुकियों (कुर्त्तों) से सुगन्ध निकल रही थी। दुपट्टों (की पगड़ियों) से उनके शिर बँधे हुए थे। वे बाएँ हाथोंमें स्वच्छ सुवर्ण-कङ्कण पहने हुए थे। छुरोंको दोहरे कपड़ेकी तहमें मजबूतीसे बाँधे हुए थे। अनवरत व्यायाम करनेसे उनके शरीर कृश पर सबल हो गये थे। तेज हरिण-समुदायकी भाँति वे बार-बार आकाशमें उड़ रहे थे तथा सम और विषम स्थलोंको, खाइयों और झाड़ियोंको लाँघ रहे थे। उनके साथ लाठियाँ थीं। उनके हाथोंमें तलवारें थीं। उनके साथ वनमें होनेवाले तरह-तरहके पूजाके फल, फूल, मूल और पत्ते थे। "चल चल, जा जा, हट हट, आगे रास्ता दे" इस प्रकार वे अनवरत कोलाहल कर रहे थे।

उनके बीच उसने लगभग अठारह वर्षकी आयुके एक युवकको देखा। अर्धचन्द्रसे युक्त, मोतियोंकी मालाओंसे अलङ्कृत, भाँति-भाँतिके रत्नोंसे खचित, शङ्ख और दूधके फेनके सदृश उजले छातेसे उसके ऊपर छाया की जा रही थी, मानो श्री देनेके लिए आकाशमें स्वयं आये हुए क्षीर-सागरसे[1] उसके ऊपर शोभा की जा रही थी। स्वच्छ अलङ्कारोंके प्रभापुञ्जसे ऐसा प्रतीत होता था जैसे दर्शनकी अभिलाषासे लगा हुआ दिशाओंका समुदाय उसका अनुसरण कर रहा हो। नितम्ब तक लटकती हुई मालती फूलोंकी मालासे, मानो सभी भुवनोंकी विजयसे उपार्जित रूप-पताकासे, वह शोभित हो रहा था। शिखाके अलङ्कारकी पद्मराग-मणिसे निकलती किरणोंसे, मानो आँखों से ओझल देवताके द्वारा धारण किये हुए नवल पल्लवोंसे, उसका शरीर, जो रास्तेकी धूलसे मलिन हो गया था, साफ किया जा रहा था। बकुल नामक फूलोंकी कलियोंकी मालासे आभूषित होनेके कारण मनोहर तथा कुञ्चित केश-कलापसे घिरे हुए शिरसे वह मन्दातप[2] दिवसको मानो पी रहा था। उसका ललाट शिवकी जटाके मुकुट-स्वरूप चन्द्रके द्वितीय खण्डसे बना था और स्वभावसे ही सुन्दर[3] था; ऐसे ललाटके मनःशिला-पङ्क-सदृश लाल-पीले लावण्यसे वह अन्तरिक्षको मानो पोत रहा था। नव यौवनके आरम्भके अभिमानसे प्रगल्भ दृष्टि-पात द्वारा तीनों लोकोंको तृणवत् तुच्छ

१. छातेके सभी विशेषण क्षीर-सागरमें भी लागू हैं।
२. जिसका ताप मन्द हो गया हो।
३. अविकल अर्थ होगा "सहज लक्ष्मीसे आलिङ्गित

कर रहा था, और अपने नेत्रकी दीर्घतासे विकसित कुमुद[1], कुवलय और कमलके सहस्र सहस्र सरोवरोंसे दशों दिशाओंको व्याप्त करते हुए शरद् ऋतुका मानो निर्माण कर रहा था। ललाटरूपी चन्द्रकान्त मणिकी शिलासे गलकर निकलती हुई कान्तिरूपी जलकी धाराके सदृश तथा विशाल नेत्ररूपी नदियोंका विभाग करनेके कारण सेतु-सदृश (सुन्दर) नासिकासे वह शोभित हो रहा था। मत्त मधुकरोंके कोलाहलसे मुखरित मुखसे अति सुगन्धित सहकार[2], कपूर, वनकपूर[3], लवङ्ग, और पारिजातकका[4] परिमल निकालता हुआ वह नन्दन-वन सहित वसन्तको मानो उगल रहा था। पासके मित्रोंके परिहासको समझनेके लिए ऊपर उठाये मुखकी सुन्दर मुसकानोंसे, जो दिशाओंको दाँतोंकी ज्योतिसे नहवा रही थीं, वह आकाशमें मानो बार-बार चाँदनी छिटका रहा था। कानमें (पहनने) का उसका त्रिकण्टक नामक आभूषण कदम्बके मुकुलके समान बड़े-बड़े दो मोतियोंके बीच पिरोई गई एक मरकत-मणिसे बना था; इस आभूषणके हिलनेसे ऊपर निकलती प्रभासे जान पड़ता था जैसे फूल सहित कुन्दके हरे पल्लवका कर्णावतंस बना

१. कुमुद श्वेत होता है, कुवलय श्याम होता है, और कमल लाल होता है। आँखमें भी ये तीन रंग होते हैं।

२. एक तरहका सुगन्धित द्रव्य, आम।

३. मूल शब्द कक्कोल है, जिसे मराठीमें कंकोल तथा बंगालामें कांकोल कहते हैं।

४. अनेक द्रव्योंसे बनाया हुआ मुँहका सुगन्धि-विशेष, देवद्रुम।

हो। सुगन्धित कस्तूरीके पङ्कसे चित्रित पत्रभङ्गसे[1] उसके बाहु-युगल चमक रहे थे। जान पड़ता था जैसे कामदेवकी पताकाके दण्ड-युगल, जिनके शिखर बड़े-बड़े घड़ियालोंसे चित्रित हों, शोभित हो रहे हों। उसका शरीर श्वेत यज्ञोपवीतसे ऐसे विभाजित था, जैसे समुद्र-मथनसे क्रुद्ध गंगाकी धारासे मन्दराचल बँधा हुआ हो। कपूरके मुट्ठी-मुट्ठी चूर्णसे लिपी हुई उसकी छाती (भावी) पत्नीके उच्च स्तनरूपी चक्रवाकके जोड़े (के रहने) के लिए विपुल पुलिन[2]-सी थी; ऐसी (प्रशस्त) छातीसे वह मानो बड़ी बाहोंके बीच पुञ्जित[3] दिशा-समूहको सामने फैला रहा था। हारीत नामक पक्षीके सदृश हरे तथा कसकर बँधे हुए निचले पहनावेसे उसकी पतली कमर विभाजित[4] हो रही थी; पहनावेका एक कोन आगेकी ओर नाभिसे कुछ नीचे सुन्दरतापूर्वक लगा था और एक छोर पीछेकी ओर फेंका हुआ था, ये दोनों छोर दोनों ओर इस तरह बँधे थे कि एक तीसरी ही जाँघ दिखाई दे रही थी। उसकी जाँघोंके ऊपरी भाग अनवरत व्यायाम करनेसे गठे हुए मांससे कठोर हो गये थे; उसकी जाँघें विशाल वक्षःस्थलरूपी पत्थरके चबूतरेको धारण करनेके लिए शिला-स्तम्भ थीं; चारु

---

१. शरीरको आभूषित करनेके लिए बनाया गया चित्र।

२. नदीका रेतीला किनारा।

३. ढेरकी भांति रक्खे।

४. कसकर बँधे वस्त्रसे उसके कमरके ऊपर एक विभाजक रेखा-सी हो गई थी जिसके कारण कमर शरीरके ऊपरी भागसे अलग दीखती थी।

चन्दनके गाढ़े लेपसे वे (जाँघें) सुन्दर दिखती थीं; दण्डोंके समान ऐसी जाँघोंसे वह ऐरावतकी लम्बी सूँड़का उपहास-सा कर रहा था। अत्यन्त भरी हुई जाँघोंका भार वहन करनेकी थकावटसे उसकी टाँग पतली हो गई थीं। कल्प-वृक्षके दो पल्लवोंके समान उसके दोनों पैर (घोड़ेकी) दोनों ओर लटक रहे थे, उन पैरोंके नखोंकी चञ्चल किरणोंसे वह मानो चँवरोंकी माला बना रहा था। वह एक बड़े घोड़े पर सवार था, जो नीले सिन्धुवारके रंगका था। उसके शरीरके रोम गोलाङ्गूलके[1] कपोलकी भाँति काले थे; वह मनके समान वेगवान् था। सामने ऊँचा उठकर, देर तक विश्राम-सा करते हुए और झुकते हुए खुरोंसे वह पृथिवीको खण्डित कर रहा था; क्षण-क्षण दाँतोंसे छुटकर लगाम खण-खण शब्द करती थी; लगामका ऊपरी भाग उसकी लम्बी नाकमें लगा था; सोनेकी सुन्दर कड़ियाँ उसके ललाटपर लटक रही थीं; झुन-झुन करते सोनेके घुँघरूसे[2] वह शोभित हो रहा था। दोनों ओर पलानपर हाथ धरे पासके दो परिचारक दो धवल चँवर चला रहे थे। आगे एक बन्दी सुभाषित[3] पढ़ रहा था, जिसका चिन्तन करनेसे उसके मुखचन्द्रके कपोल रोमाञ्चित हो रहे थे, मानो कानके कमलके केसरके

---

१. एक तरहका बन्दर, इसकी पूँछ गायकी पूँछ—जैसी होती है और इसका कपोल काला होता है।

२. मूल शब्द 'जयन' है, शङ्करके अनुसार यह घोड़ेको आभूषित करनेकी एक माला है।

३. सूक्ति, सुन्दर श्लोक या पद्य।

टुकड़े उन (कपोलों) पर लग गये हों। वह कामदेवके युगका अवतार-सा कर रहा था, चन्द्रमयी-सी सृष्टिको उत्पन्न कर रहा था, विलास-प्रधान-से जीवलोकका सृजन कर रहा था, अनुरागमय-सा एक दूसरा मार्ग ही बना रहा था, शृंगारमय-सा दिवस कर रहा था, प्रेमराज्य-सा बना रहा था। वह आँखोंको आकृष्ट करनेवाला काजल-सा, मनको वशमें करनेवाला मन्त्र-सा, स्वस्थ व्यक्तियोंमें आवेश लानेवाला चूर्ण-सा था। वह उत्कण्ठाके लिए असंतोष-सा[1], सौभाग्यके लिए सिद्धयोग-सा, कामदेवके लिए पुनर्जन्म-दिवस-सा था। वह यौवनका रसायन-सा, रमणीयताका राज्य-सा, रूपका कीर्ति-स्तम्भ-सा, लावण्यका मूल कोष-सा, संसारके पुण्य कर्मोंका परिणाम-सा, कान्तिलताका प्रथम अङ्कुर-सा, प्रजापतिके द्वारा सृष्टि के लिए किये गये अभ्यासका फल-सा, शोभाका प्रताप-सा, पाण्डित्यका कीर्ति-प्रवाह-सा था।

उसके समीप एक दूसरा पुरुष था। उसके घोड़े से लगा हुआ कोई (परिचारक) नहीं था। वह लम्बा और तपे हुए सोनेके खम्भेके आकारका था। प्रौढ़ अवस्थाका होनेपर भी उसका शरीर व्यायाम करनेसे कर्कश हो गया था। उसके नख, दाढ़ी और बाल छोटे-छोटे थे। बाल झर जानेके कारण वह सीपी-सा लगता था। उसकी तोंद कुछ-कुछ निकली हुई थी। उसकी छातीपर बाल थे। आडम्बरशून्य श्रेष्ठ वेश धारण करके वह वृद्धावस्थाको भी विनयकी शिक्षा-सा दे रहा था। गुणियोंको भी गरिमामय-सा और महानुभावोंको भी शिष्य-सा बना रहा

---

१. अतृप्ति-कर-सा।

था, आचारकी शिक्षा-सा वितरण कर रहा था। वह सफेद अँगरखा पहने हुए था तथा धुले हुए रेशमी वस्त्रकी पगड़ी बाँधे हुए था।

अनन्तर आगे-आगे पैदल जानेवालोंसे—जो देखकर विस्मित मनसे कह रहे थे—दिव्य आकृतिवाले उस कन्या-युगलके बारेमें जानकर उस नवयुवकको कुतूहल हुआ। घोड़ेको तेज हाँककर वह उस युगलको देखने की इच्छासे लतामण्डपके ऊँचे स्थानपर आ गया। दूरमें ही वह घोड़ेसे उतर गया। नौकरोंको हटाकर उस दूसरे भद्र मनुष्यके साथ वह पैदल ही नम्रतापूर्वक निकट पहुँचा और उन दोनोंने (उस कन्या-युगलका) अभिवादन किया। तब सरस्वती-सहित सावित्रीने उन दोनोंका वनवासके अनुकूल अतिथि-सत्कार किया। सत्कारके आरम्भमें कोमल पत्तोंका बना आसन तथा अन्तमें फूलों और फलोंका अर्घ्य दिया। उन दोनोंके बैठनेपर सावित्री भी बैठ गई और कुछ देर तक ठहरकर उन दोनोंमें से प्रौढ़ अवस्थावाले दूसरे पुरुषसे कहने लगी-"आर्य, स्वाभाविक लज्जारूपी धनवाली प्रमदाओंके लिए, विशेषतः वनकी हरिणीके समान मुग्ध कुलीन कुमारियोंके लिए, पहले पहल बातें करना ढिठाईका काम है। केवल दर्शनसे कृतार्थ आँखके प्रति ईर्ष्यालु तथा समाचार सुननेको उत्सुक कान (बातें करनेके लिए) प्रेरित कर रहा है। प्रथम दर्शनमें सज्जन उपहारकी तरह प्रेम अर्पण करता है। बड़ोंके द्वारा सविनय अर्पित किया गया मन मदिराकी भाँति सलज्ज (शालीन) व्यक्तियोंको भी मुखर कर देता है। अत्यन्त लचीले धनुषकी प्रत्यञ्चाकी तरह अत्यन्त नम्र एवं साधु पुरुषका सद्गुण विश्वासको अनायास ही पराकाष्ठा पर पहुँचा देता है।

संसारमें स्रष्टाके अदृष्टपूर्व आश्चर्योंको देखकर अति धीर बुद्धि वालोंको भी विस्मय हो जाता है। क्योंकि इस महानुभावका यह रूप तीनों लोकोंमें अनुपम है। युवतियोंकी स्वाभाविक चञ्चलता नहीं, प्रत्युत सुजनताके वशमें रहनेवाली आर्यकी अति भद्रता यह कथा करा रही है। बताइये कि आपके आगमनसे कौन अपुण्यात्मा देश आपके बढ़ते हुए विरहसे व्यथित और सूना हो गया ? कहाँ तक जाना है ? शिवके हुङ्कार-रूपी अहङ्कारका अपहरण करनेवाला, दूसरे कामदेवके समान यह युवक किनका सुपुत्र है ? क्या नाम है इसके महातपस्वी पिताका, जिसके हृदयको यह उसी प्रकार आनन्दित करता है, जिस प्रकार विष्णुके हृदयको अमृतकी वर्षा करनेवाली कौस्तुभमणि ? तीनों लोकोंके द्वारा नमस्कार करने योग्य, महान् तेजको जननेवाली प्रभात-संध्याके समान इसकी जननी कौन है ? किन पुण्यवान् अक्षरोंसे इसका नाम बना है अर्थात् इसके नामका क्या अक्षर-विन्यास है ? यह उत्सुक हृदय इसी क्रमसे आर्यका भी परिचय पाना चाहता है।" उसके इतना कहने पर उसने उत्तर दिया—"हे दीर्घायु, मधुरभाषिता सज्जनोंकी कुल-विद्या है। केवल मुख ही नहीं, पर आपका हृदय भी चन्द्रमय-सा है जो अमृतके छीटोंके समान शीतल वचनोंसे आनन्द दे रहा है। आप-सी सुजनताकी जन्म-भूमि तथा सज्जन निर्माण करनेकी शिल्प-विद्यावाली (स्त्रियाँ) प्रचुर शुभ कर्मोंसे (ही) जन्म लेती हैं। आपसका आलाप तो दूर रहे, कुलीनोंके साथ आँखोंका मिलना भी बड़े पद पर चढ़ा देता है। सुनिये— भगवान् च्यवन "भूर्भुवः स्वः" इन तीन लोकोंके तिलक-

स्वरूप[१] हैं। उन्होंने अनल्प (=महान्) प्रभावसे इन्द्रकी स्तम्भ-सदृश भुजाको रोक दिया था[२]। उन च्यवनके चरण-कमल सुरों और असुरोंकी मुकुटमणियोंकी शिलास्वरूप शय्याको रौंदते हैं। अपने तेजके प्रसारसे उन्होंने पुलोमा नामके राक्षसको जला दिया था[३]। भार्गव-वंशका भूषण-स्वरूप यह युवक उन्हीं (च्यवन)का दधीच नामक प्राणोपम प्रिय पुत्र है। हजार हजार राजाओंके स्वामी विश्व-विजयी शर्यातके सुकन्या नामकी कन्या है। वह राजपुत्री तीनों भुवनोंकी कन्याओंकी मणि है। वही इसकी जननी है। उन देवीको गर्भवती जान, उनके पिता प्रसवके मासमें प्रसव करानेके लिए पतिके पाससे अपने घर ले आये। वहाँ इन देवीने इस दीर्घायुको जन्म दिया। वहीं राजाके घर अपने कुलके लोगोंको आनन्दित करता हुआ यह कमललोचन बालक चाँद के समान काल-क्रमसे बढ़ने लगा। पुत्री पतिके घर आ रही थी, पर नानाने मनोविनोद करनेवाले इस नातीको, जिसके देखनेसे तृप्ति नहीं होती थी, रोक रखा। वहीं इसने सभी विद्याओं और सभी कलाओंको सीखा। काल-क्रमसे इसे युवावस्थामें देख, मुझ (शर्यात)-सा ही वे (च्यवन) भी इसके मुखकमलको देखनेसे होनेवाले आनन्दका अनुभव करें, यह सोचकर इसके नानाने किसी किसी तरह इसे अभी पिताके निकट भेजा है। आप मुझे भी देवता-स्वरूप उन प्रातः-स्मरणीय शर्यातका विकुक्षि नामक आज्ञाकारी

१. या 'इन तीन तिलकोंके धारण करनेवाले'।
२. देखिये पद्मपुराण, चतुर्थ खण्ड, सोलहवाँ अध्याय।
३. देखिये म० भा० आदि पर्व अध्याय ५-६।

तुच्छ सेवक समझें। वह पिताके पैरोंके निकट आ रहा था; स्वामीने मुझे उसके साथ कर दिया। वंश-परंपरासे आया हुआ वह हमारा राज-घराना है। बड़ोंकी चिरकालकी सेवा सेवकके प्रति कुछ दयाका भाव उत्पन्न कर देती है। बड़ोंका उदारताका भण्डार कभी क्षीण नहीं होता। यहाँसे केवल दो कोशपर शोणके उस पार उन भगवान् च्यवनका अपने नामपर बनाया हुआ कुबेरका उद्यान-सा च्यावन नामका निवास-कानन है। हमारी यह यात्रा वहीं तक है। यदि यह दया दिखानेका अवसर है, अथवा यदि आपका हृदय हमारी अवहेलना नहीं करता, अथवा यदि यह व्यक्ति अनुग्रहका पात्र है, अथवा यदि इसकी बात ध्यान देने योग्य है, तो कुतूहलकी इस प्रथम प्रार्थनाको आप तिरस्कृत न करें। हम भी आप दोनों आयुष्मतियोंका वृत्तान्त सुनना चाहते हैं। यह आकृति दिव्यताके प्रतिकूल नहीं है। हम दोनोंका हृदय आपका गोत्र और नाम सुनना चाहता है। इसलिए बताइये कि कौन कुल (आपके) जन्म से स्पृहणीय बन गया। आपके निकटमें ये कौन हैं, जो विरोधी पदार्थोंकी समवाय[1]-सी जान पड़ती हैं। उसी तरह—चमकती हुई देह होनेपर भी उनके बालोंमें अन्धकार सन्निहित है। पुण्डरीक[2]-मुखी होनेपर भी ये हरिण-लोचना हैं। हंसकी ध्वनि

१. सहयोग, सम्मिश्रण, मिलावट।

२. सिंह, कमल। जिसका मुँह सिंहका हो उसके नेत्र हरिणके कैसे हो सकते हैं? इस तरह विरोध मालूम होता है। दूसरे पक्षमें पुण्डरीकका अर्थ कमल है।

वाली होकर भी उन्नत पयोधरवाली हैं[1]। बाल-सूर्यकी प्रभा धारण करती हुई भी ये कुमुदहास वाली हैं[2]। इनके हाथ कमलसे कोमल होनेपर भी नितम्ब हिमालयकी शिला-सा विस्तृत है[3]। करभोरु होने पर भी ये विलम्बित-गमना हैं[4]। कुमार-भाव नहीं छोड़ती हुई ये स्निग्ध-तारका हैं[5]।

सावित्री ने कहा—"आर्य यह सब समयपर सुनेंगे। हम दोनोंका हृदय यहाँ बहुत दिनों तक ठहरनेकी अभिलाषा करता है। यह रास्ता छोटा है। परिचय ही प्रकट करेगा। आप संयोगसे देखे गये इस व्यक्तिको न भूलियेगा।" इतना कह वह चुप हो गई। नये जलसे भरे हुए मेघकी गम्भीर ध्वनि-जैसी वाणीसे वनके लता-मण्डपमें रहनेवाले मयूरोंको नचाते हुए दधीचने धीरतापूर्वक कहा—"हे आर्य, प्रसन्न होनेपर देवी

---

१. हंसकी ध्वनि नदीमें होती है और उन्नत पयोधर (मेघ) वर्षाऋतु के होते हैं, इस तरह नदी वर्षाऋतु नहीं हो सकती; या वर्षामें हंस कूच कर जाते हैं अतः वर्षामें उनका अभाव रहता है। अन्य पक्षमें—हंसकी बोली-सी मीठी बोली और उन्नत स्तन।

२. सूर्यकी प्रभामें कुमुदका हास (खिलना) सम्भव नहीं, अतः विरोध जान पड़ता है। दूसरे पक्षमें कुमुद-हासका अर्थ है कुमुद-सी सफेद हँसी।

३. हिमालयकी चट्टानपर कोमल कमल नहीं हो सकते।

४. करभ (उष्ट्र) का उरु (जंघा) होनेपर विलम्बसे चलना संभव नहीं। अन्य पक्षमें—सुन्दर जाँघवाली और विलासपूर्वक चलनेवाली।

५. कुमार-भाव = कुमारमें भक्ति (विरोधमें); बाल्य (अन्य पक्षमें)। स्निग्ध-तारका = तारकसे भी स्नेह करनेवाली (विरोधमें), आँखकी सुन्दर पुतलीवाली (अन्य पक्षमें)।

(हम लोगोंके ऊपर) अनुग्रह करेंगी। अब हम लोग पिताजी-का दर्शन करें। उठिये, चलें"। 'ऐसा ही हो' इस तरह (अपने साथीके) अनुमोदन करनेपर उसने धीरे-धीरे उठकर नमस्कार किया और वहाँसे चल पड़ा। सरस्वतीने ऊपर उठी हुई पलकोंवाली, स्थिर पुतलियोंवाली, चित्रित-सी आँखोंसे घोड़ेपर सवार होकर जाते हुए दधीचको बहुत देर तक देखा। शोण पार कर वह शीघ्र ही अपने पिताके आश्रमके पास पहुँच गया। उसके चले जानेपर सरस्वती उसी ओर बहुत देर तक देखती खड़ी रही। ऐसा जान पड़ता जैसे कष्टपूर्वक उसने अपनी दृष्टिको रोका।

प्रायः एक मुहूर्त तक उसकी उस रूप-सम्पत्तिका स्मरण करके उस (सरस्वती) का हृदय बार-बार विस्मित हुआ। नेत्र फिरसे उसके दर्शनकी चाह करने लगा। उसकी आँखें बरबस न मालूम किसके द्वारा उसी दिशामें लायी गईं। नहीं भेजा जानेपर भी मन उसी (दधीच) के साथ चला गया। वनकी बाल-लतामें नये पल्लवकी उत्पत्तिके समान इसके हृदयमें न मालूम कहाँसे अनुराग अङ्कुरित हो गया। सुस्त-सी, शून्य-सी और निद्रित-सी होकर उसने दिवस बिता दिया। लाङ्गलिकाके गुच्छोंके समान ताम्रवर्णवाला, बूढ़े सारस पक्षीके शिरके सदृश लाल दीप्तिवाला, सविताका त्रयीमय तेजस्वरूप, कमलिनीका प्रेमी (सूर्य) पश्चिमकी ओर अपने मण्डलको फेंकता हुआ अस्त होने लगा। बाल तमाल-वृक्षोंसे श्यामल आकाश मलिन होने लगा। अन्धकार-राशिसे आकाश व्याप्त होने लगा। घूमती हुई सिद्ध-सुन्दरियोंके नूपुरोंके शब्दका अनुसरण करनेवाले

मन्दाकिनीके हंसके समान चन्द्रमा आकाशमें धीरे-धीरे चढ़ने लगा। ऐसे समयमें संध्या-वन्दन कर सरस्वती रातका आरम्भ होते ही पल्लवोंकी शय्यापर देह ढीली कर पड़ रही। सावित्रीने भी सायंकालकी क्रियाएँ कर उचित शयनकालमें किसलय-शय्याको सुशोभित किया, और नींद आनेपर सो रही।

किन्तु दूसरीने बार बार अङ्ग-सञ्चालन करके नये पत्तोंकी बिछावनको अस्त-व्यस्त कर दिया। आँखें बन्द करने पर भी उसे नींद न आई। और, वह सोचने लगी—'जिस (लोक) में इस प्रकारके त्रिभुवन-भूषण, सकल गुणोंसे युक्त गुरुतर रत्न होते हैं, वह मर्त्यलोक निश्चय ही सभी लोकोंसे बढ़कर है। क्योंकि उसी प्रकार—चन्द्रमा तो उनके मुख-सौन्दर्यके प्रवाहसे निकली एक बूँद है। उनके दृष्टि-पात विकसित कुमुद,[1] कुवलय[1] और कमलके[1] आकर हैं। उनकी अधर-मणिकी किरणें खिले हुए बन्धूक नामक फूलोंकी कतारें हैं। उनके अंगके लिए अनङ्ग (कामदेव) तो अधिकाधिक सौन्दर्यका ही साधन है। उन स्त्रियोंके नेत्र चित्त और यौवन पुण्यवान् हैं, जिन्होंने उन (दधीच) के दर्शन किये। एक ही क्षण तक उनके दर्शन हुए, यह मेरे पूर्व जन्मके अधर्मका फल है। अब क्या करूँ?" देर तक वह इसी तरह सोचती रही। तब किसी किसी तरह उसे नींद आई और वह एक क्षण सो रही। स्वप्नमें उसने उस लम्बे नेत्रवालेको देखा। स्वप्नमें दूसरी बार दर्शन पानेपर, कामदेवने कान तक धनुष खींचकर उसके हृदयमें निर्दयता-

---

१. कुमुद उजला होता है, कुवलय नीला, और कमल लाल। आँखमें भी ये तीन रंग पाये जाते हैं।

पूर्वक चोट की। कामदेवके बाणसे आहत हो जब वह उठी तो उसे अरति हो गई, जो (अरति) मानो उसका समाचार जाननेके लिए आ गई। क्योंकि उसी तरह—उस समयसे पुष्प-परागसे धवल वनलताओंसे चोट नहीं लगनेपर भी उसे पीड़ा हुई। मन्द समीरसे झरी हुई फूलकी धूलसे आँखोंके पीड़ित नहीं होनेपर भी उसने अश्रुजल बहाया। हंसके पंखरूपी व्यजनोंसे बिखेरे हुए शोणके शीकरोंसे सिक्त नहीं होनेपर भी वह आर्द्र हो गई। घूमते हुए हंसोंपर नहीं चढ़कर भी वह वनके कमलोंकी तरंगोंपर झूमती थी[1]। जुदा होते हुए चक्रवाक नामक पक्षियोंके जोड़ोंसे छोड़े गये निःश्वास-धूमसे अछूती रहनेपर भी वह मलिन हो गई। फूलकी धूलसे धूसर हुए भौंरोंसे नहीं काटी जानेपर भी वह छटपटाती थी।

अनन्तर, बहुत रातोंके बीतनेपर उसी रास्तेसे लौटता हुआ विकुक्षि, उस स्थानपर पहुँचकर, उसी तरह नौकरोंको हटाकर छत्र पकड़नेवालेके साथ निकट आया। सरस्वती दूरसे ही उसे सामने आते देख, प्रीतिपूर्वक अच्छी तरह उठ गई और वन-मृगीके समान गलेको ऊपर उठाकर उसे इस प्रकार देखने लगी मानो दशो दिशाओंको धवल करनेवाली दृष्टिसे मार्गमें उस थके हुएको नहला रही हो। उसके बैठनेपर सावित्रीने उससे प्रीतिपूर्वक पूछा—"हे आर्य, क्या कुमार सकुशल हैं?" उसने कहा—"हे दीर्घायु, सकुशल है और आप दोनोंका स्मरण करता है। केवल इन दिनों उसका शरीर दुबला-सा हो गया है।

१. कमलोंकी सुगन्धसे उत्तेजित होकर वह अपनी ही शय्यापर झूमती थी—काणे।

मालूम नहीं होता क्यों वह सूना-सा दिखाई देता। और भी। मालती नामकी दूती आप लोगोंका समाचार जाननेके लिए आपकी आँखोंके सामने उपस्थित होगी। वह कुमारका प्राण है।" यह सुनकर सावित्री पुनः बोली—"निस्सन्देह, कुमार बड़े ही महानुभाव हैं, जो एक क्षणके लिए देखे गये इस प्रकारसे अज्ञात व्यक्तिके साथ परिचय बाँधते हैं। अपनी इच्छासे वह (अपने पिताके घर) जा रहे थे कि उनका मन एक घड़ीके लिए हमलोगोंमें इस तरह आसक्त हो गया था जैसे रास्तेकी लताओंमें कपड़ा फँस जाय। आपके स्वामि-पुत्रकी सुजनता कुलीनतासे रहित नहीं है। अवश्य ही वे आलसी हैं, जो बड़ोंके इस प्रकारसे सुलभ-सौहार्द (सुलभ मित्रतावाले) मनको जिस किसी वस्तुसे ही नहीं खरीद लेते। साधारण व्यक्तियोंके लिए दुर्लभ, बड़ोंकी यह अत्यन्त उदारता है, जिससे वे त्रैलोक्यको अपना प्रधान साधन, अर्थात् सेवक बना लेते हैं।" तरह तरहके आलाप करता हुआ बहुत देर तक ठहरकर विकुक्षि अपने अभीष्ट देशकी ओर चला गया।

दूसरे दिन आकाशके अलङ्कारस्वरूप, प्रचण्ड तेजवाले, ताराओंका अनादर करनेवाले, अन्धकारका तिरस्कार करनेवाले, कमलोंको खिलानेवाले भगवान् सूर्यके उदय होनेपर, शोणको पार कर कतिपय परिजनोंसे घिरी हुई मालती आती दिखाई पड़ी। देहकी तरल प्रभाओंके चँदोवेके बहाने वह मानो शोणके समस्त उत्तम जलको अपने साथ लिये आ रही थी। खिले हुए अतिमुक्तक फूलोंके समान चमकते हुए, केशरवाले बड़े सिंह पर[1] सवार गौरीकी भाँति वह घोड़ेपर थी। वह (घोड़ेकी)

१. सभी विशेषण सिंह तथा घोड़े, दोनोंके लिए लागू हैं।

उरोबन्धा (पायड़ा) में दोनों पैरोंको अच्छी तरह लगाये थी। घोड़ा कान खड़ाकर उसके नूपुरोंकी मधुर-ध्वनि सुन रहा था। उसके पैर खूब गाढ़े महावरसे रंगे हुए थे तथा उनका ऊपरी भाग कुङ्कुमके लेपसे लाल हो गया था। उन चरणोंसे निकलते हुए अत्यन्त लाल प्रभा-प्रवाहोंसे वह मानो ताड़नकी अभिलाषासे दोनों तरफ आये हुए किसलय युक्त लाल अशोक वृक्षोंके वनोंको खींच रही थी। सकल जीवोंके हृदयोंको बलपूर्वक हरण करनेकी घोषणा करनेवाली-सी करधनीसे उसकी जाँघें शब्दायमान हो रही थीं। धुले हुए उजले रेशमसे बने, केंचुलीसे भी हलके, पैरके आगे तक पहुँचे हुए कञ्चुकसे[1] उसकी देहलता ढकी हुई थी। बारीक कञ्चुकके भीतरसे उसके कुछ कुछ सूखे हुए चन्दन (-लेप) से धवल अवयव ऐसे दिख रहे थे, जैसे स्वच्छ जलके भीतरसे पोखरेके कमलनाल दिख रहे हों। कुसुम्भरंगसे लाल, छीटोंसे चित्र विचित्र, भीतरसे चमकता चण्डातक पहने हुई थी; मानो स्फटिक-भूमिकी तरह वह रत्नोंका भण्डार धारण कर रही थी। आँवलेके फलोंके समान गोल गोल मोतियोंकी मालासे वह ऐसे शोभ रही थी जैसे उगे हुए बड़े बड़े नक्षत्रोंसे चित्रित तथा उजले और विरल जलधरोंसे ढका हुआ शरद्-ऋतुका आकाश हो। वह अपने स्तनरूपी पूर्ण कलशोंके ऊपर रत्नोंकी माला धारण किये थी, जिससे किसलयोंके समान लाल और हरी किरणें निकल रही थीं; मानो किसी पुण्यवान् (पुरुष) को अपने हृदयमें प्रवेश करानेके

१. आवरण-विशेष, एक तरहका पहनावा, लम्बी चोली या कुर्ती।

लिए वनमाला[1] पहने थी। उसके प्रकोष्ठ (हाथ) मरकतसे बने घड़ियालोंसे युक्त सोनेके कंगनोंसे भूषित थे। दिशाओंको हरी करनेवाली उन (कंगनों) की किरणें उस (मालती) का अनुसरण कर रही थीं; मानो लक्ष्मीकी आशंकासे स्थल-कमलिनियाँ उसके पीछे पीछे जा रही थीं। पानके अत्यधिक व्यवहारसे उसके होंठ श्यामल हो रहे थे, मानो अपने मुख-चन्द्रके द्वारा पिये गये संध्याकी लालिमासे युक्त अन्धकारको उगल रही थी। विकसित नयनरूपी कुवलयोंके कुतूहलसे लगे हुए भ्रमरोंसे ऐसा जान पड़ता था जैसे नीले रेशमके जालसे उसका आधा मुँह ढका हो। नीलसे रँगा तथा शिवके गलेके समान श्यामल दन्तपत्र[2] उसके बाएँ कानपर शोभ रहा था, इस प्रकार वह काले मेघके टुकड़ेसे युक्त बिजली की तरह चमक रही थी। बकुल फलोंके समान तीन-तीन मोतियोंसे बने, नीचेकी ओर लटकते हुए, तथा आलोक-जलकी वृष्टि करते हुए बालिकाओंके[3] एक जोड़ेसे वह अपनी अति कोमल भुजलताओंको मानो सींच रही थी। दाहिने कानके आभूषणस्वरूप केतकी फूलकी भीतरी पत्ती, चन्द्रमाकी जिह्वाकी भाँति, लावण्यके लोभसे उसके कपोल को चाट रही थी। तमालके समान श्यामल तिलकके ठोपसे, जिससे कस्तूरीकी-सी सुगन्धि निकल रही थी, कामदेवका सर्वस्वस्वरूप उसका मुखमंडल, मानो मुद्रित (मुहरबन्द) था।

---

१. पत्तों और फूलोंसे बनी माला, जो प्रवेश-द्वारपर जल-पूर्ण कलशोंपर रखी जाती है।

२. कानका एक आभूषण।

३. कानके गहने।

ललाटपर नाचनेवाले, माँगको चूमनेवाले, चटुलातिलक[1] नामक आभूषणके रत्नोंसे निकलते हुए चञ्चल किरण-जालसे, मानो लाल रेशमी वस्त्रसे, वह घूँघट किये थी। असावधानीसे बाँधनेसे उसके बालोंकी लट ढीली होकर उसकी पीठपर लटक रही थी और घड़ियालके आकारकी मणि उसके शिरपर शोभ रही थी; इस तरह वह नीले चँवरसे युक्त कामदेवकी पताका-सी दिखती थी। वह चन्द्रमाकी कुलदेवता-सी, कामदेवको फिरसे जिलाने वाली ओषधि-सी, अनुराग-सागरकी वेला-सी,[2] जवानीरूपी चन्द्रोदयकी चन्द्रिका-सी, प्रेमामृतकी महानदी-सी सम्भोग-तरु के फूलोंकी उद्गति (= उत्पत्ति)-सी, पाण्डित्यकी बाल-विद्या[3]-सी कान्तिकी कौमुदी-सी, धैर्यकी धृति-सी, गौरवकी बड़ी शाला-सी, विनयकी जन्म-भूमि-सी, गुणोंकी सभा-सी, महानुभावताकी मनस्विता-सी, तरुणावस्थाकी तृप्ति-सी थी। ऐसी मालतीके पीछे पीछे तरुण किन्तु बड़े घोड़ेपर सवार होकर ताम्बूल-करङ्क-वाहिनी (= पनबट्टा ढोनेवाली) जा रही थी। उसकी आँखें नीले कमलके दलोंकी माला-सी बड़ी बड़ी थीं, अधर पाटल[4] था, दाँत कुन्दकी कलीकी भाँति चमकीले थे। उसकी दोनों भुजाएँ शिरीषके फूलोंके सदृश सुकुमार थीं; हाथ कमलके समान कोमल थे।

१. ललाटपर लटकनेवाला अलङ्कार, जो सोनेकी सिकड़ीमें तरह तरहके रत्नोंसे गुथा रहता है।

२. किनारा।

३. बाल्य-कालमें पढ़ी गई विद्याको कोई नहीं भूलता।

४. लाल, एक फूल जो लाल होता है।

साँस बकुल फूलके समान सुगन्धित थी। उसकी कान्ति चम्पक-जैसी थी। इस प्रकार वह मानो फूलोंसे बनी थी।

दूरसे ही दधीचके प्रेमके कारण सरस्वतीके मनोरथोंसे लुटी-सी, कुतूहलसे आकृष्ट-सी, उत्सुकतासे (सन्मुख जाकर) मिली-सी (सत्कृत-सी), उत्कण्ठासे आलिङ्गत-सी, हृदयके द्वारा भीतर प्रवेशित-सी, आनन्द के आँसुओंसे नहवाई गई-सी, मुस्कुराहटसे पोती गई-सी, साँसोंसे वीजित-सी, आँखों (दृष्टिपातों) से आच्छादित-सी, मुख-कमलसे पूजित-सी, आशाके द्वारा सखी बनाई गई-सी, वह विधिपूर्वक, निकट आई। और, घोड़ेसे उतरकर दूरसे ही शिर झुकाकर प्रणाम किया। उन दोनोंके द्वारा आलिङ्गित होकर वह (मालती) विनयपूर्वक बैठ गई। उन दोनोंके स्नेहपूर्वक बातें करनेसे उसने अपनेको पुण्यात्मा समझा। तब उसने दधीचका संदेश—शिरपर हाथ जोड़कर किया गया नमस्कार—निवेदन किया। और, उसने अपनी सुन्दर आकृतिसे तथा भाँति भाँतिके कोमल वार्तालापोंसे सावित्री और सरस्वतीके मनको वशमें कर लिया।

धीरे धीरे मध्याह्न-कालके बीतने पर और सावित्रीके शोण में नहानेको उतरने पर, परिजनोंको हटाकर मालतीने फूलोंकी सेजपर सोनेवाली सरस्वतीके पास साभिप्राय[1] पहुँचकर यों कहा—"हे देवि, हमें एकान्तमें कुछ निवेदन करना है। अतः कुछ समय तक ध्यान देनेकी कृपा कीजिये, यह मेरी इच्छा है। यह मालती न मालूम क्या निवेदन करेगी, दधीचके संदेशकी

१. किसी अभिप्राय या उद्देशसे।

आशंकासे इस प्रकार सोचती हुई सरस्वती अपने स्तनपर रखे बाएँ हाथके नखोंकी किरणोंसे चमकते हुए हृदयको, जिसे फोड़कर मानो कुतूहलोंके अङ्कुर निकल रहे थे, रेशमी चादरके एक भागसे ढकने लगी। उसके कानका आभूषण-स्वरूप पल्लव नीचे लटक रहा था, मानो दधीचका संदेश सुननेके लिए उसका कान दौड़ा जा रहा था। उसने निरन्तर निकलती हुई साँसोंसे हिलती हुई निकटवर्ती लताका, मानो अपने जीवनकी आशाका, सहारा लिया। उस समय उसके प्रसन्न मुख-चन्द्रसे लावण्यकी धार बहने लगी, मानो वह शृंगार-रसमें जीव-लोकको डुबाने लगी। बिछावनके फूलोंक परिमलमें लगे हुए मधुकर-वृन्दोंके द्वारा, मानो कामरूपी अग्निके दाहसे श्यामल होकर बाहर निकले मूर्त्त मनोरथोंके द्वारा, वह ऊपर उठाई जाने लगी। कामदेवके बाणसे चढ़े हुए तापसे पीड़ित होनेके कारण वह पुष्प-शय्यासे धीरे-धारे उठी। उसके कपोल-तलमें मालती प्रतिबिम्बित हो रही थी, मानो वह उसे लज्जा-सहित कानके समीप ले आई थी, जिससे वह धीरे-धीरे बोल सके। तब वह मधुर वाणीसे धीरे-धीरे कहने लगी—"हे सखी मालती तू ऐसा क्यों कहती है, ध्यान देनेवाली मैं कौन हूँ ? प्रार्थना किये विना भी अत्यन्त अनुकूल व्यक्ति शरीर अथवा प्राण सभीका स्वामी हो जाता है। तू मेरा सब कुछ है। तू मेरी बहिन, सखी, प्रेमिका और प्राण-तुल्य है। जिस छोटे या बड़े कामके योग्य यह क्षुद्र शरीर हो उसमें इसे नियुक्त कर। मेरा हृदय तेरे लिए प्रकट तथा तेरे कहने में है। मैं प्रेमपूर्वक तेरे अनुकूल और

वशमें हूँ। हे सुन्दररूपवाली[1] तू जो कुछ कहना चाहती है कह।" वह कहने लगी—"हे देवी, आप विषयोंकी मधुरता, इन्द्रियोंकी लोलुपता, नई जवानीका उन्माद और मनकी चञ्चलता जानती ही हैं। कामकी दुर्निवारता प्रसिद्ध ही है। अतः आप मुझे दोष नहीं दे सकतीं, और (इस प्रकार मेरे) बोलनेका कारण मूर्खता, चपलता अथवा धूर्तता नहीं है। असाधारण स्वामि-भक्ति क्या नहीं करा सकती? अर्थात् इसी भक्तिके कारण मैं इस तरह बोल रही हूँ। हे देवी, जबसे ही देवने आपको देखा है तबसे ही काम उनका गुरु[2] है, चन्द्रमा उनका प्राणेश[3] है, मलयानिल उनकी सांसों[4] (जीवन) का कारण है, मानसिक पीड़ा उनके अन्तरङ्ग स्थानोंमे[5] है, संताप उनका परम मित्र[6] है, अतिशय जागरण उनका आप्त[7] है, मनोरथ उनके दूत हैं, निश्वास उनकी सेनाके[8] आगे रहनेवाले हैं, मृत्यु उनके पास रहती है, अशान्ति उनके चर हैं, कल्पनाएँ उनके वृद्ध उपदेशक हैं। अथवा आपसे कहूँ ही क्या? देव

१. 'वरवर्णिनी' का दूसरा अर्थ है, वरका वर्णन करनेवाली।
२. गुरुका दूसरा अर्थ है 'गुरुतर' अथवा 'प्रबल'।
३. प्राणेशका दूसरा अर्थ 'मृत्यु' है। चन्द्रमाका अनवरत सेवन करनेसे काम-पीड़ित मनुष्यकी मृत्यु होती है।
४. दूसरा अर्थ है, 'मन्त्रीके समान विश्वसनीय (मित्र)'।
५. विश्वसनीय व्यक्तियोंके स्थानमें।
६. दूसरा अर्थ है 'प्राण-घातक'।
७. प्राप्त। दूसरा अर्थ है 'आत्मीय जन', 'बान्धव-सदृश'।
८. 'विग्रह' का दूसरा अर्थ 'शरीर' है।

देवीके अनुरूप हैं, यह अपनी बड़ाई है। वे शीलवान् हैं, यह आरम्भके विरुद्ध है। वे धीर हैं, यह उनकी (वर्तमान) अवस्थाके विपरीत है। भाग्यवान् हैं, यह तो आपके अधीन है। उनका प्रेम स्थिर है, यह बुद्धिमानोंकी बात है। वे सेवा करना जानते हैं, यह स्वामि-भावके अनुकूल नहीं है। मरनेके समय तक दास रहना चाहते हैं, यह धूर्तोंका आलाप है। आप उनके घरकी स्वामिनी बनेंगी, यह प्रलोभन है। पुण्यवती ही वैसे पतिकी पत्नी बनती है, यह स्वामीका पक्षपात है। आप उनकी मृत्यु (का कारण) हैं, यह अप्रिय है। आप गुणज्ञ नहीं हैं, यह निन्दा है। सपनेमें आप उनके ऊपर प्रसन्न हुई हैं, यह इन आँखोंका देखा नहीं। अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए याचना करते हैं, यह कातरता है। आप वहाँ आवें (और देखें), यह आज्ञा देना है। रोकने पर भी वे बलात् आ रहे हैं, यह अपमान है। आप इस तरह वचनोंकी पहुँचसे बाहर हैं अर्थात् शब्दोंसे वास्तविक अवस्थाका वर्णन नहीं हो सकता। इतना सुन चुकनेपर आप ही (अन्तिम) निर्णय कर सकती हैं।" इतना कहकर वह चुप हो गई।

अनन्तर प्रीतिपूर्वक आँखें फैलाकर सरस्वती बोली-"मैं बहुत नहीं बोल सकती। हे स्मित-वादिनी[1], मैं यह तेरे कहनेमें हो गई। मेरे ये प्राण आप स्वीकार करें।" मालतीने आनन्दके वशीभूत होकर कहा—"आपकी आज्ञा अति दयापूर्ण है।" प्रणाम कर, उस तेज घोड़ेपर उसने शोण पार किया और

१. मुसकुराकर बोलनेवाली।

दधीचको लानेके लिए च्यवनके आश्रममें गई। सरस्वती ने सखीके स्नेहसे सावित्रीको भी यह बात बतला दी। उत्कण्ठाका भार वहन करनेसे थकते हुए चित्तसे दिनके शेष भागको कल्पके समान किसी किसी प्रकार बिताया। भगवान् सूर्यके अस्त होनेपर, धीरे धीरे अंधेरा होनेपर, गुहाको छोड़ते हुए सिंहकी भाँति चन्द्रमा हँसती-सी पूर्व दिशाको छोड़ (कर ऊपर चढ़) रहा था। तब सरस्वती शोणके पवित्र और तरंगित[1] रेतीले तीरपर जो चीनके बने रेशमके समान सुकुमार और रेशमी बिछावनके समान कोमल था, बैठ गई। वह ललाटपर आभूषण पहने हुए थी, मानो स्वप्न में प्रार्थना करने के समय पाँव पड़नेसे लगी हुई दधीचके चरणोंके नखोंकी कान्ति धारण कर रही थी। उसके कपोलरूपी, दर्पणमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाने मानो कहा "हे चारुहासिनी, ले तेरे हृदय का वह प्रेमी व्यक्ति लाया गया" इस तरह उसके कानके समीपवर्ती उस (चन्द्र) ने मानो मदनका सन्देश निवेदन किया। जिसके नखोंकी किरणें छिटक रही थीं ऐसे हाथसे, मानो चाँदकी कलाओंका चँवर बना कर, वह अपने स्वेदमय गालोंपर व्यजन डुला रही थी। "यहाँ (इस हृदयमें) दधीचके सिवा कोई नहीं प्रवेश करेगा" इसी उद्देशसे कामदेवके द्वारा तिरछा करके फेंके हुए विलासके बेतके समान बाल कमलनालको अपने स्तनके ऊपर रखे हुए थी और कष्टपूर्वक उसके भारको छातीसे सँभालती हुई दधीचकी प्रतीक्षा कर रही थी।

१ जल क्षीण होनेसे रेखा-युक्त (शोण नदीका तट)

और उसने सोचा "जहाँ मैं सरस्वती भी उस कामदेवके द्वारा एक नीच स्त्रीकी भाँति परवश की गई वहाँ अन्य अति चञ्चल तरुणी और बेचारी स्त्रियोंकी गिनती ही क्या है !"

सुगन्धित बयारवाले वसन्तके समान सुगन्धसे युक्त, (मुखमें) कमलनाल पकड़े हुए हंसके समान कमलनालसे प्राण-रक्षा करता हुआ, घनकी प्रीतिसे ऊपर मुँह उठाये हुए मोरके समान घनी प्रीतिके कारण ऊपर मुँह करता हुआ, आर्द्र चन्दन और धव नामक वृक्षोंपर आश्रित पतली लताओंमें कम्पन उत्पन्न करनेवाले मलया-निलके समान सरस चन्दन लगानेसे कम्पित धवल देह-लतावाला[1], करोंसे[2] केश पकड़कर चन्द्रमाके द्वारा मानों खींचा जाता हुआ, कामोद्दीपनमें निपुण दक्षिण-समीरसे मानो प्रेरित होता हुआ, रति-रसकी तरंगोंपर मानो ढोया जाता हुआ दधीच मालतीके साथ आया। सुगन्धिके कारण एक साथ आते हुए भ्रमरोंके समुदायसे, मानो नीले कपड़ेसे, उसका शरीर ढका जा रहा था। कामदेवके मत्त हाथीके कानपरके शङ्खके समान भीतर चमकते हुए चन्द्र-प्रतिबिम्बसे, मानो प्रथम समागमके विलासकी लजीली मुसकानसे, उसका एक कपोल धवल हो रहा था।

---

१. इस वाक्यका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है 'चन्दनपरकी आर्द्र, धवल और तनुलतामें प्रकम्प उत्पन्न करनेवाले मलयानिलके समान आर्द्र चन्दन लगानेसे (सरस्वतीकी) धवल देह-लतामें प्रकम्प उत्पन्न करनेवाला।'

२. हाथ; किरण।

(वहां) पहुँचकर हंसके समान गद्गद वाणीसे, जो मानो हृदयमें स्थित प्रियाके नूपुरोंकी ध्वनिसे मिश्रित थी, उसने बातचीत की। तब कामदेवकी आज्ञाके अनुसार, जवानीके उपदेशके अनुसार, अनुरागकी शिक्षाके अनुसार, चतुराईके अध्यापनके अनुसार उसने वह सुन्दर रात बिताई। विश्वास होनेपर सरस्वतीने भी अपना परिचय दिया। उस (सरस्वती) के साथ उसने एक वर्षसे भी अधिक समय एक दिनकी भांति बिता दिया।

अनन्तर दैवयोगसे सरस्वतीको गर्भ रहा। समय पूरा होनेपर उसने सभी लक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। ज्योंही उसका जन्म हुआ, त्योंही माताने उसे "मेरे प्रसादसे इसे सरहस्य सभी वेदों, सकल शास्त्रों और समस्त कलाओंका स्वयं आविर्भाव हो जायगा" यह वर दिया। दधीचको हृदयमें लेकर, मानो अच्छा पति पानेके अभिमानसे उसे दिखानेके लिए, वह पितामहके आदेशानुसार सावित्रीके साथ ब्रह्म-लोक चली गई। उसके चले जानेपर दधीच भी हृदयमें मानो वज्रसे आहत होकर भार्गव-वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण भाईकी अक्षमाला नामक पत्नीको, जो मुनि-कन्या थी, अपने पुत्रके लालन-पालनके लिए नियुक्त कर, विरहसे विकल हो, तपस्या करनेके लिए वन चला गया। जिस समय सरस्वतीने पुत्रको जन्म दिया, उसी समय अक्षमालाने भी एक पुत्र प्रसव किया। उसने उन दोनों बच्चोंको विना किसी भेद-भावके समानरूपसे दूध पिलाकर धीरे धीरे बड़ा किया। उन दोनोंमेंसे एकका नाम हुआ सारस्वत और दूसरेका वत्स। सहोदर भाइयोंके सदृश उन दोनोंके बीच स्पृहणीय प्रीति थी। अनन्तर माताकी

महिमासे सारस्वतको जवानीके शुरूमें ही सभी विद्याएँ आ गईं। तब उसने प्रिय, प्राण-सदृश, सुहृद, भाईमें भी उसी आयुमें समस्त वाङ्मयका संचार कर दिया और उस (वत्स) के विवाह करनेपर उस (सारस्वत) ने उसी प्रदेशमें प्रीति-सहित प्रीतिकूट नामक निवास बनाया। अपने भी वह पलाशका दण्ड, नीले रंगका मृगछाला, वल्कल, अक्षमाला, मेखला (करधनी) और जटा धारण कर अपने तपस्वी पिताके निकट चला गया।

तब वत्ससे एक बड़ा वंश चला। वह भागीरथीके प्रवाहके समान पावन था; उसके आदि पुरुषके द्वारा स्थापित (विद्याकी) शाखाओंकी उन्नतिसे होनेवाला यश बढ़ता गया; राजाओंने उस वंशको अपने मस्तकोंपर धारण किया; सकल कलाओंके आनेसे वह गंभीर था; बड़े बड़े मुनियोंका पूज्य था; विपक्षियोंको क्षुब्ध करनेमें समर्थ था; पृथिवीपर प्रतापी था; और सदाचारी[1] था। उस (वंश) में वात्स्यायन नामक गृह-मुनियोंका जन्म हुआ। वैदिक धर्मका आश्रय लेनेपर भी उन्होंने बगलोंकी भाँति बनावटी वाणीका अवलम्बन नहीं किया। कुक्कुट-व्रत[2] (ग्रहण) करनेपर भी उनकी विड़ाल–जैसी वृत्ति[3] नहीं हुई। वे

१. यहाँ तक वंशके लिए जितने विशेषण आये हैं, उनके मूल शब्दोंसे दूसरे अर्थ भी निकलते हैं, जो भागीरथीके प्रवाहके लिए लागू हैं।

२. कुक्कुट-व्रतके दो अर्थ हैं; (१) कुक्कुट नामक पक्षी भक्षण करनेका व्रत, (२) कुक्कुटके अण्डेके बराबर ग्रास खाकर जीवित रहनेका व्रत। पहले अर्थसे विरोध जान पड़ता है। दूसरे अर्थसे विरोध दूर हो जाता है।

३. विड़ालकी वृत्ति (स्वभाव) हिंसात्मक है।

जनताकी पंक्तिसे[१] दूर रहते थे। वे कपट और छलके[२] विचारसे मुक्त थे। उन्होंने गुहाका[3] ग्रहण नहीं किया अर्थात् वे दाम्भिक नहीं थे। वे धूर्तताका तिरस्कार करते थे, प्रसन्न स्वभावके थे और विकार-रहित थे। उनका चित्त दूसरोंकी निन्दा करनेसे विमुख रहता था तीनों वर्णोंको छोड़नेसे (अर्थात् केवल अपने ही वर्णके लोगोंके साथ भोजन करने से) उनका भोजन पवित्र होता था। उनकी बुद्धि धीर होनेके कारण वे याचनासे पराङ्मुख रहते थे। उनका स्वभाव स्थिर था वे प्रणतोंसे प्रेम करते थे। भिन्न-भिन्न (वैदिक) शाखाओंके उनके समस्त संशय दूर हो गये थे। वे ग्रन्थोंके सभी दुर्बोध अर्थोंकी व्याख्या करते थे। वे कवि, वक्ता, और मत्सरसे रहित थे। सरस वचन कहना उनका व्यसन था। वे चतुर परिहास समझते थे। वे परिचयमें कोमल अर्थात् मिलनसार थे। वे नाच, गान, और बाजेसे बाहर नहीं थे। परम्परासे आई कथाओंमें वे लीन नहीं रहते थे[४]। वे दयालु थे सच्चाईके कारण पवित्र थे। साधु उन्हें चाहते थे। सभी प्राणियोंके प्रति प्रीति होनेसे उनके हृदय पिघलते रहते थे। सभी गुणोंसे युक्त होनेपर भी वे राजस गुणसे रहित

१. शङ्करके अनुसार पंक्तिका अर्थ 'पाक' अथवा भोजन है।

२. कपट और कूर्च (छल) के अतिरिक्त कीर और कुची, ये दो शब्द हैं, इनका ठीक अर्थ नहीं जान पड़ता है।

३. मूल शब्द गह्वर है। अमरने इसके गुहा और दम्भ, ये दो अर्थ दिये हैं। पर शङ्करके अनुसार गह्वरका अर्थ पाप है।

४. या "वे इतिहासमें रुचि रखते थे"।

थे[1]। वे क्षमाशील थे और आश्रितोंके लिए आनन्द-दायक थे[2]। वे तलवार अर्थात् शस्त्र नहीं रखते थे, वे विद्याधर थे[3]। वे जड़ अर्थात् मूर्ख नहीं, कलावान् थे[4]। वे दोषरहित थे और तारक अर्थात् तारनेवाले थे[5]। दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाते हुए वे चमकते थे[6]। वे गर्वरहित थे और यज्ञ करते थे[7]। विना धूर्त हुए वे सुखी थे[8]। वे नम्र थे और पुण्य कर्मोंके निवास-स्थान थे[9]। वे यज्ञ-क्रिया कभी बन्द नहीं करते थे और वे दक्ष अर्थात् चतुर थे[10]। वे शठ नहीं थे, इच्छाओंके जीतनेवाले अर्थात् संतुष्ट थे[11]। वे असाधारण द्विज थे।

१. दूसरा अर्थ, 'सभी गुणोंसे युक्त होनेसे राज-सेना उन्हें न जीत सकी'।
२. विरोधमें, 'क्षमा' का अर्थ पृथिवी है, और 'नन्दन' का नन्दन नामक दिव्य वन। पृथिवी पर रहते हुए वे नन्दन वनका आश्रय लेते थे।
३. विद्याधरका अर्थ विद्वान् समझनेसे विरोध नहीं रहता। विद्याधरों-की एक योनि भी है, वे तलवारके विना कभी नहीं रहते।
४. विरोधमें:—शीतलतासे रहित होनेपर भी चन्द्रमा थे।
५. तारकका अर्थ आचार्य भी बताया गया है। विरोधमें:—विना संख्याके नक्षत्र थे।
६. विरोधमें—दूसरोंको ताप नहीं पहुँचाते हुए भी वे सूर्य थे।
७. विरोधमें—ताप-रहित होकर भी वे अग्नि थे।
८. पृथ्वीपर नहीं चलते हुए भी वे सर्प थे।
९. वे विना खम्भेके पुण्यालय, अर्थात् देवालय थे।
१०. निर्विघ्न यज्ञ होनेपर भी वे प्रजापति दक्ष थे।
११. वे सर्प-रहित होकर भी कामदेवके जीतनेवाले शिव थे।

इस तरह उन द्विजोंकी उत्पत्ति होती रही, संसार चलता रहा, युग बीते, कलियुग आया, वर्ष बीते, दिन बीते, समय बीता। प्रसवोंकी परंपरासे वात्स्यायन-कुलका अनवरत विकाश हुआ। कालक्रमसे (उस कुलमें) गरुड़के समान गुरुभक्त[1] कुबेर नामक द्विजका जन्म हुआ। उसके अच्युत, ईशान, हर, और पाशुपत ये चार पुत्र हुए। वे चार युगारम्भोंके समान थे; उनके ब्राह्म तेजसे प्रजाओंकी वृद्धि होती थी। वे नारायणके बाहु-दण्डके समान साधु वृन्दके आनन्ददायक[3] थे। पाशुपतके अर्थपति नामक एक ही पुत्र हुआ। पर्वतकी भाँति उसने अपने वंशकी प्रतिष्ठा अचल रखी। वह चारों समुद्रोंके समान गम्भीर था। वह महात्मा समस्त ब्राह्मण-वृन्दमें श्रेष्ठ था। उसके ग्यारह पुत्र हुए—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महिदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त, और विश्वरूप। वे रुद्रके समान थे। उनके मुख चन्द्रके[4] अमृतरससे भरे थे। वे पवित्र थे। उनमेंसे चित्रभानुके राजदेवी नामक ब्राह्मणीसे बाण नामक पुत्र हुआ। बालकालमें ही बलवान् विधिकी इच्छासे

---

१. गुरुके दो अर्थ हैं—(१) शिक्षक और (२) पिता; उसी तरह द्विजके भी दो अर्थ हैं—(१) पक्षी और (२) ब्राह्मण। (१) गरुड़के लिए लागू है और (२) कुबेरके लिए।

२. ब्रह्म, वेद, स्रष्टा, और ब्रह्मा, ये चार युगारम्भ हैं।

३. 'सच्चक्रनन्दक' का दूसरा अर्थ है चक्र और खड्ग धारण करनेवाले।

४. मूल शब्द 'सोम' है, उस नामकी एक लता भी है जिसका रस प्राचीन समयमें पिया जाता था।

मृत्युको प्राप्त जननीसे वह (सदाके लिए) विछुड़ गया। पिताको इसके ऊपर अत्यन्त स्नेह हुआ, और उसीने इसकी माताका काम किया। उसके साथ अपने घरमें वह बढ़ने लगा और उसकी दृढ़ता भी अधिकाधिक बढ़ती गई।

उसके उपनयन आदि कर्म किये जानेपर, (गुरुकुलसे) स्नातक होकर लौटनेपर और प्रायः चौदह वर्षके होनेपर, श्रुति और स्मृतिमें विहित द्विजोंके योग्य समस्त पुण्य कर्मोंको समय पर सम्पादन कर, पिता भी अकाल ही अस्त हो गये। पिताके स्वर्गीय होनेपर महान् शोकसे पीड़ित होकर, दिन रात जलते हुए हृदयसे, किसी किसी तरह उसने कुछ दिन अपने घरपर ही बिताये। धीरे धीरे शोक विरल होनेपर, स्वतन्त्रताके कारण होनेवाले अविनयसे, बालकपनके अतिशय कौतूहलसे, नई जवानीकी धैर्य-विपन्नतासे शिशुकालके योग्य अनेक चपलताओं को करता हुआ वह भ्रमणशील हो गया। समान आयुके इसके मित्र और सहायक थे। और उसी प्रकार। चन्द्रसेन और मातृषेण नामक वर्णशङ्कर[1] दो भाई, ईशान नामक भाषा-कवि परम मित्र, रुद्र और नारायण नामक दो प्रणयी, वारबाण और वासबाण नामके दो विद्वान्, वेणीभारत नामक वर्ण-कवि[2], वायुविकार नामक कुल-पुत्र प्राकृत-भाषाका कवि, अनङ्गबाण और सूचीबाण नामके दो चारण, चक्रवाकिका

१. मूल शब्द 'पारशव' का अर्थ है, शूद्र स्त्री और ब्राह्मण पुरुषसे उत्पन्न सन्तान।

२. वर्णनात्मक काव्य करनेवाला, या अपभ्रंश-कवि।

नामकी काषायवस्त्र धारण करनेवाली बूढ़ी विधवा, मयूरक नामका विष-वैद्य, चण्डक नामका तमोली, मन्दारक नामक वैद्य-पुत्र, सुदृष्टि नामक पुस्तक वाचनेवाला, चामीकर नामक सुनार, सिन्धुषेण नामक सुनारोंका अध्यक्ष, गोविन्दक नामक लेखक, वीरवर्मा नामक चित्रकार, कुमारदत्त नामक मूर्तिकार[१], जीमूत नामक मार्दङ्गिक[२], सोमिल और ग्रहादित्य नामक दो गायक, कुरंगिका नामकी सेविका, मधुकर और पारावत नामक दो वांशिक[३], दर्दुरक नामक संगीत-शास्त्रका उपाध्याय, केरलिका नामकी संवाहिका[४], ताण्डविक नामक युवा नर्तक, आखण्डल नामक जुआड़ी, भीमक नामक धूर्त[५], शिखण्डक नामक युवा अभिनेता, हरिणिका नामकी नर्तकी, सुमति नामक पाराशरी भिक्षु[६], वीरदेव नामक क्षपणक[७], जयसेन नामक कथक, वक्रघोण नामक शैव[८], कराल नामक मन्त्रसाधक, लोहिताक्ष नामक धातुवादका ज्ञाता[९], विहङ्गम नामक रासा-

---

१. मिट्टी काठ कपड़े चमड़े या धातुसे बनी मूर्ति या आकृतिको पुस्त कहते हैं।

२. मृदङ्ग बजानेवाला। ३. बंशी बजानेवाले।

४. पैर आदि दाबनेवाली।

५. मूल शब्द कितव है, इसका अर्थ जुआड़ी भी है।

६. जिसने पराशरके सूत्र पढ़े हैं। ७. जैन भिक्षु।

८. शिवका उपासक।

९. 'पातालका अभिलाषी'—शङ्कर। भूगर्भ-प्रवेशका अभ्यासी। 'दशकुमारचरित' और 'कादम्बरी' के अतिरिक्त हर्षचरितमें ही 'असुर-विवर' का चार बार प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ 'भूगर्भ' है। वहाँ स्त्रियोंके होने का विश्वास रहा होगा। स्त्रियों के लिए या कीमती धातुओंके लिए भूगर्भ-प्रवेशका आकर्षण हो सकता है।

-धनिक, दामोदर नामक कुम्हार, चकोराक्ष नामक ऐन्द्रजालिक, ताम्रचूड नामक परिव्राजक। इन तथा अन्य अनुगामियोंके साथ, लड़कपनके वशमें होकर, दूसरे देशोंको देखनेके प्रबल कुतूहलसे, पिता और पितामहसे प्राप्त, ब्राह्मणोंके योग्य सम्पत्ति तथा अटूट विद्याक्रमके रहनेपर भी, वह घरसे चल पड़ा। और, स्वतन्त्र होकर नई जवानीके स्वेच्छाचारी मनके वशीभूत होकर, वह बड़ोंके उपहासका पात्र बना।

अनन्तर, धीरे धीरे उदार व्यवहारसे मनको हरनेवाले बड़े बड़े राजकुलोंको देखते हुए, निर्दोष विद्यासे चमकते हुए गुरु-कुलोंका सेवन करते हुए, अमूल्य आलाप करनेवाले गम्भीर गुणियोंकी सभाओंमें उपस्थित होते हुए, स्वभावसे हो गम्भीर बुद्धिमान् पुरुषोंकी मण्डलियोंमें डुबकी लगाते हुए, उसने फिरसे विद्वानों तथा अपने वंशके योग्य स्वभावको ग्रहण किया।

बहुत समयके बाद फिर वात्स्यायन-वंशके आश्रयस्वरूप अपनी उसी जन्म-भूमिको, जो ब्राह्मणोंका निवास-स्थान है, लौट गया। बहुत दिनोंके बाद उसे देखकर उसके बन्धुओंका स्नेह और सद्भाव नया हो उठा, उन्होंने आदरपूर्वक भाईचारा प्रकट किया और उसके आगमनका, उत्सव-दिवसके समान आनन्द मनाया। अपने बाल्य-कालकी मित्र-मण्डलीके बीच[1] उसको मानो मोक्ष-सुख का अनुभव हुआ।

श्री बाणभट्ट-कृत हर्षचरितमें वात्स्यायन-वंश-वर्णन नामक प्रथम उच्छ्वास समाप्त।

१. "परिव्राड् योगयुक्तश्च शूरश्चाभिमुखं हतः।
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ॥"

योगीके पक्षम 'बालमित्रमण्डलस्य मध्यगतो' का अर्थ होगा—शीतल सूर्य-मण्डलमें।

द्वितीय उच्छ्वास

अत्यन्त गम्भीर राजाके यहाँ, पैठ नहीं पाये हुए व्यक्तिको गुणी और मध्यस्थ सामन्तगण[1] इष्ट-सिद्धि (अर्थात् प्रवेश) प्रदान करते हैं; जिस प्रकार अत्यन्त गहरे कूपमें (सीढ़ीके अभावसे) नहीं उतरे हुए व्यक्तिको डोरीसे लगे, मिट्टीके बने, घड़े इष्ट-सिद्धि (अर्थात् जल) प्रदान करते हैं ।। १ ।।

दिवस लाल कमलको सूर्यसे उत्पन्न होनेवाली शोभा देता है; गुण-दोषोंका विचार किये बिना परोपकार करना सज्जनोंका व्यसन है ।। २ ।।

अनन्तर बहुत दिनोंके बाद देखे हुए बन्धुओंके घरोंमें, मानो मूर्त्त तीनों वेदोंके तपोवनोंमें, प्रीतिपूर्वक घूमता हुआ वह सुखसे रहने लगा। अनवरत अध्ययनकी ध्वनिसे वे (घर) मुखरित होते रहते थे। भस्मके तिलकसे उजले ललाटवाले बटुगण, मानो धूसर शिखाओंसे जटिल अनल, यज्ञके लोभसे वहाँ आकर बैठे रहते थे। सिचाईसे सुकुमार सोम-लताओंकी क्यारियोंसे उन घरोंके आङ्गन हरे हो रहे थे। वहाँ नीले मृगछालोंपर बिखरे हुए यज्ञके द्रव्य—तृण-विशेष तथा चावल—सूखते रहते थे। बालिकाएँ जंगली धानोंकी बलि बिखेरती रहती थीं, सौ सौ पवित्र शिष्य हरे कुशोंका पूला तथा पलाशकी लकड़ी लाया करते थे, जलावन और गोइठे (कंडे) के ढेर पड़े रहते थे।

---

१ छोटे छोटे राजा, राज-कुलके लोग, कुल-पुत्र।

आमिक्षा[1] बनानेके लिए दूध देनेवाली अग्निहोत्र-सम्बन्धी गायोंके खुरोंसे उन घरोंके आङ्गनोंमें बने चबूतरे चित्रित होते रहते थे। वहाँ यति-जन कमण्डल बनानेके लिए मिट्टी मलनेमें व्यग्र रहते थे। यज्ञकी वेदी बनानेके लिए कीलोंके उपयुक्त उदुम्बर-वृक्षों (गूलर) की शाखाओंसे आस-पासके स्थान पवित्र होते रहते थे। विश्वेदेवाः नामक देवताओंको चढ़ाये गये पिण्डोंकी पाँतियोंसे वहाँके स्थान उजले हो जाते थे। होमके धुएँसे आङ्गनके वृक्षोंकी नयी पत्तियाँ धूसर हो जाती थीं। वहाँ गोपाल बालक चञ्चल नव-जात बछड़ोंका लालन करते थे, खेलते हुए काले और चितकबरे छागोंके बच्चोंसे यज्ञका प्रबन्ध सूचित होता था, सुग्गों और मैनोंके द्वारा अध्ययन आरम्भ करनेसे उपाध्यायोंको विश्रामका सुख मिलता था।

जब वह वहाँ रहने लगा तो एक बार बसन्त-ऋतुका अन्त करता, पूर्ण विकसित मल्लिकाओंसे धवल अट्टहास करनेवाला ग्रीष्मकाल बढ़ने लगा[2]। तत्काल जीते गये तथा अस्त हुए वसन्तके नये उद्यानोंके प्रति, जो जलसे सिञ्चित होने योग्य थे, स्नेह दिखाता वह अकठोर हुआ, मानो तत्काल विजित तथा अस्तंगत सामन्तके दुधमुँहे नन्हें बच्चोंके प्रति स्नेह

१. दूधसे बना हुआ पदार्थ-विशेष।

२. वसन्त ऋतुरूपी कल्पका संहार करते हुए, पूर्णविकसित मल्लिकाओंके समान धवल अट्टहास करनेवाले शिवने जँभाई की। ना० प्र० प० वर्ष ५३ के अङ्क १-२में इस वाक्यके अर्थ और अलंकारका विस्तृत विवेचन किया गया है।

दिखाता वह दयालु हुआ। नवोदित ग्रीष्म समयने समस्त पृथिवीपर सभी फूलोंके बन्धन[1] खोल दिये। कामदेवने कामिनियोंके स्नान करनेसे आर्द्र केश-कलापोंको, मानो ऋतुराज वसन्तके अभिषेकसे भींगे चँवरोंको, हस्तगत कर लिया[2]। हिमसे सभी कमल नष्ट हो गये थे, अतः सूर्यने मानो क्रोधसे, हिमालयकी ओर (युद्ध-) यात्रा आरम्भ कर दी[3]।

अनन्तर, जिस समय ललाटको तपानेवाला सूर्य तप रहा था, उस समय ललनाओंके ललाट-चन्द्र, ललाटिकारूपी[4] तिलकोंसे भूषित थे, केशरूपी संन्यास-वस्त्रसे ढके थे, तथा स्वेद-जल-विन्दुरूपी मोतियोंकी अक्ष-माला धारण कर रहे थे; मानो उन ललाट-चन्द्रोंने सूर्यकी आराधना करनेका व्रत ग्रहण किया था। चन्दनसे धूसर, असूर्यंपश्या[5] सुन्दरी स्त्रियाँ कुमुदिनियोंकी भाँति दिनमें सोती थीं। उनकी आँखें, जो नींदसे भारी थीं, रत्नोंके आलोकको भी नहीं सह सकती थीं, कठोर तापकी बात ही क्या कहना। ग्रीष्म ऋतुमें नदियोंकी भाँति चन्द्र-युक्त रातें क्षीण हो गई थीं, अतः चक्रवाकके जोड़ोंने उनका अभि-नन्दन किया। सूर्यके तापके कारण लोगोंको पाटल फूलकी

१. राज्याभिषेकके अवसरपर राजा भी सभी बन्दियोंको छोड़ देता है।
२. नहानेसे गीले बाल सुन्दर लगते हैं और कामोद्दीपक होते हैं।
३. ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्य उत्तरायण होता है।
४. ललाटपर पहननेका आभूषण-विशेष।
५. सूर्यका ताप न सह सकनेवाली, यह विशेषण सुन्दरी स्त्री तथा कुमुदिनीपर समानरूपसे लागू है।

तेज सुगन्धसे सुगन्धित जल ही नहीं, परन्तु पवन भी पीनेकी इच्छा हुई।

धीरे-धीरे सूर्यकी किरणें प्रखर होने लगीं, (ग्रीष्म) ऋतुका शैशव बीत चला, सरोवर सूखने लगे, धाराएँ कृश होने लगीं, निर्झर मन्द पड़ गये। कातर कपोतोंकी[1] अनवरत कूजनसे विश्व बधिर हो रहा था तथा दूसरे पक्षी निश्वास छोड़ रहे थे। वनकण्डे हवामें उड़ रहे थे[2], लताएँ तितर-बितर हो रही थीं। लोहूकी अभिलाषासे सिंह-शावक धातकी नामक लताके कठोर फूल चाट रहे थे। थके हाथियोंकी सूँड़ोंसे निकलते जल-कणोंसे बड़े-बड़े पहाड़ोंके नितम्ब भींग रहे थे। (तापसे) पीड़ित हाथियोंके क्षीण हुए मद-जलकी कुछ-कुछ सूखी काली रेखाओंमें मूक मधुलिट[3] सटे थे। लाल होते मन्दार वृक्षोंसे सीमाएँ[4] सिन्दूरसे लिपी दिखती थीं। जलकी धाराके संदेहसे बेसुध होकर बड़े बड़े भैंसे अपने सींगोंके नोकोंसे चमकती स्फटिक-शिलाओंपर चोट कर रहे थे। गर्मीसे (सूखी) लताएँ मर्मर शब्द कर रही थीं। तपी धूलसे (उत्पन्न) भूसीकी आगसे विकिर नामक पक्षी कातर हो रहे थे। हिंसक प्राणी बिलोंकी शरणमें

१. चर्बी होनेके कारण कबूतर गर्मी नहीं सह सकते, अतः वे कातर हो गये थे।
२. अथवा हवा सूखे गोबरपर चोट कर रही थी।
३. मधु चाटनेवाले भ्रमर।
४. दो गाँवोंके बीचका भाग। कहा जाता है कि सीमापर मन्दारके वृक्ष लगाये जाते थे।

थे। किनारेके अर्जुन नामक वृक्षोंपर कुरर नामक पक्षियोंके कूजनेसे पीड़ित हो पीठके बल छटपटाती मछलियोंसे[1] पंङ्किल[2] पोखरा रंग-बिरंगा होरहा था। दावानलके द्वारा जगती की आरती उतारी जाती थी। रातें क्षय रोगसे ग्रस्त हो गई थीं।

इस तरह प्रौढ़ होते ग्रीष्मकालमें उन्मत्त वायु बहने लगे। वे (वायु) प्रत्येक दिशामें मानो उछल[3] रहे थे, ऊषर स्थानोंमें पनसालों, वाटों तथा कुटियोंके छप्परोंको प्रकट रूपसे लूट रहे थे। पके कपिकच्छूके गुच्छोंकी कतारोंको फाड़नेकी चपलता करनेसे हठात् खुजलाहट होनेके कारण वे कंकरीले और पथरीले स्थानोंसे रगड़ रहे थे। वे बड़े-बड़े कंकरोंको (उठा उठा) फेंक रहे थे। मुचुकुन्दकी नई नालोंके टुकड़े ही उनके दाँत थे। उड़ती तथा बोलती चीरियोंके (झिंगुरों) के मुँहोंसे (निकलते) जल-कणोंसे वे सिक्त हो रहे थे। मृग-तृष्णाकी धाराओंके असत्य जलमें, जो बाल सूर्यके तापसे तरल तथा तरंगित हो रहा था, वे मानो तैर रहे थे। सूखे शमी-वृक्षोंसे मर्मर शब्द करनेवाले मरुस्थलके मार्गोंको आसानीसे लांघनेसे वे अति वेगवान थे। उन्होंने रासके रससे वेगपूर्वक नृत्य आरम्भ किया जो धूलिके आवर्त-समूहको पृथक् कर रहा था, अतः वे आरभटी-नट हो रहे थे।

---

१. "जब किनारेपर कुरर कूजते हैं तो मछलियाँ पीड़ित हो उछलती अर्थात् छटपटाती हैं, यह वस्तु-धर्म है"—शङ्कर।

२. पानी सूखनेके कारण कीचड़से भरा।

३. उन्मत्त अर्थात् पागल भी सभी जगह निरुद्देश घूमा करते हैं। प्रायः शेष सभी वाक्य, जो वायुके लिए कहे गये हैं, पागलके लिए भी लागू हैं।

दावाग्निसे जले स्थलोंकी राख मलनेसे वे मलिन हो गये थे। वे जंगली मोरोंके पर चुन रहे थे, मानो उन्होंने क्षपणकों अर्थात् जैन सन्तोंकी वानि[1] सीख ली थी। करञ्ज वृक्षोंके सूखे बीजोंसे ढक ढक शब्द होनेसे वे युद्ध-यात्राके ढोलोंसे युक्त जान पड़ते थे। गर्मीसे व्याकुल जंगली भैंसोंकी नाक-रूपी निकुञ्जोंसे गहरी साँसें नकल रही थीं, मानो वे (वायु) अङ्कुरोंसे युक्त हो रहे थे। उछलते तेज हरिणोंकी पाँतियोंसे वे मानो सन्तानवाले हो रहे थे। खलिहानपर जलती भूसीके ढेरसे (उठते) धुएँकी टेढ़ी रेखाओंसे वे मानो भ्रुकुटि-युक्त हो रहे थे। कड़ी गर्मी होनेसे वे मानो अवीचि नामक नरककी तरंगोंसे युक्त हो रहे थे। सेमलके फटते फलोंकी रूईके तन्तुओंसे वे मानो लोमश[2] हो रहे थे। सूखे पत्तोंके ढेर होनेसे वे मानो कुष्ठ-रोगी हो रहे थे। घासोंकी पाँतियाँ बिखरनेसे मानो उनकी धमनियाँ निकल आई थीं। यवकी बालोंके टुकड़ोंके हिलते नोकोंसे मानो उन्हें लम्बी दाढ़ी हो गई थी। साहीके उठे काँटे मानो उनके दाँत थे। अग्निकी शिखाएँ मानो उनकी जीभें थीं। साँपकी उड़ती केंचुलियाँ मानो उनकी चूड़ाएँ थीं। कमलके उष्ण मधु (को कवलित करने) से समस्त जगत्के रस अर्थात् तरल पदार्थोंको सोखनेके लिए वे मानो कौर लेनेका अभ्यास कर रहे थे। सूखे बाँसोंके फटनेसे होनेवाले तीक्ष्ण शब्दोंसे, जो समस्त जल-राशिको सोखनेवाली गर्मीकी घोषणा करनेवाले ढोलोंके समान थे, वे (वायु) तीनों लोकोंके लिए भय उत्पन्न कर रहे थे। उड़ते

---

१. क्षपणक राखसे मलिन रहते हैं तथा मोरके पङ्ख धारण करते हैं।

२. रोमवाले।

चाष पक्षियोंके गिरते पाँखोंसे वे रास्तोंको रंग-बिरंग कर रहे थे। गुञ्जाफलोंके[१] स्फुलिङ्गों तथा अंगारोंसे उनके अङ्ग चिह्नित थे, मानो सूर्यकी किरणरूपी लताओंके अलातों (अग्नि-कणों) से जलनेके कारण उनके शरीर लाल-नीले हो गये थे। पहाड़ोंकी गुफाओंमें झङ्कार करते उनका चलना भयानक हो रहा था। संसारको भस्म करनेके लिए उच्चाटनके चरु[२] पकानेमें निपुण वे (वायु) पारिभद्र[३] वृक्षोंके फूलोंसे, मानो लोहूकी आहुतियोंसे, दावानलको प्रसन्न कर रहे थे। तपी सिकतारूपी तारे उनके वेग अर्थात् मार्गमें आ पड़ते थे। तपे पर्वतसे पिघलते शिलाजितके रससे वे दिशाओंको लेप रहे थे। दावानलसे चटका नामक पक्षियोंके पकते अंडोंके खण्डोंसे वे कीड़े, जो वृक्षोंके कोटरोंमें थे, मिल गये, इस मिलावटसे उन कीड़ोंका पुटपाक[४] हो गया, और इसकी गन्धसे कटु थे वे वायु।

दारुण दावानल चारों ओर दिखाई देने लगे। वृद्ध अजगरोंके कण्ठ-कुहरोंसे निकलती साँसोंसे, जैसे हजार-हजार भाथियोंके चलनेसे, वे उद्दीपित होते थे। वे कहीं-कहीं हरिणोंकी[५] भाँति

१. गुञ्जाफल लाल तथा काले होते हैं, स्फुलिङ्गसे लालीका तथा अङ्गारसे कालिमाका बोध होता है।

२. हविष्य, अन्न।

३. पारिभद्रके फूल लाल होते हैं।

४. ओषधि बनानेकी एक क्रिया, जिसके अनुसार ओषधियाँ पत्तोंमें लपेटी जाती हैं और पत्तोंके ऊपर मिट्टी लेप कर वे आगमें पकाई जाती हैं।

५. आग हरिणके समान पीली होती है। बभ्रुका अर्थ नकुलके अतिरिक्त पीला है तथा कपिलका भी अर्थ पीला है।

स्वच्छन्दतापूर्वक घास खाते थे, कहीं-कहीं वृक्षोंके नीचे बिलोंमें नकुलोंकी भाँति लोटते थे, कहीं-कहीं कपिल मुनिके अनुयायियोंकी भाँति जटा धारण करते थे, कहीं-कहीं बाजोंकी भाँति पक्षियोंके घोसलोंको गिराते थे, कहीं-कहीं पिघली लाखके रससे लाल छविवाले वे दुर्धर्ष हो गये थे, अथवा महावरसे लाल छविवाले होठोंके समान हो गये थे। कहीं-कहीं ज्वाला शान्त होनेपर[1] पक्षियोंके पंख पाकर उनका वेग बढ़ गया था। कहीं-कहीं जन्मके कारणोंको[2] निःशेष जलाकर वे निर्वाण हो गये थे। वे कहीं-कहीं धुएँ से वासित आकाशसे सुगन्धित हो लाल रंग धारण करते थे, अथवा कुसुमोंसे वासित वस्त्रसे सुगन्धित प्रेमियों की भाँति दीखते थे। कहीं-कहीं धुएँके निकलनेसे उनकी दीप्ति मन्द पड़ गई थी अथवा धुआँ-डकारसे उनकी रुचि मन्द पड़ गई थी। समूचे संसारको एक ग्रासके समान निगलनेवाले वे भस्मसे युक्त हो गये थे अथवा भस्मक रोगसे[3] ग्रस्त हो गये थे। कहीं-कहीं बाँसोंकी चोटियों पर धधकनेसे अर्थात् पहुँचनेसे वे अत्यन्त बढ़ गये थे, अथवा लाठियोंके ऊपर लगे रहनेसे अत्यन्त बूढ़े हो गये थे। कहीं-कहीं क्षयी रोगियोंकी भाँति पर्वतोंपर शिलाजितका उपयोग करते थे[4]। कहीं-कहीं वे सभी रसोंके भक्षणसे

---

१. विशिखाके तीन अर्थ हैं—(१) जिनकी ज्वालाएँ शान्त हो गई हैं, (२) जिनकी विविध ज्वालाएँ हैं, (३) तीर।

२. तृण, काष्ठ इत्यादि।

३. बहुत खानेकी व्याधि।

४. शंकरने एक संस्कृत उद्धरण दिया है, जिसका अर्थ यह है—"शिलाधातुके प्रयोगसे या शिवकी कृपासे, या बकरीके मूतके प्रयोगसे क्षयरोग क्षीण होता है, दूसरे किसी प्रकारसे नहीं।"

मोटे हो गये थे। कहीं-कहीं गुग्गुल जलाकर रौद्र[1] हो गये थे। वे कहीं-कहीं जलती जड़ोंकी आगसे फूलों-सहित शाखाओं तथा मदन नामक वृक्षोंको जलाकर ठूठे वृक्षोंपर ठहरे हुए थे, अथवा कहीं-कहीं जलती आँखकी आगसे उन्होंने पुष्पधनुष-सहित मदनको जलानेवाले शिवका-सा व्यवहार किया। चञ्चल शिखाओंसे नृत्यके आरम्भमें वे आरभटी[2] नट हो गये थे। सूखे पोखरोंमें पसरकर, फूटते हुए सूखे जंगली धानोंके बीजोंके लावेकी वृष्टि करनेवाली ज्वालारूपी अञ्जलियोंसे मानो वे सूर्यकी पूजा करते थे। बलपूर्वक हवनमें डाले जाते प्रौढ़ कछवोंकी चर्वीकी कच्ची गन्धके लोभी वे मानो घृणा-रहित हो गये थे। अपने धुएँको भी बादल बननेके डरसे[3] वे खा जाते थे। सूखे तृणोंपर छोटे छोटे कीडोंके फुटनेसे उनमें मानो तिलोंकी आहुतियाँ पड़ रही थीं। सूखे पोखरोंमें दाहसे छालोंके चनकनेके कारण घोंघोंके सीप उजले होनेसे वे कुष्ठ-रोगियोंकी भाँति दिखते थे। वनोंमें पिघलते मधुकोषसे निकलते मोम बरसानेसे वे मानो स्वेदमय होते थे। अति ऊषर स्थानोंमें शिखाओंके विरल होनेसे वे मानो खल्वाट[4] होते थे। शिला-समूहोंमें सूर्यकान्त-मणियोंके दीप्त होनेसे वे मानो शिलाओंको कवलित करते थे।

१. भीषण, रुद्रकी पूजा करनेवाले।
२. आरभटीः—ताण्डव नृत्यमें आरभटीकी प्रधानता रहती है।
३. धुआँ कहीं बादल न बन जाय, और बादल कहीं बर्षाके उन्हें शान्त न कर दे।
४. गञ्जा।

उस अत्यन्त भयानक ग्रीष्म समयमें एक दिन भोजन कर वह (बाण) अपने घरमें बैठा था। अपराह्न समयमें शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न चन्द्रसेन नामक भाईने भीतर आकर कहा—"चारों समुद्रोंके अधिपति, सभी राजाओंके चूड़ामणि रूपी शाणसे घिसकर जिनके चरणोंकी नखरूपी मणि निर्मल हो गई है ऐसे देव, सभी चक्रवर्तियोंमें मुख्य, महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीहर्षके कृष्ण नामक भाईने एक अत्यन्त विश्वस्त दूतको आपके निकट भेजा है। वह द्वारपर है।" उसने उत्तर दिया "हे दीर्घायु, उसे शीघ्र भीतर ले आओ।"

तब वह उसे ले आया। बहुत दूर चलनेसे उसकी टाँगें भारी और थकी थीं। मिट्टीके रंगसे रंगे (या मिट्टीसे सने) कपड़ेके टुकड़ेसे उसका गाढ़ा चण्डातक[1] बँधा था और पीठपर लटकते पुराने कपड़ेसे एक ढीली गिरह बँधी थी। पत्रोंकी मालासे उसका मस्तक घिरा था तथा अत्यन्त गाढ़े सूतसे बाँधनेसे (पत्रोंका) मध्य-भाग धँस जानेके कारण उसमें एक विभाजक चिह्न पड़ गया था। उस पत्र-वाहकको भीतर आते देखकर उसने दूरसे ही पूछा "भद्र, अखिल जगत्के अकारण मित्र पूजनीय कृष्ण कुशलसे तो हैं?" "हाँ कुशलसे हैं"—यह कह, वह प्रणाम कर कुछ ही दूरपर बैठ गया।

(कुछ देर) विश्राम कर वह बोला—"माननीय स्वामीने यह पत्र भेजा है" और (पत्र) निकालकर दिया। तब बाणने सादर लेकर उसे स्वयं पढ़ा—"मेखलकसे संदेश जानकर

१. पहननेका एक कपड़ा, जो आधी जाँघ तक रहता है।

(आप-सरीखे) बुद्धिमानों को फलके बाधक विलम्बको पास न फटकने देना चाहिए;" 'इतना ही सार है और शेष तो साधारण समाचार ही है'। पत्रका सार समझकर, परिजनोंको हटाकर उसने संदेश पूछा। मेखलकने कहा—"आप बुद्धिमान्के लिए स्वामीने इस तरह कहा है—आप मान्य तो जानते ही हैं कि समान गोत्र या समान जाति, या साथका पालन-पोषण, या एक स्थानका निवास, या बार बार (एक-दूसरेका) देखना, या आपसके अनुरागका सुनना, या, परोक्षमें उपकार करना, या समान शील, ये सभी स्नेहके कारण हैं। किन्तु, जिस तरह चन्द्र दूरस्थ कुमुदालयके प्रति विना कारण ही स्निग्ध[1] होता है, उसी तरह आप दूरस्थके प्रति मेरा हृदय ऐसे स्निग्ध हो रहा है जैसे समीपमें रहनेवाले बन्धुके प्रति। आपके परोक्षमें ये चक्रवर्ती (सम्राट् हर्ष) भाँति भाँतिसे दुर्जनोंके द्वारा आपके विरुद्ध किये गये थे। किन्तु (इन दुर्जनोंकी) बात सच नहीं है। ऐसे कोई नहीं हैं, वे साधु ही क्यों न हों, जिनके मित्र, उदासीन[2], और शत्रु नहीं हैं। आपका चित्त शिशु-सुलभ चपलताओंसे पराङ्मुख नहीं था, इसलिए किसी असहनशील व्यक्तिने कुछ अनुचित बात कह दी और लोग उसे ही सच समझ दुहराते हैं। अविवेकी पुरुषोंके मन जलकी तरह चञ्चल होते हैं। बहुत (लोगोंके) मुँहोंसे सुनकर निश्चल निश्चय कर लेनेपर पृथिवी-पति (हर्ष) कर ही क्या सकते हैं? सत्यको खोजनेवाले हमलोगोंने आपको दूरस्थ होनेपर भी

१. स्नेहमय, द्रवीभूत।
२. न मित्र, न शत्रु, तटस्थ।

प्रत्यक्षकी तरह जान लिया और आपके लिए चक्रवर्ती (हर्ष) को विदित किया—प्रायः प्रथम वयसमें सभीका शैशव चपलताएँ करनेका अपराधी होता है। स्वामीने यह बात मान ली। अतः आप अविलम्ब राजकुलमें आव। जिस तरह फलरहित वृक्ष सूर्यसे दूर रहता है उसी तरह आप सम्राट्से दूर अपने बन्धुओंके बीच रहते हैं, यह मुझे अच्छा नहीं लगता है। आपको न तो सेवाकी विषमता से विषाद ही होना चाहिए और न सम्राट्के समीप आनेका भय ही होना चाहिए। क्योंकि यद्यपि—

शिवके द्वारा बुरी तरह दग्ध कामदेवका विषय उसकी अपनी इच्छाके अनुसार उत्पन्न होता है, अर्थात् कामदेवका आविर्भाव कहाँ होगा यह उसीकी इच्छापर निर्भर है। पर वह 'देही' अर्थात् शरीरवान् नहीं कहा जा सकता है, वह सौ सौ बाणोंसे दुःख देता है, और मोह अर्थात् मूर्छा उत्पन्न कर हठात् प्राण हर लेता है; उसी तरह दुष्ट राजाको अपनी इच्छासे देश मिलते हैं, पर उससे 'देहि' अर्थात् 'दो' कह याचना नहीं की जा सकती है, (इस तरह) वह सौ सौ याचकोंको दुःख देता है, वह मूर्खतावश (ग्राम आदि) जीविका हर लेता है। हन्त, दुष्ट राजा (का व्यवहार) कामदेवके समान होता है। ॥ ३ ॥

—तथापि इस तरहके राजा भिन्न हैं और ये भिन्न हैं। ये अमृतमय स्वामी नृग, नल, निषध, नहुष, अम्बरीष, दशरथ, दिलीप, नाभाग, भरत, भगीरथ और ययाति (नामक प्राचीन राजाओं) से बढ़ कर हैं। अहङ्काररूपी कालकूट नामक विषसे इनकी आँखें लिप्त हो दुष्ट न हो गई हैं, अर्थात् अहङ्कारके साथ

ये किसीको नहीं देखते हैं। गर्वरूपी भारी तथा विषम गल-ग्रह रोगसे इनकी वाणी अव्यक्त नहीं है; अर्थात् गर्वके साथ ये कुछ भी नहीं बोलते हैं। अति घमंडकी गर्मीरूपी अपस्मारसे स्थिरता खोनेवाली इनकी स्थितियाँ[1] नहीं हैं, अर्थात् इनके हाव-भावमें घमण्ड नहीं है। अनियन्त्रित दर्परूपी ज्वरके दाह-रूपी वेगसे इनके विकार विकल नहीं होते हैं, अर्थात् अति घमण्डसे होनेवाला अत्यधिक विकार इन्हें नहीं सताता है। अभिमानरूपी महा-संनिपातसे इनकी चालमें अङ्ग-भङ्ग नहीं होता है, अर्थात् चलते समय ये अङ्गोंको अभिमानके साथ नहीं तोड़ते हैं। मदरूपी वात-व्याधिके कारण वक्र हुए ओष्ठसे निक-लते निष्ठुर शब्दवाले वाक्य इनके नहीं होते हैं अर्थात् इनके मुँहसे अभिमानपूर्वक कठोर वाक्य नहीं निकलते हैं। और भी। ये विमल साधुओंको रत्न समझते हैं, न कि पत्थरके टुकड़ोंको। ये मोतीके समान सफेद गुणोंको सिंगार समझते हैं, न कि गहनोंके बोझोंको। ये दान-युक्त कर्मोंको साधन समझते हैं, न कि मदस्रावी तुच्छ हाथियोंको। सबके आगे रहनेवाले यशसे इनको बड़ी प्रीति है, न कि जीर्ण तृणके समान जीवनसे। ये दिशाओं-को सजानेमें यत्नशील रहते हैं जिनसे कर मिलता है, न कि चामके पुतलोंके समान अपनी स्त्रियोंको जिनके कर ग्रहण किये हैं। ये गुण- युक्त अर्थात् तने धनुषको सहायक समझते हैं, न कि टुकड़ोंसे जीनेवाले सेवकोंको। और भी। इनकी आत्मा मित्रोंके उपकारके लिए है। इनकी प्रभुता भृत्योंकी भलाईके लिए है।

१. हाव-भाव, शरीरकी स्थिति जैसे उठना, बैठना, चलना, फिरना इत्यादि।

इनकी विद्वत्ता पण्डितोंके उपकारके लिए है। इनकी लक्ष्मी बन्धुओंकी भलाईके लिए है। इनका ऐश्वर्य कृपणों अर्थात् दुखियोंके उपकारके लिए हैं। इनका सर्वस्व द्विजोंकी भलाईके लिए है। इनका हृदय सुकृतोंके संस्मरणका साधन है। इनकी आयु धर्मका साधन है। इनका शरीर साहसका साधन है। पृथिवी इनके असि-सञ्चालन[1]का क्षेत्र है। राजवृन्द इनके विनोदका साधन है। शत्रु इनके प्रतापका साधन है। इनके पाद-पल्लवकी छाया, जिससे सर्वोत्तम आनन्द-रस निकलता रहता है, अल्प पुण्योंसे नहीं पाई जा सकती है।" यह सुन कर उसने उसी चन्द्रसेनको आदेश दिया—"इनके भोजन-छाजन और विश्राम-सुखका प्रबन्ध करो।"

अनन्तर, वह चला गया। दिवसका अन्त हो रहा था। बन्द होते लाल कमलोंके सम्पुट क्षयसे ग्रस्त, क्षीण होते, बाल वायसके मुखके समान अरुण, अपराह्ण-आतप[2]को मानो पी रहे थे। अड़हुल फूलोंके गुच्छेके सदृश लाल सूर्यने अपने घोड़ोंका वेग कम कर दिया तथा अस्ताचलकी चोटीपर गिरनेसे लंगड़ा-सा रहा था, मानो उसके पाद-पल्लव कमलके काँटोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे। पूर्व दिशामें निशाका[3] आरम्भ[4] हो रहा था। उसकी विरल अन्धकाररूपी लटें लटक रही थीं।

१. तलवार चलाना।
२. शाम होनेसे पहलेका सूर्यका प्रकाश।
३. श्यामाका दूसरा अर्थ 'रमणी' है।
४. मूल शब्द 'मुख' है जो रमणीके लिए लागू है।

चन्द्रमाके वियोग-दुःखसे वह श्यामवर्णकी हो गई थी। ऐसे ही समयमें वह संध्योपासना कर शय्यापर गया। और स्वयं सोचने लगा—"क्या करूँ। राजाने मुझे कुछ और ही समझ लिया है। अकारण बन्धु कृष्णने इस तरहका संदेश भेजा है। और, सेवा कष्ट-दायक है। दासत्व विषम है। महान् राजकुल अति गम्भीर है। वहाँ पूर्वजोंसे आई मेरी प्रीति नहीं है और न वंश-परम्परासे आई पहुँच ही है। न ऐसा कोई उपकार ही है जिसके स्मरणसे अनुग्रह हो सकता है; और न बचपनकी सेवा ही है जिसके कारण स्नेह हो सकता है। न वंशकी मर्यादा है, न पूर्व-परिचय है, जिससे दया हो सकती है। न ऐसा ज्ञान है जिसके आदान-प्रदानका प्रलोभन हो सकता है। न अतिशय विद्या है जिसके कारण उत्कण्ठा हो सकती है। न सुन्दर आकृति है जिसके कारण आदर हो सकता है। न तो सेवाके अनुकूल वाणी-कौशल ही है। न तो विद्वानोंकी सभाके योग्य चतुरता ही है। धन-व्यय कर (राज-कुलके लोगोंको) वश करनेकी सामर्थ्य नहीं। राजाके प्रिय-पात्रोंसे परिचय नहीं। पर, जाऊँगा अवश्य। मेरे जानेपर जगद्गुरु भगवान् शिव सब प्रकारसे अच्छा ही करेंगे।" इस तरह सोचकर उसने जानेका निश्चय किया।

अनन्तर, दूसरे दिन उठ, सबेरे ही नहा, धवल रेशमी वस्त्र धारण कर, अक्षमाला ले, उसने प्रस्थानके उपयुक्त वैदिक सूक्त तथा मन्त्र बार-बार पढ़े। दूधसे नहला, सुगन्धित फूल, धूप, गन्ध, ध्वजा, बलि, लेप, और दीपसे उसने देवोंके देव शिवकी पूजा। आरम्भमें डाले गये तरल तिलोंकी भूसीके फटनेसे

जिसकी शिखाएँ चञ्चल तथा मुखर हो रही थीं तथा पर्याप्त घी डालनेसे जिसकी दक्षिण शिखाएँ बढ़ गई थीं—ऐसे भगवान् आशुशुक्षणिको[1] हवन किया। द्विजोंको यथाशक्ति धन दिया। पूर्वकी ओर मुँह किए खड़ी एक श्रेष्ठ गायकी प्रदक्षिणा की। उजले लेप, उजली माला तथा उजले वस्त्रसे अपनेको विभूषित किया। रोचनासे लिपी दूबके अग्रभागसे गुँथे गिरिकर्णिका-फूलोंसे उसने अपने कानोंको अलङ्कृत किया। शिखामें सरसों रख दीं। माताके सदृश, स्नेहसे आर्द्र हृदयवाली, श्वेत वस्त्र पहने हुई, साक्षात् भगवती महाश्वेताके[2] समान, पिताकी छोटी बहिन मालतीने यात्राके समय किये जानेवाली सभी मंगल किये। बन्धुओंके घरोंकी वृद्धा स्त्रियोंने आशीर्वाद दिया। वृद्ध सेविकाओंने अभिनन्दन किया। गुरुओंने, जिनके चरणोंकी वन्दनाकी, आज्ञा दी। कुलके बड़ोंने, जिनका उसने अभिवादन किया, उसके शिरको चूमा। पक्षियोंने प्रस्थान करनेका उत्साह बढ़ाया। ज्योतिषियोंके मतके अनुसार उसने नक्षत्रोंकी अभिलाषा पूरी की[3]। शुभ मुहूर्तमें हरे गोबरसे लिपे आँगनके चबूतरे-पर रखे, धवल कुसुमोंकी मालासे घिरे कण्ठवाले, घोले आँटेमें भिगी पाँचों अँगुलियोंके चिह्नसे सफेद, तथा मुँहपर रखे आमके पल्लवसे युक्त, (जल-) पूर्ण कलशको देखा। कुल-देवताओंको प्रणाम किया। अपने द्विजोंसे, जिनके हाथ फूलों और फलोंसे

१. अग्नि। आशुशुक्षणि वैदिक शब्द है।

२. देवता-विशेष।

३. नक्षत्रोंको प्रसन्न करनेके लिए आवश्यक पदार्थ चढ़ाये।

भरे थे तथा जो अप्रतिरथ[1] नामक वैदिक सूक्त जप रहे थे, अनुसृत हो, दाहिना पैर पहले उठा, वह प्रीतिकूटसे निकल गया।

पहले दिन धीरे-धीरे उसने चण्डिका-कानन पार किया। गर्मीके कारण वह जल-रहित जंगल कष्ट-दायक था। विना पत्तोंके वृक्षांसे वह डरावना लगता था। द्वारके वृक्षोंपर दुर्गाकी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण थीं। पथिकगण उन्हें प्रणाम करते थे। जंगल सूखा होनेपर भी जंगली जानवरोंकी हजार-हजार लटकती और काँपती जिह्वारूपी लताओंसे मानो पल्लवित हो रहा था; भालू-बानरोंसे चाटे जाते छत्तोंसे निकलती मधुमक्खियोंसे मानो पुलकित हो रहा था; जले स्थानोंमें उगे शतावरीके स्थूल अङ्कुरोंसे मानो रोमाञ्चित हो रहा था। जंगल पारकर वह मल्लकूट नामक गाँवमें गया। वहाँ जगत्पति नामक प्राणोंके समान प्यारे भाई और अभिन्न-हृदय मित्रने उसका सत्कार किया और वह उसके साथ सुखसे रहा। दूसरे दिन भगवती भागीरथीको पारकर यष्टिग्रहक[2] नामक जंगली गाँवमें रात बिताई। तीसरे दिन वह राजशिविरमें पहुँचा, जो मणितार नगरके समीप अजिरवती नदीके किनारे बनाया गया था। वह राजभवनसे कुछ ही दूर पर ठहर गया।

स्नान-भोजन और विश्राम कर, एक पहर दिन शेष रहनेपर राजाके भोजन करनेपर, प्रसिद्ध भूपोंके अनेक शिबिरोंको देखता हुआ, मेखलकके साथ वह धीरे धीरे राजद्वारपर गया,

१. ऋग्वेद १०।१०३। २. पा० 'यष्टिगृहक'।

जो हाथियोंसे श्यामल हो रहा था। वे पट्ट[1] बाँधनेके लिए उपस्थित किये गये थे, या (अपनी पीठों पर) ढोल चढ़ानेके लिए लाये गये थे। कुछ तो नये बाँधे गये थे। कुछ करमें उपार्जन किये गये थे, कुछ उपहारमें आये थे, और कुछ हाथी पालनेवालों[2]ने भेज दिये थे। कुछ पहली बार देखनेके कुतूहलसे लाये गये थे। कुछ दूत भेजनेसे भेजे गये थे। कुछ पल्ली-पतियोंने भेंट किये थे। कुछ नकली लड़ाईका खेल करानेके कुतूहलसे बुलाये गये थे। कुछ दिये गये थे, कुछ छिने गये थे, और कुछ छोड़ दिये गये थे। कुछ पहरेपर रखे गये थे। सभी देशोंको जीतनेकी इच्छासे सागरमें सेतु बाँधनेके लिए पर्वतोंके सदृश वे एकत्र किये गये थे। वे ध्वजा, वस्त्र, तेज ढोल, शङ्ख, चामर और अङ्गरागसे रमणीय पुष्याभिषेक दिवसके[3] समान हो रहे थे।

वह (राज-द्वार) तुरङ्गोंसे तरङ्गित हो रहा था। अनवरत चलते खुरोंसे मृत्तिकारूपी मृदङ्ग बजाकर वे मानो राजलक्ष्मीसे नृत्य करा रहे थे। होठोंके अन्त तक फैले हुए फेनरूपी अट्टहाससे वे समस्त हरिण जातिकी, चाल मन्द होनेके कारण, मानो हँसी कर रहे थे। हर्षसे हिनहिनाकर वे मानो उच्चैः

१. सम्मान-जनक चिह्न-विशेष।

२. नागवीथी = हाथियोंका प्रान्त; पाल = पालक।
नागवीथीपाल = हाथियोंके प्रान्तमें उनके पालनेवाले।

३. पुष्य नक्षत्र में राजा जिस दिन अभिषेक (स्नान-विशेष) करता है वह दिन पुष्याभिषेक कहा जाता है।

-श्रवाको[1] युद्धके लिए ललकार रहे थे। सूर्यके रथके घोड़ोंके प्रति रोष होनेसे वे मानो आकाशमें उड़ रहे थे और आभूषण-स्वरूप चामरोंकी मालाएँ उनके पंख हो रही थीं।

कहीं कहीं वह (राजद्वार) बानरके कपोलके समान भूरे ऊँटोंसे भूरा हो रहा था। वे भेजे गये थे, भेजे जा रहे थे या बदलेमें आये थे। यात्राके अनेक योजनोंकी गणनामें लगे संख्या-सूचक अक्षरोंकी भाँति दीखनेवाले श्वेत चामरोंसे उनके मुख मण्डित होनेसे वे मानो संध्याकालीन आभाके टुकड़े थे, जो ताराओंसे शोभित हों। लाल चामरोंसे उनके कान भूषित होनेसे वे मानो लाल धानके खेत थे, जो लाल कमलोंसे युक्त हों। वे अनवरत झनझन करते सुन्दर सुवर्ण-घुंघरूके हारोंसे अलङ्कृत थे, मानो वे जीर्ण करञ्ज वृक्षोंके वन थे जिनके सौ सौ कोशोंके भीतर सूखे बीज बज रहे थे। उनके कानोंके समीप पँचरंगे ऊनके सूतके रंग-बिरंगे गुच्छे और जालियाँ लटक रही थीं।

कहीं-कहीं वह (राज-द्वार) श्वेत आतपत्रोंसे श्वेत हो रहा था। वे (आतपत्र) उसी क्षण जल निकलनेसे धवल देहवाले शरत्कालीन जलधरोंके सदृश थे। वे उन कल्पवृक्षोंकी भाँति थे, जिनकी गोलाकार छाया मोतियोंसे उत्पन्न आलोकसे विलीन हो जाती है। वे नारायणकी नाभिके उन श्वेत कमलोंके सदृश थे, जो गरुड़-पक्ष[2] से सटे रहते हैं। वे चमकीले प्रवाल-

१. इन्द्रका घोड़ा।

२. कमलके पक्षमें—गरुड़के पंख। आतपत्रके पक्षमें—रत्न-विशेष।

समुदायसे युक्त क्षीरसागरके टुकड़ोंके समान थे। वे उन शेषके फनोंकी तरह थे, जिनके ऊपर बड़े-बड़े माणिक्य चमकते रहते हैं। वे राजहंसोंसे सेवित गंगाके श्वेत पुलिनोंके तुल्य थे। वे ग्रीष्म समयको मानो पराजित कर रहे थे, सूर्यके प्रतापका मानो उपहास कर रहे थे, और उसके आतपको मानो पी रहे थे। वे जीवलोकको चन्द्रमय-सा बना रहे थे, समयको कुमुदमय-सा कर रहे थे और दिवसको ज्योत्स्नामय-सा बना रहे थे। वे आकाशको फेनमय-सा प्रदर्शित कर रहे थे। असमयमें ही हजार-हजार चन्द्रिकाओंका मानो सृजन कर रहे थे। इन्द्रकी शोभाका मानो उपहास कर रहे थे।

चन्द्रकिरणोंके सदृश शुचि सहस्रों चामरोंके चलनेसे वह (राजद्वार) दोलायमान हो रहा था। आठों दिशारूपी मुखोंके क्षणभरके लिए दिखाई पड़नेसे और फिर नष्ट अर्थात् आँखोंसे ओझल हो जानेसे वे मानो भुवनको[1] चुरा रहे थे। बार-बार ऊपर उठकर नीचे गिरनेसे वे चामर दिवसको मानो दोलापर चढ़ाकर झुला[2] रहे थे। वे बुरे राजाके कलंकके समान कलियुग-की काली स्थितिको[3] मानो दूर हटा रहे थे। वे शरत्समयको

१. यहाँ भुवनको शरीरधारी जीव माना गया है, जिसकी आठों दिशाएँ ही आठ मुख हैं।

२. चँवरोंके ऊपर उठनेसे सूर्यका प्रकाश आँखोंसे ओझल हो जाता था और फिर उनके नीचे गिरनेसे प्रकाश दिखाई पड़ता था। इस तरह सूर्यका प्रकाश अथवा दिवस बार-बार दूर होकर निकट हो जाता था।

३. शासन, निवास-स्थान।

मानो उत्पन्न कर रहे थे, जब दिशाएँ फूले हुए विशद काशके वनोंसे धवल रहती हैं। वे अन्तरिक्षको कमल-नालके रेशोंसे बना हो, ऐसा दिखा रहे थे।

और भी। वह (राजद्वार) हाथीके कानोंके शंखोंसे हंसोंका समुदाय-सा हो रहा था, केलेके[1] पौधोंसे कल्पलताओंका जंगल-सा हो रहा था। मोरके परोंके आतपत्रोंसे माणिक्य-वृक्षोंका वन-सा हो रहा था। सफेद बारीक वस्त्रोंसे मन्दाकिनीका प्रवाह-सा हो रहा था। धवल रेशमी वस्त्रोंसे क्षीर-सागर-सा हो रहा था। मरकतकी किरणोंसे कदली-वन-सा होरहाथा। पद्मरागकी बाल-किरणोंसे दूसरे दिवसकी उत्पत्ति-सा कर रहा था। इन्द्रनीलके प्रभा-पुञ्जसे दूसरे आकाशकी सृष्टि-सा कर रहा था। महा-नीलकी किरणोंकी अन्धकार-राशिसे अपूर्व रात्रिका आरम्भ-सा कर रहा था। गरुड़मणिके प्रभा-पुञ्जके कारण मानो हजार हजार यमुनाएँ वहाँ बह रही थीं। पुष्परागकी[2] रश्मियोंसे मानो वह अंगारमय हो रहा था।

वह (राजद्वार) पराजित शत्रु महासामन्तोंसे[3] भरा पड़ा था। कोई कोई प्रवेश नहीं पाकर, नीचे मुँह किये हुए थे और अपने पैरोंके नखोंमें मुखोंके प्रतिबिम्ब पड़नेके बहाने, मानो लाजसे अपने ही अंगोंमें घुसे जा रहे थे। कोई कोई अंगुलियोंसे धरतीपर रेखाएँ खींच रहे थे और वहाँसे किरणें फैल रही थीं; उनके बहाने मानो वे सेवाके चामर अर्पण कर

---

१. मूल शब्द 'कदलिका' का दूसरा अर्थ पताका है।

२. मणि-विशेष।

३. बड़े बड़े अधीनस्थ राजा।

रहे थे। किन्हीं किन्हींकी छातियोंपर इन्द्रनीलकी मणियाँ झूल रही थीं और उनसे तरल किरणें निकल रही थीं, इस तरह मानो वे स्वामीके कोपको शान्त करनेके लिए अपने अपने गलेमें तलवारें बाँधे हुए थे। साँसके सौरभसे मँड़राते भौंरोंसे कतिपयोंके मुख अँधियारे हो गये थे, मानो वे लक्ष्मीके अपहरणके शोकसे लम्बी दाढ़ियाँ रखे हुए थे। कुछ लोगोंके मुकुटोंके ऊपर भ्रमर उड़ रहे थे, मानो उनके मुकुट प्रणामरूपी अपमानके भयसे भाग रहे थे। अनन्यशरण[1] होनेके कारण वे पराजित होकर भी मानो सम्मानित हो रहे थे। अन्दरके प्रतीहार बीच बीचमें बाहर आते थे और भीतर चले जाते थे, उनके मार्गके पीछे भाँति भाँतिके सहस्रों प्रार्थी दौड़ रहे थे और उन प्रतीहारोंके अनुयायी पुरुषोंसे वे (सामन्तगण) बिना थके बार बार पूछ रहे थे—"भद्र, आज (दर्शन) होगा? क्या भोजन कर सम्राट् स्थानपर दर्शन देंगे? या बाहरके कमरेमें आवेंगे?" इस तरह दर्शनकी आशासे वे दिवस बिता रहे थे।

(सम्राट्के) प्रतापके अनुरागसे नाना देशोंसे दूसरे महीपाल भी वहाँ आये हुए थे; वे सम्राट्के दर्शनके समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे वहाँ जैन, आर्हत, शैव, पाराशरी भिक्षु और ब्रह्मचारी एकान्तमें बैठे हुए थे। वहाँ सभी देशोंके निवासी तथा सभी सागरोंके तीरवर्ती जंगलोंमें रहनेवाली म्लेच्छ जातियोंके लोग वर्तमान थे। अन्य सभी देशोंसे आये हुए राजदूत वहाँ उपस्थित थे। वह (राजद्वार) प्रजापतियोंके लिए

१. (हर्षके अतिरिक्त) जिसकी और कोई शरण न हो।

सकल प्रजाओंका निर्माण करनेका स्थान-सा था अथवा तीनों लोकोंके सार-समूहोंसे रचित चतुर्थ लोक-सा था। शत शत महाभारतोंसे भी उसके समृद्धि-गौरवका वर्णन नहीं हो सकता था। जान पड़ता था जैसे हजार-हजार कृतयुगोंसे उसका सन्निवेश[1] बनाया गया हो और अर्बुद-अर्बुद[2] स्वर्गोंसे उसकी रमणीयता बनाई गई हो। वह कोटि-कोटि राज-लक्ष्मियोंसे आलिङ्गित हो रहा हो ऐसा लगता था।

(राजद्वारको देखकर) वह विस्मित हो गया और उसके मनमें यह बात आई—'क्योंकर इतने बड़े प्राणि-समूहको उत्पन्न करनेमें प्रजापतियोंके महाभूतोंका नाश नहीं हो गया, अथवा परमाणुओंका अभाव नहीं हो गया, अथवा कालका अन्त नहीं हो गया, अथवा आयुका शेष नहीं हो गया, अथवा आकृतियोंकी समाप्ति नहीं हो गई ?' दूरसे ही द्वारपालोंने मेखलकको पहचान लिया। "आप पुण्यात्मा क्षणभरके लिए यहीं ठहर जायँ।" यह कहकर वह (मेखलक) विना किसी रुकावटके आगे घुस गया।

तब एक मुहूर्तमें वह बाहर आया। उसके पीछे पीछे एक पुरुष आ रहा था। वह पुरुष लम्बा था और कर्णिकार फूलके समान गोरा था। निर्मल कञ्चुकसे[3] उसका शरीर ढका था। चमकते हुए माणिक्य-पदकोंसे पिरोई हुई करधनी बाँधनेसे उसकी कमर पतली दिखती थी। उसका वक्षःस्थल हिमालय-की शिलाके सदृश विशाल था। उसका कंधा महादेवके बैलके

१. सम्यक् स्थिति।

२. दश कोटिका एक अर्बुद होता है।

३. एक तरहका पहनावा।

ककुद्की[1] भाँति ऊपर उठा हुआ था। वह हृदयपर हार धारण कर रहा था, जो मानो चपल इन्द्रियरूपी हरिणोंको बाँधनेकी डोरी थी। वह कानोंमें लटकते हुए मणिमय कुण्डलोंसे भासित हो रहा था; मानो वह कुण्डलोंके रूपमें चन्द्र और सूर्यको यह पूछनेके लिए ले आया था—"बताओ तो चन्द्र-वंश अथवा सूर्य-वंशमें ऐसा राजा कभी हुआ भी था?" उसके मुखमण्डलसे निकलता हुआ लावण्य-प्रवाह सूर्यकी किरणोंको तिरस्कृत कर रहा था, जो मानो उसके गुरुतर अधिकारके कारण उसे मार्ग दे रही थीं। दूरसे ही वह अपनी दीर्घ-दृष्टिसे, मानो (स्वामीके) प्रसादसे प्राप्त विकसित कमलोंकी मालासे, उस (बाण) को आनन्दित करने लगा। निष्ठुरताके पदपर[2] रहनेपर भी वह अपने नम्र शिरपर विनय-स्वरूप पगड़ी धारण कर रहा था। बड़े बड़े मोतियोंसे मढ़े होनेके कारण रूखड़ा वेंटबाला कृपाण उसके बाएँ कर-किसलयमें विराजमान था और दाहिने हाथमें सोनेका चमकीला दण्ड सुशोभित था, जो मानो तरलता-रहित बिजलीकी लता थी। बाहर आकर उस (मेखलक) ने कहा—"ये बड़े बड़े प्रतिहारियोंके प्रधान हैं, देवके प्रिय-पात्र हैं, पारियात्र नामक द्वारपाल हैं। कल्याण चाहनेवाले आप अनुरूप आचरणसे इन्हें अनुगृहीत करें।" निकट आकर द्वारपालने प्रणाम किया और मधुर वचनसे सविनय कहा—"आइये। दर्शन करनेके

---

१. बैलके कन्धे और पीठका उठा हुआ भाग।

२. वह पद ऐसा था जहाँ उसे निष्ठुरतापूर्वक कर्तव्य-शासन करना पड़ता था।

लिए भीतर आइये। देव प्रसन्न हैं।" "देव मुझे इस तरह अनुग्रहके योग्य समझते हैं, मैं धन्य हूँ"—इतना कह बाण उसी के बताये रास्तेसे अन्दर गया।

अनन्तर, उसने एक अश्वशाला देखी, जो राजाके प्रिय अश्वोंसे विभूषित थी। वे वनायु, आरट्ट, कम्बोज, भरद्वाज, सिन्ध और फारस देशके थे। वे लाल, काले, उजले, भूरे और हरित रंग[1]के थे। वे तितिरकी तरह चितकबरे, और पाँच शुभ चिह्नोंसे युक्त थे। उनकी आँखोंके कोने सफेद थे। वे कृत्तिकाओंके समान भूरे थे। उनके मुँह लम्बे, और निर्मांस[2] थे, कान छोटे थे, कण्ठ गोल और कोमल थे। उनकी गर्दनें यज्ञके खम्भेकी भाँति टेढ़ी, लम्बी और ऊपर उठी हुई थीं। कन्धोंकी जोड़ें (मांसके) उपचय अर्थात् जमा होनेसे मोटी हो गई थीं। छातियाँ उभड़ी हुई थीं। टाँगें पतली और सीधी थीं। खुर लोहेकी तरह कड़े थे। जान पड़ता था जैसे अतिवेगके कारण फटनेके भयसे उनके गोल पेट विना अँतड़ियोंके बने हों। लम्बी द्रोणी[3]से उनकी चौड़ी जाँघें विभाजित हो रही थीं। उनकी पूँछें धरतीपर लटक रही थीं। दोनों ओर (भूमिमें) गड़ी हुई अनेक दृढ़ डोरियोंके बन्धनसे वे किसी-किसी तरह वशमें रखे गये थे। डोरीसे बँधा हुआ पीछेका एक पैर फैलानेसे वे अधिक लम्बे दिखाई पड़ते थे। उनके गलेके आभूषण बहुगुने सूतमें गुँथे हुए थे। उनकी आँखें बन्द थीं। उनके कुछ अंगोंमें

---

१. सुग्गेका रंग।

२. मांस-रहित, मांसल नहीं, दुबले।

३. मौसकी गहराई।

खुजलाहट थी, जिन्हें वे दाँतोंके बीच ले लेकर छोड़ देते थे, जिनकी त्वचा फड़क रही थी, जो दूबके रससे श्यामल फेनसे रंग-बिरंगे हो रहे थे और जिन (अंगों)को वे कँपा रहे थे। वे अपनी पूँछोंको धीरे धीरे हिला रहे थे। एक खुरपर विश्राम करनेसे उनकी जाँघोंके आधे भाग ढीले थे और लटक रहे थे। वे नींदमें ध्यान कर रहे थे। गिरते समय वे धीरे धीरे हिन-हिना रहे थे। खुर-धरणीमें[1] ठोकर लगनेसे उनके खुरोंके अग्र-भाग बज उठते थे, जिनसे वे धरती खोदने लगते थे। वे घास चाह रहे थे। (दूसरोंके आगे) बिखेरी जाती घासके लोभसे उन्हें ईर्ष्या होती थी, और ईर्ष्यासे क्रोध उत्पन्न होता था। क्रुद्ध तथा प्रचण्ड अश्वपालोंके हुङ्कारोंसे उनकी आँखोंकी पुतलियाँ कातर हो काँप रही थीं। उनके भूरे अङ्ग कुङ्कुमसे लिपे होनेसे मानो वे सदा समीपवर्ती आरतीकी अग्निसे रक्षित हो रहे थे। उनके ऊपर चँदोवा फैला हुआ था और आगे अभिमत देवताकी[2] पूजा हो रही थी।

(अश्वशाला देखकर) उसे प्रबल कुतूहल हुआ और कुछ भीतर जाकर उसने हाथियोंका घर देखा। यह घर दूरसे साफ साफ नहीं दिखाई पड़ रहा था। बहुत ऊँचा होनेके कारण आकाशको अवकाश-रहित[3] कर रहा था। उसके पर्यन्त[4] केलेके

१. खुरोंके तले काठसे ढकी पृथिवी।

२. शङ्करके अनुसार अभिमत देवता गोविन्द है।

३. शून्य-रहित। शून्य (आकाश) को अशून्य कर रहा था

४. आस-पासके स्थान।

बड़े वनसे घिरे थे। चारों ओर भौरोंसे भरी मद-जलकी धाराओंसे वह भर रहा था। खिलते बकुलोंकी-सी सुगन्धि, जो दिशाओंमें फैल रही थी, नाकें भर रही थीं। (हाथी-घर देखकर) उसने पूछा—"यहाँ देव क्या करते हैं?" दूसरेने कहा—"(यहाँ) यह देवके चढ़नेका हाथी है। उनका बाह्य हृदय है। दूसरी जाति अर्थात् हस्ति-योनिको प्राप्त हुई उनकी आत्मा है। उनका बहिश्चर प्राण है। पराक्रम और क्रीड़ामें उनका मित्र है। यह (हाथी) हाथियोंका स्वामी है। इसका दर्पशात[1] नाम सार्थक है। उसीके रहनेका यह बड़ा घर दिखाई पड़ता है।" उसने दूसरेसे कहा—"भद्र दर्पशातके बारेमें सुना है। यदि बात ऐसी ही है और कोई आपत्ति न हो तो पहले हाथियोंके स्वामीको ही देख लूँ। अतः आप मुझे वहाँ ले चलिये। मैं कुतूहलके वशीभूत हो गया हूँ।" दूसरेने कहा—"ऐसा ही हो। आप आवें। (इसमें) आपत्ति क्या है? तब हाथियोंके स्वामीको देख ही लीजिये।"

वहाँ जाकर दूरसे ही दर्पशातको देखा। उसके कण्ठके गम्भीर गर्जनसे[2] प्रेरित हो चातकोंने आकाशमें और पृथिवी पर मयूरोंने मीठी बोली बोलकर मधुर कोलाहल किया। वह (हाथी) मदरूपी सुराके सौरभसे, जैसे विकसित कदम्बोंके सौरभसे, भुवनको भर रहा था। वह शरीरधारी असामयिक वर्षाकालके समान था। सघन मधु-विन्दुओंके समान पीले

१. दर्पशातका अर्थ है अभिमान चूर्ण करनेवाला।

२. दर्पशातका गम्भीर गर्जन बादलका गर्जन-जैसा मालूम हुआ।

बिन्दुओंसे[1] चिह्नित उसका शरीर पद्माच्छादित सरोवरके समान लगता था, इस तरह (शरीर पर बिन्दुओंके चिह्न हो जानेसे) वह परिणत चतुर्थ अवस्थाको छोड़ रहा था। उसके हिलते हुए कानोंसे दुन्दुभि-जैसी ध्वनि निकल रही थी; इस तरह मानो वह (अपने कानपरके) आभूषण-स्वरूप शंखोंसे पञ्चम अवस्था में मङ्गल-प्रवेशका अनवरत गान कर रहा था। वह निरंतर चल-विचल हो रहा था और सुन्दरतापूर्वक तीन पैरोंपर खड़ा था; इस तरह मानो वह ललित नृत्यके लयके द्वारा पृथिवीके फटनेके भयसे अपने भारको हलका कर रहा था। उसका विशाल शरीर हिल रहा था, मानो वह उसे दिशाओंकी दीवारों पर रगड़ रहा था। अपनी सूँड़ ऊपर उठाकर वह दिग्गजोंको युद्धके लिए ललकार रहा था। स्थूल और तेज दाँतोंवाले आरेसे मानो वह संसाररूपी खम्भेको काट रहा था। संसारके भीतर नहीं समा सकनेके कारण मानो वह बाहर निकलनेकी इच्छा कर रहा था। चिर परिचयके कारण एकत्र हुए मेघोंकी[2] तरह महावत चारों ओर सरस किसलय और लताओंको नचा रहे थे तथा पोखरोंकी तरह वे सेवार-सहित कमलनालोंसे रंग-बिरंगा जल फेंक रहे थे; इस तरह ग्रीष्म समयके योग्य उपचारसे वे उसे आनन्दित कर रहे थे। झुर्रियोंकी गोलाकार पतली पाँतियोंसे, मानो सामरिक विजयोंकी गणना करनेकी रेखाओंसे, उसकी सूँड़ तरंगित थी, जिसे वह विपक्षी हाथियोंका मद

---

१. कहा जाता है कि चतुर्थ (अर्थात् ३०-४० वर्षकी) अवस्थामें हाथियोंके चमड़ेपर लाल बिन्दु पड़ जाते हैं।

२. पा० 'वनैः' (=जंगलों)।

सूँघनेसे ऊपर उठाये हुए था; ऐसे सूँड़रूपी अर्गलसे[1] मानो वह कुल-पर्वतों[2], समुद्रों, द्वीपों तथा काननों-सहित समस्त दिशा-समूहको बन्द कर रहा था। सूँड़के भीतर रखे पत्तोंसहित केलेके थमसे निकलते जलकणोंसे उसका एक दाँत सिक्त हो रहा था। दूसरा दाँत, जान पड़ता था जैसे, पल्लव छोड़ रहा हो। इस दाँतसे लीलापूर्वक कमलनाल लटक रहे थे, इस तरह यह दाँत समरके रससे मानो रोमाञ्चित हो रहा था। उसके दोनों दाँतोंसे कान्ति निकल रही थी जिससे जान पड़ता था जैसे वह सरोवरकी क्रीड़ामें खाये हुए कुमुदोंको बार बार उगल रहा हो, (अथवा) दिशाओंको अपनी (उज्ज्वल) कीर्ति अर्पण कर रहा हो। वह कीड़ोंके समान क्षुद्र हाथियोंको विदीर्ण करनेवाले दुष्ट सिंहोंका उपहास-सा कर रहा था। (अपने दाँतोकी निकलती हुई प्रभासे) वह मानो कल्पवृक्षके रेशमसे अपने मुँह का आवरण कर रहा था। लीलापूर्वक सूँड़ उठानेमें लाल रेशमके समान सुकुमार तालु दिखाई पड़नेसे वह मानो खाये हुए लाल कमलोंकी वर्षा कर रहा था या मानो नये किसलयोंको बाहर निकाल रहा था। स्वभावसे ही लाल आँखोंसे वह मानो कमलोंको कवलित करनेमें पिये मधुरसको उगल रहा था। मदकी पर्याप्त सुगन्धिके बहाने वह दोनों कपोलोंसे पूर्व समयमें भक्षित पारिजातक-वनोंको छोड़ रहा था, जो चूत चम्पक लवली लवंग तथा कक्कोलसे युक्त थे, एलालताओंसे

---

१. अवरोधक, ब्योंड़ा, किवाड़ बन्द करने की लकड़ी।

२. सात कुल-पर्वत ये हैं:—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र।

मिश्रित थे, सहकारोंसे भरे थे, और प्रचुर कपूरसे पूर्ण थे[1]। दान-पट्टकोंपर[2] विलासपूर्वक हाथ रखकर लाल ऊँखके[3] आधे टुकड़ेसे खुजला खुजलाकर लिख रहा था और भ्रमर गुञ्जार करते हुए उन्हें पढ़ रहे थे; ऐसे दान-पट्टकोंसे मानो वह दूसरे हाथियोंको दिन-रात सभी कानन अर्पण कर रहा था। जल-बिन्दु टपकानेवाले बर्फके टुकड़ोंकी मालासे वह निरन्तर शीतल किया जा रहा था। वह अपने मस्तकको ऊँचा उठाये था, जैसे उसके (शिरके) ऊपर सभी श्रेष्ठ हाथियोंके आधिपत्य-का (चिह्न-स्वरूप) पट्ट बाँधा गया हो। दिशाओंके मुँहोंको बार-बार खोलने और ढकनेवाले अपने कानरूपी पंखोंसे वह मानो स्वामि-भक्तिके कारण अपने दाँतरूपी पलंगपर पड़ी राजलक्ष्मीके व्यजन डुला रहा था। लम्बी रीढ़से क्रमपूर्वक निकली हुई हिलती पूँछसे, मानो दीर्घ वंश-परम्परासे आये गजाधिपत्यके[4] चिह्नस्वरूप चँवरसे, वह विराजमान था। निर्मल एवं शीतल जल-कणोंके बहाने वह मानो दिग्विजयमें पान की गई नदियोंको बार-बार मुँहसे निकाल रहा था। क्षणभर ध्यानपूर्वक सकल अवयवोंको स्थिर करके दूसरे

१. इस वाक्यका भाव यह है—उसके कपोलोंसे मद चू रहा था, जिसकी सुगन्धि चूत, चम्पक, आदिकी-सी थी।

२. दान = किसी वस्तुका दान करना; हाथियोंका मद। पट्टक = पट्टा, तख्ता, फलक। प्राचीन कालमें ताँबे या दूसरे धातुपर दान-पत्रकी शर्तें लिखी जाती थीं।

३. मूल शब्द पुण्ड्र है। यह एक तरहका लाल ऊँख है।

४. हाथियोंका स्वामित्व।

हाथियोंपरके ढोलोंका शब्द सुनकर वह अपने अङ्गोंको तोड़-मरोड़कर अन्तमें गम्भीर गर्जन कर रहा था; इस तरह मानो अपमानसे होनेवाला दुःख प्रकट कर रहा था। युद्धमें शामिल नहीं होनेसे वह मानो अपने लिए शोक कर रहा था। सवारोंको ढोनेके अपमानसे लजाकर वह मानो पृथिवीपर अँगुलियोंसे[1] लिख रहा था और मद छोड़ रहा था। अवज्ञापूर्वक कवल लेने और छोड़नेसे कुपित हो महावतने गर्जन किया; अतः उसने मानो मदकी नींदमें आँखोंके तीसरे भागको मूँद लिया। फिर किसी तरह अनादरपूर्वक धीरे-धीरे कवल लेने लगा। (उसके मुँहसे) खाये हुए तमाल-पल्लवोंका श्यामल रस निकल रहा था; इस तरह वह मानो अपने मुखसे भी प्रचुर मद-प्रवाह छोड़ रहा था। वह अभिमानसे मानो चल रहा था। शूरतासे मानो गहरी सास ले रहा था। मदसे मानो मूर्छित हो रहा था। तरुणाईसे मानो टूट रहा था। मदसे मानो प्रवाहित हो रहा था। बलसे मानो उछल रहा था। मानसे मानो मत्त हो रहा था। उत्साहसे मानो ऊपर उठ रहा था। तापसे मानो थक रहा था। लावण्यसे (सभीको) मानो लेप रहा था। सौभाग्यसे मानो खींच रहा था।

उसके नख चिकने थे; पर रोम कड़े थे। उसका मुँह गुरु[2] था, पर वह अच्छे शिष्यकी तरह विनीत था। उसका शिर कोमल था; पर परिचय (मित्रता)

१. सूँड़का अग्रभाग। लज्जित होकर आदमी भूमिपर रेखाएँ खींचता है और अभिमान छोड़ देता है।

२. बड़ा।

में वह दृढ़ था। उसका गला ह्रस्व था; पर उसकी आयु दीर्घ थी। उसका उदर दरिद्र[1] था; पर दानमें[2] सदा प्रवृत्त रहता था। वह मद-लीलामें बलराम था; पर आज्ञाकारितामें कुलीन स्त्री था। वह क्षमा में जिन[3] था; पर क्रोधमें आग बरसाता था। नागोंको[4] उठानेमें गरुड़ था। कलहकी उत्सुकतामें नारद था। हठात् आक्रमण करनेमें वह शुष्क-वज्रपात[5] था। वाहिनीको[6] क्षुब्ध करनेमें कूर्म था। दाँतोंसे काटनेमें साँप था। सुन्दर हाथसे[7] खींचनेमें वरुण था। शत्रुओंको फँसानेमें यमका जाल था। दाँतोंसे चोट करनेमें काल था। सूर्यको ग्रसनेमें राहु था। वक्र चालमें लोहिताङ्ग[8] था। गोलाकार भ्रमण जाननेमें उल्का था। वह पराक्रमका चिन्तामणि-पर्वत था, जो मनोरथोंको पूरा करता है। वह अभिमानका निवास-प्रासाद था, जो दाँतरूपी मोतियोंके खम्भोंसे युक्त था। वह मनस्विताका स्वेच्छाचारी विमान था, जो घण्टा, चामर, और आभूषणोंसे मनोहर लगता था। वह क्रोधके लिए सुगन्धित जलधाराका आगार था, जो मदधारारूपी दुर्दिनसे अंधियारा लगता था। वह अहङ्कारका विशाल मन्दिर था, जहाँ सोनेकी प्रतिमा[9] थी। वह अभिमानका क्रीड़ा-पर्वत था, जहाँ चट्टानें

---

१. कृश। २. मद।
३. बुद्ध या महावीर। ४. सर्प, हाथी।
५. वर्षा-कालका नहीं, पर असमयका अप्रत्याशित वज्र-पात।
६. सेना, नदी। ७. या हाथकी डोरीसे।
८. लाल रंगका ग्रह-विशेष।
९. प्रतिमाका दूसरा अर्थ है हाथीके सिरका वह हिस्सा जो दोनों दाँतोंके बीच पड़ता है"।

और धाराएँ[1] थीं। वह गर्वका अज-मन्दिर था, जो दाँतोंके तोरणसे युक्त था। वह राज्यका चलता-फिरता गिरि-दुर्ग था, जो उच्च कपोलरूपी गुम्बजोंसे युक्त था। वह पृथिवीके लिए लोहेकी दीवार था, जिसमें बाण[2] (छोड़ने) के हजार हजार छेद बनाये गये थे। वह राजाका[3] पारिजात-पादप था, जिसपर सैकड़ों भौंरे झङ्कार रहे थे। और उसी तरह। हिलते कानोंके नाचके लिए वह संगीत-गृह था, मधुपोंके लिए आपान-मण्डप[4] था; शृङ्गार और आभूषणोंके लिए रनिवास था; मदकी लीला और नृत्यके लिए वह कामदेवका उत्सव था। नक्षत्रों के लिए वह पूर्ण (निर्दोष) संध्या था, मद-जलसे बढ़ती हुई बड़ी नदियोंके लिए असमयका वर्षा-काल था; सप्तच्छद नामक वृक्षोंके परिमलके लिए असत्य शरत्समय था। ओसकी वर्षाके लिए वह अपूर्व हिम-ऋतु था। गर्जनके लिए वह मिथ्या जलधर था।

उसने सोचा—'इसके निर्माणमें निश्चय ही पर्वत परमाणु बनाये गये थे। नहीं तो, यह गौरव कहाँसे होता? यह एक आश्चर्य है। यह दाँतोंसे युक्त विन्ध्याचल है, करसे युक्त आदि वराह है।' इस तरह विस्मित होते हुए उस (बाण) से द्वारपालने कहा:—

---

१. चट्टानसे हाथीका कपोल लक्षित होता है और धारासे मदका प्रवाह।
२. 'कृतानेकबाणविवरसहस्रं' का दूसरा अर्थ होगा 'जिसमें अनेक बाणोंसे हजारों छेद किये गये थे'। यह अर्थ हाथीमें लागू होगा।
३. भूनन्दनका दूसरा अर्थ है 'पृथिवीपरका नन्दन वन'।
४. वह मण्डप जहाँ पान किया जाता है, पीनेका घर।

"देखिये! जब जंगलमें इसके शत्रु सौ सौ मनोरथोंसे निःशेष नष्ट हुई लक्ष्मीको व्यर्थ ही फिरसे चित्रित करते रहते हैं, जब उनकी बुद्धि चिन्ताजनक कल्पनाओंसे आकुल हो जाती है और जब उनका चित्त सूना हो जाता है, उस समय किसी किसी तरह उनके स्मृति-पथपर आनेपर यह श्रेष्ठ हाथी अपने उन शत्रुओंको नहीं सह सकता है, चाहे वे मानसरोवर-निवासी दिग्गज ही क्यों न हों[1]।॥ ४॥

तब आइये। आप इसे फिर भी देखेंगे। अब देवके दर्शन कीजिये।"

द्वारपालके इतना कहनेपर उसने अपनी दृष्टिको, जो मानो मतवाली होकर (हाथीके) मद-जलसे पङ्किल कपोलपर पड़ी हुई थी और मदके परिमलसे कुछ कुछ बन्द हो गई थी, किसी किसी तरह वहाँसे खींच लिया। और, उसी द्वारपालके बताये रास्तेसे हजारों भूपालोंसे भरे तीन आँगनोंको पारकर, चौथेमें भुक्तास्थानमण्डपके[2] सामने एक छोटे आँगनमें चक्रवर्ती हर्षको देखा। दूर पर सीधे खड़े, लम्बे, कर्णिकार फूलके समान गोरे, व्यायामसे दृढ़ हुए शरीरवाले, शस्त्रधारी, पुश्तैनी, पंक्ति-बद्ध परिचारकोंसे—मानो सोनेके खम्भोंसे—वह घिरा था। उसके समीपमें बड़े बड़े और अपेक्षित लोग बैठे हुए थे। वह हरि-चन्दन-रससे धुले, हिम-कणोंकी भाँति शीतल, हाथी-दाँतके

१. मनमें रहनेवाली आशारूपी गजेन्द्र।

२. मण्डप जहाँ भोजनके बाद राजाओंको दर्शन देनेके लिए सम्राट् बैठा करते हैं।

बने उजले पाँववाले, मोतियोंके पहाड़के पत्थरोंसे बने पलंग (आसन) पर, मानो चन्द्रमय शयनपर, बैठा हुआ था। आसनके किनारेमें आरोपित भुजापर समूचे शरीरका भार दिये हुए था। राजाओं-सहित वह मणियोंकी किरणोंसे मिश्रित अपने शरीरके प्रभा-वितानमें, जो दिशाओंमें फैल रहा था, रमण कर रहा था; मानो कोमल कमल-नालोंसे जटिल जलवाले, ग्रीष्म समयमें सुखदायक सरोवरमें क्रीड़ा कर रहा था। वह मानो केवल तेजके परमाणुओंसे बना था। सभी अंगोंमें सभी सु-लक्षणोंसे गृहीत हो, अनिच्छुक होनेपर भी, वह मानो बलपूर्वक सिंहासनपर चढ़ाया जा रहा था। ब्रह्मचारी होनेपर भी वह राजलक्ष्मीसे आलिङ्गित था। वह असिधारा-व्रत धारण किये था और वास्तविक राजर्षि था। वह विषम राज-मार्गमें आरोपित पाँवके फिसलनेके भयसे धर्ममें अच्छी तरह लगा हुआ था। सकल भूपालोंसे परित्यक्त होकर मानो डरा हुआ सत्य (सम्राट्से रक्षाका) वचन पाकर हृदयसे उसकी सेवा कर रहा था। निकटकी नाचनेवाली लड़कियोंके प्रतिबिम्ब उसके चरणोंके नखोंमें पड़े रहे थे, इस तरह मानो दशों दिशाएँ उसे प्रणाम कर रही थीं। दिशाओंके अन्त तक पहुँचनेवाले दीर्घ दृष्टि-पातोंसे वह मानो दिक्-पालोंके कृताकृतोंका[1] निरीक्षण कर रहा था। मणियोंके पाँववाली छोटी चौकीपर अपने करोंको रखकर सूर्य मानो ऊपर जानेकी आज्ञा माँग रहा था। आभूषणोंकी प्रभाके द्वारा (कुछ दूर तक) हटाये जानेसे चारो ओर मण्डल बाँधकर सूर्यका प्रकाश मानो उसकी प्रदक्षिणा कर

१. कृत + अकृत = क्या किया गया और क्या नहीं किया गया।

रहा था। अपनी शूरताकी उष्णताके कारण वह अप्रणत पर्वतोंसे भी कष्ट पाता था। वह फेनयुक्त-सा, चन्दनधवल, लावण्य-सागर धारण कर रहा था। एकाधिपत्यके कारण वह (प्रणाम करनेके समय) राजाओंके मुकुटोंकी मणियोंमें पड़ते हुए अपने प्रतिबिम्बोंको भी नहीं सह सकता था। वह अभिमानके दुःखसे चँवरकी हवाके बहाने मानो बार बार साँस लेती और छोड़ती राजलक्ष्मीको[1] धारण कर रहा था। चारों समुद्रोंसे समस्त लावण्य लेकर उठी हुई लक्ष्मी उसका आलिङ्गन कर रही थी। वह अपने आभरणोंकी प्रभासे उत्पन्न होते हजारों इन्द्र-धनुष, मानो इन्द्रके द्वारा भेजे गये उपहार, राजाओंको दे रहा था। मधु[2] छोड़ने पर भी वार्तालापमें वह मधु बरसाता था। वह काव्य-कथाओंमें अमृत उगलता था, जिसे उसने पहले नहीं पिया था। वह विश्वासकी बातोंमें हृदय दिखा देता था, जो बाहर खींचा नहीं जा सकता था। प्रसन्नतामें वह निश्चल लक्ष्मीको भी स्थान-स्थान पर स्थापित कर देता था। वीरोंकी सभाओंमें वह रोमाञ्चित कपोलसे युद्ध-देवताका अप्रकट अनुराग-संदेश सुनता था। योद्धाओंके साथ अतीत युद्धोंके आलापमें वह अपने प्रिय कृपाणपर दृष्टि-पात क्या करता था मानो स्नेहकी वृष्टि करता था। परिहासकी मुसकानोंमें दाँतोंकी छटासे, महा-प्रतापसे डरे हुए राजाओंको वह मानो अपना स्वच्छ आशय कह देता था। सभी लोगोंके हृदयोंमें रहकर भी वह न्यायपर रहता था। वह गुण, सौभाग्य, वर-दान, आशीर्वाद, मनोरथ, भाग्य, उपमा, और धर्मका पात्र नहीं था (अर्थात् वह सब प्रकारसे

---

१. हर्षके द्वारा दूसरे राजाओंसे अपहृत राजलक्ष्मी। २. मदिरा।

परिपूर्ण तथा अभाव और आवश्यकतासे रहित था।) उसकी सम्पत्ति इतनी बड़ी थी जितनी कि पहले कभी देखी नहीं गई।

जिसके पाद-पल्लव अरुण थे, जिसकी मन्थर जाँघें सुगत[1] थीं, जिसके कठोर हाथ वज्रायुध[2] थे, जिसका कन्धा वृष[3]का-सा था, जिसका अधर-बिम्ब भास्वन्[4] था, जिसका अवलोकित[5] प्रसन्न था, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था, जिसका केश कृष्ण था, ऐसे शरीरसे वह मानो सभी देवताओंका अवतार एकत्र दिखा रहा था। वहाँ महानील-मणियोंसे निर्मित एक बड़ा और बहुमूल्य पाद-पीठ[6] था, जो माणिक्योंकी मालाओंसे घिरा था और जिसकी मांसल (मोटी) किरणोंसे धरातल मलिन हो रहा था, ऐसे पाद-पीठपर, मानो कलिके काले शिरपर, वह लीलापूर्वक बायाँ पैर रखे हुए था, जान पड़ता था जैसे बाल पुण्डरीकाक्ष[7] कालिय नामक सर्पके फनोंपर आक्रमण किये हुए हो। उसके चरणोंके नखोंका द्युति-पुञ्ज, जो रेशमके समान उज्ज्वल (पाण्डुवर्ण) था, (पृथ्वीपर) पर फैल रहा था; इस तरह वह मानो पृथ्वीको पटरानीका पट्ट बाँधकर सम्मानित कर रहा था।

उसके चरण मानो अप्रणत लोक-पालोंके प्रति कोप होनेसे अति लोहित हो रहे थे, मानो सभी राजाओंके शिरोंपर पिये

१. बुद्ध, अच्छी चालवाली।
२. इन्द्र, वज्र नामक अस्त्र
३. धर्म, साँड।
४. सूर्य, चमकीला।
५. बोधिसत्त्व, दृष्टि।
६. पैर रखनेकी चौकी।
७. कृष्ण, कमलनयन (हरि)।

हुए पद्मराग-प्रकाशको उगल रहे थे, मानो समस्त तेजस्वि-मण्डलकी अस्तमय संध्या सृजनकर रहे थे, मानो अशेष राजाओंके शेखर-कुसुमोंसे मधु-धाराएँ बहा रहे थे, समस्त सामन्तोंकी शेखर-मालाओंके सौरभसे मँडराते भौंरोंसे—मानो (युद्धमें मारे गये) शत्रुओंके मस्तकोंसे—एक क्षणके लिए भी अलग नहीं होते थे, मानो अंग-मर्दनमें तत्पर लक्ष्मीके लिए विकसित लाल कमलोंके निवास-भवन बना रहे थे, जलज शंख मीन और मकरसे युक्त होनेसे चारों समुद्रोंके आधिपत्यके लक्षण सूचित कर रहे थे। उसकी जाँघें दिग्गजोंके दाँतरूपी मुसलोंके सदृश थीं; सुन्दर घुटनोंके ऊपर रुकनेके कारण विषम थीं; बढ़े हुए लावण्य-सागरसे (उठती) फेनिल धाराओंके सदृश थीं; उन चन्दन-वृक्षोंके सदृश थीं, जिनके मूल सर्पोंके शिर परके रत्नोंकी किरणोंसे प्रकाशित होते रहते हैं; हृदयपर आरोपित पृथिवी (= राज्य-शासन) का भार धारण करनेवाले माणिक्य-स्तम्भोंके सदृश थीं। अमृत-फेनके समान सफेद[1], करधनीकी मणि-किरणोंसे खचित[2], कमरमें[3] सटे, विमल जलसे[4] धुले, रेशमी सूतोंके निवेशसे शोभित[5], निचले वस्त्रसे वह ऐसे चमक रहा था, जैसे वासुकि-निर्मोकसे[6] मन्दराचल चमक रहा हो। बारीक तथा फूलदार, ऊपरके दूसरे वस्त्रसे वह ऐसे भासित हो रहा था, जैसे मेघ-रहित तथा ताराओंसे युक्त, ऊपर फैले हुए आकाशसे विशाल भुवन

---

१. अमृत-फेन (के लगने) से सफेद।

२. (पर्वतके) मध्यभागकी मणियोंकी किरणोंसे खचित।

३. नितम्ब।   ४. दूध।

५. मथनेकी डोरीपर रखे जानेसे शोभित।   ६. वासुकिकी केंचुली।

भासित हो रहा हो। बड़े-बड़े हाथियोंके हजार-हजार दाँतरूपी मुसलोंकी चोटसे कठीन होनेपर भी चिकनी, कपड़ेके भीतर[1] नहीं समा सकनेवाली, विविध सेनाओंके[2] क्षोभ कलकल और संघर्षको सह सकनेवाली, विशाल वक्षस्थलरूपी किवाड़से वह ऐसे शोभ रहा था, जैसे स्फटिक-शिलासे कैलाश शोभ रहा हो। उसके गलेमें एक माला ऐसे विराज रही थी, जैसे लक्ष्मी और सरस्वतीके निवास-स्थान छाती और मुँहको विभाजित करनेवाली डोरी हो, या जैसे उसके[3] भुजारूपी स्तम्भपर समस्त पृथ्वीका भार रख विश्राम-सुख पाकर सोया हुआ शेषनाग हो। उस मालाके मोतियोंके किरण-समूहसे, मानो आजीवन अर्जित सर्वस्वके महा-दानके दीक्षा-चीरसे[4], उसका वक्षःस्थल ढका हुआ था। केयूर नामक आभूषणके रत्नोंकी लाल किरणोंसे—मानो विष्णुको जीतनेकी इच्छासे निकलती दूसरी बाल-भुजाओंसे, या मानो बाहुरूपी उपधानपर सोनेवाली लक्ष्मीके कानोंके कमलोंसे निकलती मधु-धाराओंसे, या मानो भुजासे उत्पन्न होनेवाले प्रतापके निकलनेके मार्गोंसे—दोनों ओर मणिमय पंखरूपी चँदोवा फैलाये हुए वह माणिक्योंका पर्वत था। लोकालोक[5] नामक पर्वतके सकल मार्गोंके लिए अर्गल-स्वरूप, खाईके

१. आकाशमें। २. नदियों। ३. हर्षके।

४. यज्ञके अवसरपर चीर अर्थात् कपड़ेका टुकड़ा पहना जाता है। प्रति पाँचवें वर्ष हर्ष अपने सर्वस्वका दान किया करता था।

५. सातवें द्वीपका पहाड़ (विष्णु-पुराण)। पृथ्वीकी सीमापर स्थित लोकालोक पर्वततक प्रजाकी रक्षा करता था।

सदृश (नगण्य) चारों समुद्रोंके लिए शिला-प्राकार-स्वरूप,[1] सभी श्रेष्ठ राजाओंको बन्द करनेके लिए वज्र-पञ्जर[2]-स्वरूप, भुवनोंकी लक्ष्मीके प्रवेशके लिए मंगलमय महान् मणि-तोरण-स्वरूप अत्यन्त लम्बी भुजाओंसे वह दिशाओं तथा दिक्पालोंकी लम्बाईका एक साथ ही अपहरण कर रहा था। अपनी बहिन लक्ष्मीके चुम्बनके लोभसे कौस्तुभमणि मानो उसके मुखका अवयव अधर हो गया, जिससे निकलती लालिमासे, जैसे पारिजात वृक्षके पल्लवके रससे, वह दिशाओंके मुखोंको सिञ्चित कर रहा था। बीच-बीचमें मित्रोंके परिहासोंपर वह मुस्कुरा देता था, जिससे उसके विमल दाँतोंकी किरणें फैल जाती थीं; इस तरह वह मानो स्वभावसे ही मन्दमति राजलक्ष्मीको ज्ञानका आलोक दिखाता था, या मानो मुखसे उत्पन्न चन्द्रोदयके संदेहसे आए हुए कुमुदोंको बाहर भेजता था, या मानो चमकीले और उजले दाँतोंकी पाँतियोंसे हुई कुमुदोंकी शङ्कासे भीतर घुसी शरत्कालीन चन्द्रिकाको विसर्जन करता था। अपने मुखके सौरभसे, जो मदिरा अमृत और पारिजातकी सुगन्धिसे युक्त था, सभी दिशाओंको भरकर, वह मानो अमृत-मथन-दिवसका सृजन कर रहा था। उसके विकसित मुखकमलपरका सम्पुट-स्वरूप उसकी अधोमुख नासिका उसकी साँसोंकी सुगन्धिका मानो निरन्तर पान कर रही थी। वह दूधकी भाँति स्निग्ध नेत्रकी धवलिमासे, मानो अपूर्व मुख-चन्द्रके उदयसे बढ़े हुए क्षीर-सागरसे, दिशाओंके मुखोंको प्लावित कर रहा था। उसके विमल-कपोलमें चँवर पकड़नेवाली प्रतिबिम्बित हो रही

---

१. पत्थरकी दीवारके समान । २. पिंजड़ा ।

थी, मानो मूर्तिमती मुखनिवासिनी सरस्वती दिखाई पड़ रही थी। अपनी चूड़ामणिकी लाल दीप्तिसे, मानो सरस्वतीके प्रति ईर्ष्यासे कुपित लक्ष्मीको मनानेमें लगे चरणोंके अलक्तकसे, उसका ललाट-तट लाल हो रहा था। वह कानके आभूषणपरके भौरोंकी मधुर ध्वनि सुन रहा था और वे भौरे लाल किरण रूपी तन्त्रियोंसे घिरी, कुण्डल-मणिकी कुटिल नोकरूपी वीणाको अपने चरणोंसे अनवरत बजाते हुए मानो उस स्वर-विशारदकी स्तुति कर रहे थे। पूर्ण-विकसित मालती फूलोंकी बनी, मुख-चन्द्रके मण्डल-स्वरूप मालासे, मानो राज-लक्ष्मीके (द्वारा) केश पकड़नेकी लीलामें नखोंकी मण्डलाकार चन्द्रिकासे, उसका केश-पाश घिरा हुआ था। उसके शिरपरके आभूषणसे उत्पन्न मोतियोंके आलोक तथा मरकत-मणियोंकी किरणोंके सम्मिश्रणसे ऐसा दीखता था जैसे प्रयागमें एक-दूसरेसे मिली हुई (गंगा-यमुनाकी) धाराएँ स्वयं आकर उसका अभिषेक कर रही हों।

वारविलासिनियोंसे[1], चारों ओर उस (हर्ष) का सौन्दर्य मानो लुप्त हो रहा था। स्वेद-जलसे विलीन हुए कृष्ण अगुरुके तिलकसे छाई हुई कालिमासे, मानो प्रार्थनामें मीठी मीठी बातें बोलकर सौ सौ बार उसके चरणोंपर विलास-पूर्वक गिरनेसे लगे काले चिह्नसे, उन (वार-विलासिनियों) के ललाटकी रेखाएँ काली हो रही थीं। वे चमकती मालाओंसे, मानो क्षुब्ध मानसरोवरमें उठती तंरगोंसे[2], ढकी हुई थीं। विलासपूर्वक चलनेसे चञ्चल भ्रू-लताओं द्वारा वे मानो ईर्ष्यासे लक्ष्मीका

१. नाचने और गानेवाली लड़कियाँ।

२. दूसरा अर्थ है—क्षुब्ध मनमें उठती इच्छाओंसे।

तर्जन कर रही थीं। अविरल परिमलसे युक्त तथा मलय-समीर-मय लम्बी साँसोंसे, मानो अपने बन्धन-पाशोंसे, वे उसे (हर्षको बाँधकर) खींच रही थीं। बड़े बड़े बकुल फूलोंकी मालारूपी डोरियोंसे घिरे मुँहवाले बड़े बड़े स्तनरूपी कलशोंसे वे मानो स्व-दार-संतोष[1]रूपी रस निःशेष निकाल रही थीं। स्तनोंमें कंपन होनेसे हिलती हुई मालाओंकी तरल मणियोंकी किरणोंसे वे मानो उसे खींचकर बलपूर्वक अपने हृदयोंमें प्रवेश करा रही थीं। प्रभा-वर्षी आभूषण-मणियोंकी किरणोंसे, मानो (नृत्यमें) फैलाई हुई अपनी अनेक भुजाओंसे, वे उसे आलिङ्गन कर रही थीं। वे लगातार जँभाई लेनेसे सुन्दर दीखनेवाले मुख-कमलोंको अपने कर-किसलयोंसे ढक रही थीं, मानो (हर्षकी ओर) वेगपूर्वक दौड़ते मनोंको रोक रही थीं। कामसे अन्धे भौरोंके द्वारा बिखेरे जाते पुष्प-पराग (के पड़ने) से उनकी आँखोंके कोण सङ्कुचित हो गये थे, मानो कामदेवके तीरोंकी चोटसे मूर्छा होनेसे उनकी आँखें मुकुलित हो गई थीं। ऐसी आँखोंको वे चतुरतापूर्वक चला रही थीं। आपसकी ईर्ष्यासे[2] कुटिल भ्रुकुटियोंके नीचेसे निकले कटाक्षोंसे वे मानो कानोंपरके कमलोंको मार रही थीं। निर्निमेष दर्शनसे होनेवाला सुख-रस-पुञ्ज (हर्ष), जो मानो निश्चल पलकोंवाले नेत्रोंसे पिया गया था, उनके कोमल कपोलोंपर प्रतिबिम्बित हो रहा था। अभिलाषाकी लीलासे अपनी अकारण मुसकानोंके द्वारा वे मानो मदनकी सहायताके लिए चन्द्रोदयोंका संपादन कर रही थीं।

---

१. अपनी ही पत्नीसे संतोष।

२. उनकी कमल-जैसी आँखोंको कानपर रखे कमलोंसे ईर्ष्या होती थी।

अङ्गोंको तोड़-मरोड़कर हाथोंकी अंगुलियोंको एक-दूसरेसे मिलाकर अपने करतलोंको उत्तान[1] किये हुए थीं, अंगुलियोंकी गिरहों (जोड़ों) के फूटनेसे शब्द हो रहा था तथा नखोंसे (धनुषके समान) कुण्डलाकार किरण-समूह निकल रहा था, जिसके बहाने वे मानो कामदेवके व्यर्थ हुए धनुषोंको[2] क्रोधसे तोड़ रही थीं।

(अपने चरणोंके) स्पर्शसे (चरण-सेविकाके) स्वेद-युक्त तथा काँपते कर-किसलयोंसे अपने चरण-कमलोंके गिरनेसे उसने हँसकर चरण दाबनेवालीके शिरपर कोणसे[3] धीरे-धीरे चोटकी। हाथसे अनवरत कोण[4] पकड़कर वह मानो अपनी प्रिय वीणा तथा राजलक्ष्मीको भी शिक्षा दे रहा था।

धनोंने उसे स्नेह-रहित, दोषोंने असेवनीय, इन्द्रियोंने संयमी, कलियुगने दुरुपसर्प,[5] व्यसनोंने नीरस और अयशने भीरु समझा। कामदेवने समझा कि उसकी चित्त-वृत्ति दुर्ग्रह[6] है। सरस्वतीने समझा कि वह स्त्री-पर है अर्थात् केवल उसी

१. चित। अपनी हथेलियोंको हर्षकी ओर किये हुए थीं।
२. हर्षको आकृष्ट करनेके लिए वारविलासिनियोंने जितनी कामोद्दीपक चेष्टाएँ की वे सब अन्तमें व्यर्थ ही सिद्ध हुईं।
३. वीणा बजानेका साधन।
४. कोणका दूसरा अर्थ 'भू-भाग' हो सकता है, जो राज-लक्ष्मीके पक्षमें लागू होगा।
५. जहाँ कठिनाईसे पहुँचा जाय।
६. जो कठिनाईसे पकड़ी जा सके।

(सरस्वती) में लीन रहता है। दूसरोंकी स्त्रियोंने उसे नपुंसक, यतियोंने श्रेष्ठ मुनि, वेश्याओंने धूर्त, मित्रोंने परवश, विप्रोंने भृत्य और शत्रु-योद्धाओंने अच्छे सहायकोंसे सम्पन्न समझा। इस तरह एक होनेपर भी वह अनेक प्रकारसे समझा गया। वह शन्तनुसे बढ़कर महावाहिनी[1]-पति था; भीष्मसे अधिक विजयी[2] था। उसकी धनुषकी लालसा द्रोणसे अधिक थी[3]। उसके तीर अश्वत्थामासे अधिक अचूक थे[4]। वह कर्णसे अधिक मित्र-प्रिय[5] था। युधिष्ठिरसे अधिक क्षमावान्[6] था। हजारों हाथियोंके बलमें वह भीमसे बढ़ा हुआ था। महाभारत-युद्धके लिए वह अर्जुनसे अधिक योग्य था। वह कृतयुगका कारण-सा, देव-सृष्टिका बीज-सा, और अभिमानका जन्म-स्थान-सा, था। वह करुणाका एकमात्र आगार-सा, पुरुषोत्तमका पड़ोस-सा तथा पराक्रमका खनि-पर्वत-सा था। वह सरस्वतीके लिए सभी विद्याओं और संगीतका घर-सा तथा लक्ष्मीके उत्थानके लिए अमृत-मथनका दूसरा दिवस-सा था। वह चतुराईकी शक्तिका प्रदर्शन-सा, शिष्टाचारोंका अद्वितीय स्थान-सा, कान्तिके सर्वस्वका विज्ञापन-सा, रूपके परमाणुओंकी सृष्टिका अपवर्ग[7]-सा, राज्यके

१. महावाहिनी = बड़ी सेना, बड़ी नदी अर्थात् गङ्गा। शन्तनु गंगाका पति था।

२. जितकाशीका दूसरा अर्थ 'जितेन्द्रिय' है।

३. या, 'वह द्रोणसे अधिक लालसा-रहित था'।

४. या, 'उससेकी गई याचनायें अधिक सफल हुआ करती थीं'।

५. 'मित्रोंका प्रिय', 'सूर्यका प्रिय'।

६. क्षमाका दूसरा अर्थ 'पृथिवी' है। ७. सफलता, समाप्ति, पूर्णता।

लिए सभी पापोंका प्रायश्चित्त-सा, सभी सेनाओं-सहित कामदेवका आक्रमण-सा, पुरंदर-दर्शनका उपाय-सा, धर्मका आवर्तन-सा, कलाओंका कन्या-अन्तःपुर-सा, सौभाग्यका परम प्रमाण-सा, तथा प्रजापतियोंके लिए राज-सृष्टिकी समाप्तिमें दीक्षान्त स्नानका दिवस-सा था। वह गम्भीर और प्रसन्न, भयानक और रमणीय, कौतुककारी[1] और पवित्र था।

(हर्षको) देखकर अनुगृहीत-सा और निगृहीत-सा, उत्सुक-सा और तृप्त-सा होकर उसने रोमाञ्चित मुखसे आनन्दके उष्ण अश्रु-जल-बिन्दु बहाये और दूरसे ही विस्मयपूर्वक मुस्कुराता हुआ वह सोचने लगा—"यह वही उत्तम जन्मवाले, प्रातः स्मरणीय, तेजःपुञ्ज, चारों समुद्रोंसे घिरे क्षेत्रके स्वामी, ब्रह्म-स्तम्भ (संसार) के फलका उपभोग करनेवाले, सभी प्राचीन राजाओंके चरितोंको जीतनेवाले प्रधान मल्ल, देव परमेश्वर हर्ष हैं। इनसे पृथ्वी वास्तवमें सनाथा है। इनके बाल-चरित कृष्णके-से धर्म-विरुद्ध[2] नहीं हैं। इनकी प्रभुता शिवकी-सी अच्छे लोगोंको[3] उद्वेग नहीं पहुँचाती। इनके (सम्बन्धके) प्रवाद इन्द्रके-से गोत्र[4]-विनाश-सूचक नहीं हैं। इनके लिए

---

१. कुतूहल-जनक, प्रशंसनीय।

२. मूल शब्द वृष है। कृष्णने अरिष्ट नामक असुरको मारा था जो मरनेपर वृष अर्थात् साँड़ हो गया था।

३. मूल शब्द दक्ष है, जिसका दूसरा अर्थ दक्ष प्रजापति है, जिसके यज्ञको शिवने ध्वंस किया था।

४. हर्षके पक्षमें गोत्रका अर्थ परिवार अथवा वंश है और इन्द्रके पक्षमें पर्वत। किंवदन्ती है कि इन्द्रने पर्वतोंके पंख काट डाले थे; इसलिए वह गोत्र-भिद् कहलाता है।

दण्ड[1]-ग्रहण यमका-सा अति प्रिय नहीं है। इनके रत्नालय वरुणके-से सहस्रों खड्गधारियोंसे[2] रक्षित नहीं रहते। इनके समीप पहुँचना कुबेरके पास जानेकी तरह निष्फल नहीं होता। इनके दर्शन बुद्धके-से अर्थवादसे शून्य नहीं होते[3]। इनकी श्री चन्द्रमा-की-सी अनेक दोषोंसे[4] नष्ट नहीं होती। यह विचित्र राजत्व अमरोंसे बढ़ा-चढ़ा है। और भी। इनके दानके लिए याचक पर्याप्त नहीं हैं। इनकी प्रज्ञाके लिए शास्त्र पर्याप्त नहीं। इनके कवित्वके लिए शब्द पर्याप्त नहीं। इनके बलके लिए साहसके स्थान पर्याप्त नहीं। इनके उत्साहके लिए व्यापार पर्याप्त नहीं। इनकी कीर्तिके लिए दिशाएँ पर्याप्त नहीं। इनके अनुरागके लिए लोक-हृदय पर्याप्त नहीं। इनके गुणोंकी गणनाके लिए संख्या पर्याप्त नहीं। इनके कौशलके लिए कला पर्याप्त नहीं।

इनके राज्यमें यतियोंके ही योग-पट्टक होते हैं और जाली दस्तावेज[5] नहीं; शिल्पियोंकी मिट्टीकी मूर्तियाँ पाई जाती हैं न कि राजाओंके विग्रह; मद-जल लेनेमें भौरोंका ही कलह नजर आता है, न कि ऋण-परिशोधका कलह; चरण वृत्तोंके ही काटे जाते हैं, अन्यत्र (दण्ड आदि देनेमें) नहीं; सतरंजमें ही

१. हर्षके पक्षमें दण्डका अर्थ कर है।
२. मूल शब्दका दूसरा अर्थ है निर्दय ग्राह, जो वरुणके पक्षमें लागू है।
३. राजाके दर्शन होनेसे अर्थ प्राप्त होता है। बुद्धके दर्शनशास्त्र अर्थवाद सिद्धान्तसे रहित हैं।
४. मूल शब्दका अर्थ है 'कृष्ण पक्षकी रातोंसे' जो चन्द्रमाके पक्षमें लागू है।
५. योगपट्टकका दूसरा अर्थ जाली दस्तावेज है।

(हाथी, घोड़ा, आदि) चार अंगोंकी रचना होती है अन्यत्र नहीं; सर्पोंको ही द्विज-गुरुसे द्वेष होता है, अन्यत्र नहीं; मीमांसकोंको ही अधिकरणोंपर विचार करना पड़ता है और दूसरों अर्थात् न्यायाधीशोंको नहीं।"

निकट आकर उस यज्ञोपवीतधारी (बाण) ने स्वस्ति शब्दका उच्चारण किया।

तब राज-मण्डपसे, कुछ ही दूर उत्तरकी ओर एक गज-परिचारकने यह मधुर अपरवक्त्र ऊँचे स्वरसे गाया—

"हे हस्ति-शावक, तू चञ्चलताको छोड़ दे, शिर झुकाकर विनय-व्रतका आचरण कर। ऊपरका बड़ा अङ्कुश, जो सिंहके पञ्जेके समान कुटिल है, तुम्हारे दोषोंको नहीं सह सकता। ॥५॥"

यह सुनकर और उसे देखकर राजाने पर्वतकी गुहामें स्थित सिंहके गर्जनके समान गम्भीर स्वरसे आकाशको भरते हुए पूछा—"क्या यही वह बाण है?" द्वारपालने निवेदन किया—"देवकी जैसी आज्ञा हो। यह वही है।" "जबतक प्रसन्न नहीं होता हूँ तब तक उसे नहीं देखूँगा।" इतना कह (आँखके) कोनेमें तरल तारकोंको ले जाकर, आँखकी नीली और उजली किरणोंसे रंग-बिरंगी दीर्घ प्रभाको, मानो नीले और उजले रेशमसे रंग-बिरंगी जवनिकाको, तिरछा घुमाकर और (स्वयं) मुड़कर पीछेकी ओर बैठे हुए अत्यन्त प्रिय मालव-राज-पुत्रसे कहा—"यह महान् भुजङ्ग है।" राजाका वचन नहीं समझकर उसके चुप रहनेपर तथा राज-लोकके मूक होनेपर, एक क्षण ठहरकर बाणने निवेदन किया—"देव, आप क्यों ऐसी आज्ञा दे रहे हैं? जान पड़ता है जैसे आप सत्यको नहीं जानते हैं,

(मुझपर) विश्वास नहीं कर रहे हैं, परवश हैं, लोक-वृत्तान्तसे अनभिज्ञ हैं। लोगोंका स्वभाव और प्रवाद स्वेच्छाचारी और विचित्र होता है। किन्तु बड़ोंको तो सत्यको देखना चाहिए। आप मुझे साधारण आदमीकी तरह अन्यथा न समझें। मैं ब्राह्मण हूँ, सोमपान करनेवाले वात्स्यायनोंके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार उचित समयपर किये गये। अङ्गों-सहित वेद अच्छी तरह पढ़ा। यथाशक्ति शास्त्र सुने। विवाहके समयसे गृहस्थ हूँ। मेरी क्या भुजङ्गता (= लम्पटता) है? दोनों लोकोंके अविरुद्ध चपलताओंसे मेरा शैशव शून्य नहीं था; इतना मैं स्वीकार करता हूँ। इसके लिए मेरा हृदय पश्चात्ताप-सा कर रहा है। किन्तु इस समय जब बुद्धके समान शान्तचित्त, मनुके समान वर्णाश्रम-व्यवस्थाके पालक, धर्मराजके समान साक्षात् दण्डधारी देव सातों समुद्रोंसे घिरी तथा अनेक द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका शासन कर रहे हैं, तो कौन निर्भय होकर सभी व्यसनोंके बन्धु अविनयका अभिनय करनेकी मनसे भी कल्पना कर सकता है? मनुष्योंकी बात तो दूर रहे। आपके प्रभावसे भौंरे भी मानो भयभीत होकर मधु पीते हैं। चक्रवाक भी प्रियाओंकी अतिशय आसक्तिसे मानो लज्जित होते हैं। बन्दर भी मानो चकित होकर चपलताएँ करते हैं। हिंसक पशु भी मानो सदय होकर मांस खाते हैं। समय पाकर स्वामी स्वयं ही मुझे जान जायँगे; क्योंकि ज्ञानवान् पुरुषोंकी प्रकृति (दूसरोंकी) चित्त-वृत्तिको ठीक ठीक समझ लेती है।" इतना कह वह चुप हो गया।

राजा भी "हमलोगोंने ऐसा सुना था" यह कह चुप हो गया। उसने संभाषण, आसन-दान आदिकी कृपासे उसे अनु-

गृहीत नहीं किया। केवल स्नेह-भरे दृष्टि-पातसे अमृत बरसाकर मानो नहवाते हुए उसने आन्तरिक प्रीति प्रकट की। अस्ताभिलाषी सूर्यके नीचे उतरनेपर राज-लोकको विसर्जित कर उसने भीतर प्रवेश किया। बाण भी निकलकर अपने निवास-स्थान पर चला गया। दिवस शान्त हो चला था और सूर्यकी प्रभा धुले पीतलकी तरह कोमल हो रही थी। अस्ताचलके शिखरका मुकुट-स्वरूप सूर्य आकाशको छोड़ता हुआ वेतकी मञ्जरीके सदृश (लाल) किरणोंको छोड़ रहा था। जुगाली करते हुए शिथिल कुरंग-कुटुम्ब जंगलोंमें गौओंके भूतपूर्व बथानोंके कोमल तलोंपर बैठे हुए थे। शोकाकुल[1] चक्रवाकियोंके क्रन्दनसे नदी-तट करुण हो रहे थे। निवास-वृक्षोंपर छोटे-छोटे मुखर पक्षी बैठे हुए थे। गृह-उद्यानोमें (पौधोंके) आलवालोंमें[2] पानी पटानेके लिए घड़े झुकाये जा रहे थे। दिन भर भ्रमण कर लौटी गायोंके चूते स्तनोंको दुधमुँहें भूखे बछड़े पी रहे थे। अस्ताचलके (गैरिक–) धातुके प्रचुर प्रवाहसे प्लावित सा, लाल आभावाला,संध्यासागरका पान-पात्र-स्वरूप सूर्य-मण्डल धीरे धीरे डूब रहा था। कमण्डलके जलसे हाथ-पैर धोकर भिक्षुगण मन्दिरमें उपासना कर रहे थे। अग्नि जल रही थी, उसके चारों ओर कुश बिछे हुए थे तथा यज्ञ करनेवाले, जिनके हाथ यज्ञ-पात्रोंसे पवित्र थे, 'वषट्' कह कह अग्निमें हवन-द्रव्य डाल रहे थे। चपलताओंसे मुक्त हो कपिकुल उपवनके वृक्षोंपर पड़े थे तथा उन वृक्षोंके घोंसले नींदसे सुस्त कौओंसे व्याप्त थे। जीर्ण

---

१. रातको चकवी चकवासे अलग हो जाती है।

२. थाला।

वृक्षोंकी कोटररूपी कुटीके स्वामी कौशिक[1] बाहर जानेकी इच्छा कर रहे थे। मुनियोंके हजारों हाथोंसे संध्या-वन्दनमें बिखेरे गये जलबिन्दुओंके सदृश स्थूल ताराओंसे आकाश चमक रहा था। रात्रिरूपी शबरीकी चूड़ा (जूड़ा) से आकाश व्याप्त हो रहा था। शिवके कण्ठके समान नीला बाल-अन्धकार संध्याकी शेष ज्योतिको कवलित कर रहा था। दीपावलियाँ चमक उठीं, मानो अग्निमें प्रविष्ट सूर्यकी किरणरूपी अंगुलियाँ तिमिरके तर्जनके लिए निकल आईं। किवाड़ोंके शब्दसे द्वारोंका बन्द होना घोषित होने लगा। वृद्धाओंके द्वारा कथाएँ कही जानेपर बिछावनपर पड़े रहनेका आनन्द अनुभव करते हुए शिशुजन सोनेकी इच्छा कर रहे थे। वृद्ध महिष या मसीके समान काले अन्धकारसे युक्त भीषणतम रात्रि-मुख[2] यक्षोंको जगाकर जँभाई लेने लगा। समस्त संसारकी बुद्धि चुरानेवाला कामदेव, जिसके धनुषकी प्रत्यञ्चा बज बजकर फैल जाती थी, बाणोंकी अनवरत वर्षा कर रहा था। रतिके (अनुकूल) वेशसे शोभित दासियाँ, जो कुटनीके कहनेमें रहती हैं, अलङ्कार पहन रही थीं। सैरंध्रियोंके[3] द्वारा करधनी बाँधी जानेसे बधुओंकी कमरें शब्दायमान हो रही थीं। कामदेवरूपी अनुचरसे युक्त अभिसारिकाएँ, जो जन-शून्य मार्गोंपर घूमती हैं, प्रस्थान कर चुकी थीं। पोखरोंमें पड़ी हुई हंसियोंकी मनोहर बोली, जो नूपरोंकी ध्वनिके समान मन्द पड़ गई थी, विरल (विलीन) हो रही थी। नींद नहीं होनेसे अत्यन्त दीर्घ लगनेवाली सारसोंकी बोली

---

१. उल्लू। २. रात्रिका आरम्भ।

३. सिंगार-सजावटमें निपुण स्त्रियाँ।

विरही व्यक्तियोंके हृदयोंको मानो द्रवीभूत कर रही थी। भावी दिवसके बीजाङ्कुरोंके समान संसारमें दीप बिखेरे जा रहे थे।

उसने मनमें सोचा—"देव हर्ष अति उदार हैं, जो बालक-पनकी अनेक चपलताओंके योग्य कलङ्कसे कुपित होनेपर भी मन ही मन मुझसे स्नेह ही करते हैं। यदि मैं उनकी आँखोंका काँटा होता; तो वह मुझे दर्शन देनेकी कृपा नहीं करते। किंतु वह चाहते हैं कि मैं गुणवान् होऊँ। क्योंकि योग्य सम्मान प्रदान कर वचनके विना भी स्वामी आश्रितोंको शिष्टाचार सिखाते हैं। धिक्कार है मुझे, जिसका मन अपने ही दोषसे अन्धा हो गया है तथा जो (बाह्य) अनादरसे दुःखी हो इस प्रकारके अत्यन्त गुणवान् राजाके प्रति तरह तरहकी चिन्ताएँ कर रहा है। अब सभी प्रकारसे वैसा ही करूँगा, जिससे समय पाकर ये मुझे ठीक ठीक जान लेंगे।"

ऐसा निश्चय कर दूसरे दिन राज-शिविरसे निकलकर वह मित्रों और बन्धुओंके घरोंमें तबतक रहा जब कि पृथिवीपति स्वयं ही इसके स्वभावको जानकर प्रसन्न हुआ। और, फिरसे उसने राज-भवनमें प्रवेश किया। कुछ ही दिनोंमें परम प्रसन्न हो राजाने उसे प्रसन्नतासे उत्पन्न होनेवाले मान, प्रेम, विश्वास, धन, परिहास और प्रभावकी पराकाष्ठापर पहुँचा दिया।

श्री बाणभट्टकृत हर्षचरितमें राज-दर्शन नामक

द्वितीय उच्छ्वास समाप्त।

तृतीय उच्छ्वास

अपनी वृष्टिसे आर्द्रता उत्पन्न करनेवाले तथा पर्याप्त धानसे युक्त सुकालकी भाँति अपने देशसे स्नेह करनेवाले तथा अनेक (राज-) भक्त पुरुषोंसे युक्त राजा प्रजाओंके पुण्यसे उत्पन्न होते हैं। ॥१॥

साधुओंका उपकार करनेके लिए, लक्ष्मीका दर्शन करनेके लिए, आकाशसे जानेके लिए तथा महात्माओंका चरित सुननेके लिए किसका मन उत्सुक नहीं होता ? ॥२॥

अनन्तर, एक बार शरत्समयका आरम्भ हुआ, जब मेघ विरल हो जाते हैं, चातकोंको आतङ्क होता है, कलहंस बोलते हैं—शरत्समय, जो दादुरोंसे द्वेष करता है, मयूरोंका मद चुरा लेता है और (निर्मल जल प्रदान कर) हंसरूपी यात्रियोंका अतिथि-सत्कार करता है। उस समय आकाश धुली तलवारकी तरह (निर्मल) हो जाता है, सूर्य चमकता है, चाँद स्वच्छ हो जाता है, ताराएँ तरुण रहती हैं। इन्द्रधनुष और विद्युत्-मालाएँ नष्ट हो जाती हैं, विष्णुकी निद्रा भङ्ग हो जाती है[1]। वैदूर्य मणिका-सा रंगवाला जल प्रवाहित होता है। नीहारके समान हलका मेघ घूमता रहता है, अतः इन्द्र (वृष्टि करनेमें) असफल रहता है। कदम्ब संकुचित रहते हैं, कुटज कुसुमोंसे

---

१. अविकल अर्थ होगा—'विष्णुकी निद्रासे द्रोह करता है।' विष्णु सदा आषाढ़में सो जाते हैं और कार्तिकमें जग उठते हैं।

रहित और कन्दल मुकुलोंसे हीन। लाल कमल कोमल हो जाते हैं, नीले कमल मधु बरसाते हैं और उजले कमल विकसित होते हैं। शेफालिकाओंसे रातें शीतल हो जाती हैं, यूथिकाओंका परिमल फैल जाता है, खिलते कुमुदोंसे दशों दिशाएँ श्वेत हो जाती हैं। सप्तच्छदकी धूलसे समीर धूसर हो जाता है। सुन्दर बन्धूकोंके[1] गुच्छोंसे असमयमें ही संध्या हो जाती है। घोड़ोंका नीराजन किया जाता है, हाथी उच्छृङ्खल हो जाते हैं और साँड़ दर्पसे मत्त हो जाते हैं। कीचड़ क्षीण हो जाता है, बाल पुलिनोंसे नदी-तट पल्लवित हो जाते हैं। पकनेके कारण नीवार कुछ कुछ सूख जाता है, प्रियंगुकी मञ्जरीमें पराग हो जाता है, त्रपुसका[2] छिलका कड़ा हो जाता है और सरकंडा फूलोंसे हंसता है। ऐसे ही समयमें बाण राजाके समीपसे बन्धुओंको देखनेके लिए फिरसे ब्राह्मणोंके उस निवासस्थानपर गया।

बाणने भूपालसे अतिशय सम्मान पाया है, इस बातसे प्रसन्न हो उसके बन्धुगण प्रशंसा करते हुए बाहर निकल आये। क्रमपूर्वक कतिपयोंको अभिवादन करता हुआ और कतिपयोंसे अभिवादित होता हुआ, कतिपयोंसे शिरपर चुम्बित होता हुआ और कतिपयोंको शिरपर चुम्बन करता हुआ, कतिपयोंसे आलिङ्गित होता हुआ और कतिपयोंको आलिङ्गन करता हुआ, अन्य लोगोंके द्वारा आशीर्वादसे अनुगृहीत होता हुआ और दूसरोंको अनुगृहीत करता हुआ, अपने अनेक बन्धुओंके बीच

.बन्धूक नामक फूल लाल होते हैं।

२. लाङ्क, एक तरहका फल, खीरा!

वह अत्यन्त आनन्दित हुआ। गुरुजनोंके बैठनेपर वह परिजनके द्वारा वेगपूर्वक लाये गये आसनपर बैठ गया। अर्चा-आदि सत्कार पाकर वह परम प्रसन्न हुआ। और, प्रसन्न मनसे उसने उन सबोंसे पूछा—"इतने दिनोंसे आप लोग सुखी तो हैं ? अथवा उचित अनुष्ठान (शास्त्रानुसार सम्पादन) से द्विज-वृन्दको सन्तुष्ट कर यज्ञ-क्रिया तो निर्विघ्नकी जाती है ? क्या विधिपूर्वक अविकल मन्त्रों सहित अग्निको हवन द्रव्य प्राप्त होते हैं ? अथवा क्या वटुगण समय पर पढ़ाये जाते हैं ? अथवा प्रतिदिनका वेदाभ्यास अटूट तो है ? यज्ञ-विद्याके अभ्यासमें वही पुराना अभियोग तो है ? व्याकरण शास्त्रकी वही व्याख्यान-मण्डली तो है, जो परस्परकी सतत स्पर्धासे सफल हुए दिवसोंसे (व्याकरणके प्रति) आदर दिखाती थी ? अथवा तर्क-विद्याकी वही पुरातन समिति[1] तो है, जो अन्य कर्तव्योंको छोड़ देती थी। अथवा मीमांसा शास्त्रमें वही अत्यधिक रुचि तो है, जिससे अन्य शास्त्रोंकी रुचि मन्द पड़ जाती थी। अथवा अभिनव सुभाषितोंसे सुधा बरसानेवाले वे ही काव्यालाप तो होते हैं ?"

तब उन्होंने उससे कहा—"हम सन्तोषियोंको, जिनका विद्या-विनोद सदा साथ रहता है और यज्ञकी अग्नि ही जिनका सहायक है, सुखी होनेके लिए क्या करना, जब सम्राट्की भुजा, जो सकल भुवनका पालक है तथा सर्पराजकी देहके समान लम्बी है, पृथिवीकी रक्षा कर रही है ? हम लोग सभी तरहसे सुखी हैं, विशेषतः (इस समय) जब आप आलस्य छोड़ परमेश्वरके

---

१. 'भारतमें गोष्ठीकी परम्परा'—जीवन साहित्य, जून १९४८।

पास बेतके बने आसनपर बैठते हैं। शक्ति एवं विभवके अनुसार विप्रजनोंके योग्य सभी क्रिया-कलाप समयपर संपादित हो रहे हैं।" इस तरहके आलापोंसे, राजद्वारकी बातोंसे, शैशवकी बीती क्रीड़ाओंके अनुस्मरणोंसे, एवं पूर्वजोंकी कथाओंसे उन लोगोंके साथ मनोविनोद करता हुआ वह बहुत देर तक ठहरा। और मध्याह्नमें उठकर उसने उचित आचारोंको किया। उसके भोजन करनेपर, सभी बन्धुओंने उसे घेर लिया।

तब पुस्तक-वाचक सुदृष्टि आ गया। वह मोरकी आँखके कोनेके समान धवल दो रेशमी वस्त्र, जो पुण्ड्र देशके बने थे, पहने हुए था। स्नानके अन्तमें उसने मन्त्रसे पवित्र की गई तीर्थ की मिट्टी तथा गोरोचनसे तिलक बना लिया था। तेल और आँवले (के चूर्ण) से केश-पाशको चिकना कर लिया था। छोटी चोटीको चूमनेवाले फूलोंके घने गुच्छेसे वह भासित हो रहा था। एक ही बार पानका व्यवहार करनेसे उसके अधर की कान्ति विमल थी। एक शलाकासे अञ्जन लगानेसे उसकी आँखोंमें कान्ति उत्पन्न हो गई थी। उसने तुरंत ही भोजन किया था। वह विनीत और आर्य वेष धारण किये था। (वहाँ आकर) निकटवर्ती आसनपर बैठ गया। एक क्षण ठहरकर तत्काल धागोंका बन्धन हटाये जानेपर भी नखोंकी किरणोंसे, मानो कोमल कमल-नालोंके रेशोंसे, बँधी हुई पुस्तकको आगे रखे सरकंडोंके यन्त्रपर रख दिया। समीपवर्ती मधुकर और पारावत को[1] पीछेकी ओर स्थान दिया। प्रातःकालके पाठ-विरामके चिह्न-

१. मधुकर और पारावत बाणके साथी थे। वंशी बजाते थे। देखिये

स्वरूप भीतरी पन्नेको हटाकर कुछ ही पन्नोंकी हल्की जिल्द ले ली। दाँतोंकी कान्तिसे मानो मसी-मलिन अक्षरोंको धोते हुए या मानो उजले फूलोंकी वृष्टिसे पुस्तक की पूजा करते हुए, मधुर स्वर-कम्पोंसे, मानो मुख-निवासिनी सरस्वतीके नूपुर-रवोंसे, श्रोताओंके मनोंको हरते हुए उसने वायुपुराणका गान किया।

जब वह सुदृष्टि कर्ण-सुखद गीतमय पाठ कर रहा था, तब गीत-ध्वनिका अनुसरण करते हुए निकटवर्ती सूचिबाण नामक बन्दीने ऊँचे और मधुर स्वरसे इस आर्या[1]-युगलका पाठ किया—

यह मुनिका गाया हुआ है, अत्यन्त विशाल[2] है, जगद्-व्यापी है और पवित्र[3] है। यह पुराण मुझे हर्षचरितसे भिन्न नहीं मालूम होता। ॥ ३ ॥

वंशीका अनुसरण करनेवाला, गान्धार एवं निषाद नामक विवादी स्वरोंसे रहित, स्पष्ट ताल और लयसे युक्त, संगीताचार्य भरतकी पद्धतिका अनुसरण करनेसे महान् तथा श्रीकण्ठसे[4]

प्रथम उछ्वासका अन्तिम भाग, जहाँ बाणके साथियोंकी सूची है। कुछ लोगोंके अनुसार मधुकर और पारावतका अर्थ भ्रमर और कपोत है।

१. इस नामका पद्य विशेष।

२. मूल शब्द 'अतिपृथु' का दूसरा अर्थ है 'पृथुनामक आदि-राजसे बढ़कर'।

३. मूल शब्द 'पावन' का दूसरा अर्थ है 'पवनका कहा हुआ अर्थात् वायुपुराण'।

४. श्री-युक्त कण्ठ, अथवा शिव।

निकला हुआ यह गीत हर्ष-राज्यके[1] समान है, जो वंश (के नियम) का अनुगामी है, जो विरोधियोंसे रहित है, जिसका धर्म-निर्णय प्रसिद्ध है, जो भरत नामक राजाके मार्गका सेवन करनेसे महान् है तथा जो श्रीकण्ठ नामक देशसे निकला है ।।।४।।

गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल नामक बाणके चार चचेरे भाई (उस समय वहीं) थे। पितामहके चार मुखकमलोंके समान वे वेदाभ्याससे पवित्र हो गये थे। वे उपायोंके[2] समान थे, जिनका मुख[3] सामके प्रयोगसे सुन्दर है। उनका आचरण शुद्ध[4] था। वे (गुरुजनोंकी) बात मानते थे[5]। बड़े पद पर स्थित थे[6]। न्याय जानते थे। पुण्य कर्मोंका सञ्चय करनेसे महान् हो गये थे[7]। लोककी तरह व्याकरणमें भी वे साधु शब्द ही पाते थे[8]। वे सभी प्राचीन राजर्षियोंके चरित जानते थे। उन्होंने महाभारतका अनुशीलन किया था। उन्हें

---

१. हर्ष नामक राजाका राज्य अथवा आनन्द-राज्य।

२. उपाय चार हैं—साम, दान, भेद और दण्ड।

३. उपायके पक्षमें मुखका अर्थ आरम्भ है और सामका साम नामक उपाय। भाइयों के पक्षमें मुखका अर्थ मुँह है और सामका सामवेद।

४. दूसरा अर्थ—वे (व्याकरणके) सूत्रोंकी व्याख्या समझते थे।

५. दूसरा अर्थ—वे (वैयाकरण कात्यायनके) वार्तिक समझते थे।

६. दूसरा अर्थ—गुरुके पैरोंपर न्यासका अभ्यास करते थे।

७. दूसरा अर्थ—(व्याकरण ग्रन्थ) संग्रहका अच्छी तरह अभ्यास करनेसे वे उपाध्याय हो गये थे।

८. संसारमें उन्हें साधुवाद मिलता था और व्याकरणके अनुसार साधु अर्थात् शुद्ध शब्दोंका ही व्यवहार वे करते थे।

सकल इतिहास विदित थे। वे महाविद्वान् और महाकवि थे। महापुरुषोंके वृत्तान्त (जानने) के लिए वे उत्सुक रहते थे। सुभाषित सुननेकी रुचिके लिए रसायन थे। तृष्णासे रहित थे। वयस[1], वचन, यश, तप, सभा, तेज, शरीर और यज्ञमें प्रथम थे।

यह (आर्या-युगल) सुनकर वे, जिन्होंने पहलेसे ही ठीक कर रखा था, बोलनेकी इच्छा करने लगे। उनके कपोल स्मितरूपी सुधासे धवल होने लगे और वे एक दूसरेका मुख देखने लगे।

तब श्यामल, जो उन सबोंसे छोटा था, जिसकी आँखें कमल-दलकी तरह लम्बी थीं, जो बाणका अत्यन्त प्रिय तथा उसके प्राणोंका भी स्वामी था, उन लोगोंसे इशारा पाकर, दाँतोंकी ज्योत्स्नासे दिशाओंको नहलाते हुए अपने मुखचन्द्रसे आदरपूर्वक बोला—"हे तात बाण, द्विजराजने गुरु-पत्नीका ग्रहण किया। पुरूरवा ब्राह्मण-धनकी तृष्णाके कारण प्रिय आयुः[2] से वियुक्त हुआ। पर-कलत्रका अभिलाषी नहुष अजगर हो गया। ब्राह्मणीका पाणि-ग्रहण करनेसे (क्षत्रिय) ययातिका पतन हुआ। सुद्युम्न स्त्रीमय ही हो गया[3]। सोमककी जन्तु-हत्याकी निष्ठुरता

---

१. वयसमें प्रथम = प्रथम अवस्थामें, युवावस्थामें, युवक।

२. जीवन अथवा आयुःनामक पुत्र।

३. वह स्त्री हो गया, या स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्त हो गया। एक बार किसी सरोवरमें शिव पार्वतीके साथ विहार कर रहे थे। शिकार खेलनेको आये राजर्षि सुद्युम्नने उन्हें देख लिया। लज्जाको प्राप्त पार्वतीकी प्रार्थनापर शिवने शाप दिया "जो कोई यहाँ आकर जिस

प्रसिद्ध[1] है। तीरोंके व्यसनके कारण पुत्र-पौत्रों सहित मांधाता रसातल चला गया[2]। तपस्या करते हुए भी पुरुकुत्सने नर्मदामें कुत्सित कर्म किया[3]। नागलोक पहुँचकर कुवलयाश्वने अश्वतरा नामक नाग-कन्या तकको नहीं छोड़ा। आदिराज पृथुने पृथिवीको सताया[4]। नृगके कृकलास होनेपर वर्णसंकर दिखाई पड़ा[5]।

किसी भी वस्तुका उपयोग करेगा, वह स्त्री हो जायगा"। तब उस सरोवरका जल उपयोग करनेपर वह स्त्रीमय हो गया।

१. सोमक नामक राजाको जन्तु नामका एक ही पुत्र था। एक पुत्रसे अपुत्र रहना कहीं अच्छा है, यह जान वह बहुत उद्विग्न हुआ। तब पुरोहितने कहा—"यदि आप अनेक पुत्र चाहते हैं, तो इस पुत्रकी वपासे होम कीजिए। आपकी जितनी रानियाँ उसके धुएँको सूँघेंगी, वे सभी पुत्रवती हो जायँगी।" इसपर सोमकने वैसा ही किया।

२. पृथिवी जीतकर मांधाता स्वर्ग जीतने गया। इन्द्रने कहा—"पाताल जीतकर आइये, आपकी गुलामी करूँगा"। उसके कहनेपर वह पाताल गया, जहाँ लवण नामक दानवने उसे सैन्य-सहित मार डाला।

३. तपस्या करते समय पुरुकुत्सने नर्मदामें एक कन्याको स्नान करते देखा। और कामके वशमें हो उसने नीतिका उल्लंघन किया।

४. दुर्भिक्ष पड़नेपर उसने धनुष लेकर पृथिवीको शस्य देनेको बाध्य किया।

५. कृकलास नामका एक छोटा जीव है, जिसके शरीरपर कई रंग होते हैं। 'वर्णसंकर' में श्लेष है; पहला अर्थ है भिन्न भिन्न रंगोंकी मिलावट और दूसरा अर्थ है भिन्न भिन्न जातियोंके संयोगसे उत्पन्न संतान। एक बार दान देनेके समय राजा नृगने किसी ब्राह्मणकी गाय गल्तीसे दूसरे ब्राह्मणको दे दी। पीछे दोनोंके बीच विवाद हुआ और दोनों

सौदासने पृथिवीका पालन नहीं किया,[1] उसे व्याकुल कर दिया। कलिने अजितेन्द्रिय नलको सताया। संवरण मित्रकी[2] पुत्रीमें आसक्त हो गया। प्रिय रामकी आसक्तिसे[3] दशरथका देहान्त हुआ। गो-ब्राह्मणोंको अत्यन्त सतानेके कारण[4] कार्तवीर्य मृत्युको प्राप्त हुआ। मरुत्तने बहुसुवर्णक यज्ञ किया, किन्तु देवद्विजने उसका आदर नहीं किया[5]। अत्यन्त आसक्तिके कारण गङ्गासे वियुक्त हो एकाकी शन्तनुने भी विपिनमें विलाप किया। वनके बीच कामार्त पाण्डुने, जलके बीच मदन फलके रससे पीड़ित

राजद्वारपर आये। भोगमें आसक्त राजाके दर्शन नहीं हुए। तब उनमेंसे एकने राजाको शाप दिया 'कृकलास हो जाओ'।

१. 'न रक्षिता' को अलग अलग नहीं पढ़कर एक साथ पढ़नेसे इसका अर्थ होगा 'मनुष्योंकी हिंसा करनेवाला'। शिकारमें थककर सौदास आ रहा था। रास्तेपर शक्र नामक मुनिको देखा और उसे हट जानेको कहा। पर 'ब्राह्मणोंको मार्ग देना चाहिये' कहता हुआ वह वहाँसे नहीं टला। तब राजाने कोड़ेसे उसे मारा। इसपर मुनिने शाप दिया—'मनुष्य-भक्षक राक्षस हो जाओ।'

२. मित्रका दूसरा अर्थ सूर्य है। तपती नामकी सूर्य-कन्याको देख संवरण उसमें आसक्त हो गया था।

३. या 'प्रिय स्त्रीकी आसक्तिसे'।

४. या 'गौओंके लिए ब्राह्मणको सतानेके कारण'।

५. देवद्विजके दो अर्थ हैं (१) देवताओंका पुरोहित, बृहस्पति (२) देवता और ब्राह्मण। मरुत्तने बृहस्पतिसे यज्ञ करानेकी प्रार्थना की। उसने उसकी प्रार्थना ठुकरा दी। तब मरुत्तने बृहस्पतिके भाईसे इस कार्यके लिये प्रार्थना की। उसने किसी किसी तरह स्वीकृति दी।

मछलीकी भाँति, प्राण छोड़े[१]। गुरु (द्रोणकी शक्ति) के भयसे दुःखी हो युधिष्ठिरने युद्धमें सत्य छोड़ दिया।

इस प्रकार, राजाधिराज सभी द्वीपोंके स्वामी उस हर्षको छोड़कर, राजत्व कलङ्कसे रहित नहीं है। इसके सम्बन्धमें बड़े बड़े आश्चर्य सुने जाते हैं। क्योंकि उसी प्रकार—इन्द्रने पंखोंसे युक्त चलते हुए पर्वतोंको निश्चल किया; यहां (इस) सैन्य-विजयीने सहायकोंसे युक्त चञ्चल राजाओंको निश्चल किया। प्रजापतिने शेषनागके फणके ऊपर क्षमा (पृथ्वी) रखी; यहाँ (इस) नरपतिने बचे हुए राजाओंके ऊपर क्षमा की। विष्णुने क्षीर-सागरको मथकर लक्ष्मीको अपनाया; यहां (इस) नर-पुङ्गवने सिन्धुराजको जीतकर राज्य-लक्ष्मीको अपनाया। बलिने पर्वतके बन्धनको छुड़ाकर शेषनागको मुक्त किया; यहां (इस) बलवान्ने राजाके बन्धनको छुड़ाकर बड़े हाथीको छोड़ दिया[२]। देवताने कुमारका अभिषेक किया; यहां सम्राट्ने राजकुमारका अभिषेक किया। कुमार (कार्तिकेय) ने एक ही प्रहारसे शत्रुको गिराकर शक्ति नामक अस्त्रको विख्यात बनाया; यहां स्वामीने एक ही प्रहारसे शत्रुको गिराकर अपनी शक्तिको विख्यात किया। नरसिंहने अपने हाथसे शत्रुको मारकर पराक्रम प्रकट किया; यहाँ (इस) नरसिंहने बाहु-बलसे शत्रुओंका नाश कर अपना पराक्रम प्रकट किया। शिवने हिमालयकी पुत्री पार्वतीका

१. शापके वश पाण्डुने माद्रीके साथ रमण करते समय,प्राण छोड़े।

२. एक बार दर्पशात नामक मत्त हाथीने कुमार नामक राजाको सूँड़में बाँध लिया था। यह देख हर्षने तलवार खींचकर कुमारको छुड़ा लिया और उस हाथीको वनमें छोड़ दिया।

कर ग्रहण किया; यहाँ सम्राट्‌ने हिमालयके दुर्गम प्रदेशोंसे कर लिया। ब्रह्माने दिशाओंमें दिक्पालोंको नियुक्त कर आदिनृपोंके बीच समस्त जगत्‌का कोश बाँट दिया; यहाँ नरपतिने भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें लोकपालोंको नियुक्त कर द्विजोंके बीच समस्त जगत्‌का कोश बाँट दिया। इस तरहके महान् कार्य प्रथम कृत-युगके-से दिखाई पड़ते हैं। अतः हम लोग इस प्रातःस्मरणीय पुण्यराशिका चरित पूर्व पुरुषोंके क्रम-सहित आरम्भसे सुनना चाहते हैं। सुननेकी इच्छा करते करते बहुत समय बीत गया। जिस तरह चुम्बक नीरस और कठोर लोहेको खींच लेता है, उसी तरह बड़ोंके गुण क्षुद्र व्यक्तियोंके भी नीरस और कठोर मनोंको खींच लेते हैं, फिर दूसरोंके मनोंका कहना ही क्या है, जो स्वभावसे सरस और मृदु हैं। इसके चरितके प्रति, जो दूसरा महाभारत है, किसे कुतूहल नहीं होता? आप कहें। राजर्षि-चरितके इस पवित्र श्रवणसे यह भार्गव-वंश और भी पवित्र हो।" इतना कह वह चुप हो गया।

बाण ने हँसकर कहा—"हे आर्य, आपने युक्ति-युक्त बात नहीं कही। मेरा निश्चय है कि आपके कुतूहलका मनोरथ पूरा नहीं हो सकता। प्रायः स्वार्थकी इच्छाएँ संभव और असंभवके विवेकसे शून्य रहती हैं। दूसरेके गुणोंसे अनुराग करनेवाली तथा प्रिय जन-सम्बन्धी कथा सुननेके अतिशय रससे मोहित मति मैं समझता हूँ, बड़ोंका भी विवेक हर लेती है। आर्य देखें, कहाँ द्विज-शिशुका हृदय जो परमाणुके परिमाणका है और कहाँ देवका चरित, जो समस्त जगत्‌में व्याप्त हो रहा है! कहाँ ये कतिपय शब्द, जो परिमित अक्षरोंसे बने हैं और कहाँ इनके

गुण जो संख्यासे भी परे हैं ! ये सर्वज्ञ और वाचस्पतिके भी अगोचर हैं; सरस्वतीके लिए भी अत्यन्त भार हैं, फिर हम-सरीखोंका कहना ही क्या ? सौ पुरुषोंकी आयुसे भी क्या कोई इनके चरितका अविकल वर्णन कर सकता है ? यदि एक अंशके लिए आपको कुतूहल हो तो, मैं प्रस्तुत हूँ। कतिपय अक्षरोंके प्राप्त करनेसे हल्की इस जीभका उपयोग ही कहाँ हो सकता है ? आप श्रोता हैं, हर्षचरितका वर्णन किया जाता है, और क्या कहूँ। आजका दिवस तो समाप्त हो चला। पश्चिम दिशामें गिरती हुई पीली किरणोंसे चमकता हुआ भगवान् सूर्य संध्याकी राग-राशिमें डूब रहा है, जान पड़ता है जैसे पीछेकी ओर लटकती हुई पीली जटाओंसे चमकता हुआ भगवान् परशुराम कुरुक्षेत्रकी लोहूकी झीलमें डुबकी लगा रहा हो। कल (हर्ष-चरित) कहूँगा।" उन सबने 'वैसा ही हो' कह स्वीकृति दी। कुछ ही देरमें उठकर वह संध्योपासन करनेके लिए शोणकी ओर गया।

अनन्तर, मालव देशकी महिलाके मद्य-पानसे प्रफुल्ल कपोलकी तरह कोमल आतपवाला दिवस मुकुलित होने लगा। सूर्य, जो मानो कमलिनियोंके संकुचित होनेसे अत्यन्त लाल हो रहा था, अन्धकारको चूमने लगा। रवि-रथ-तुरगोंके मार्गका अनुसरण करता हुआ अन्धकार यमके भैंसेकी तरह आकाशमें दौड़ने लगा। धीरे धीरे गृह-तपस्वियोंके घरोंके छप्परोंपर लटकते हुए वल्कल सूर्यकी लाल किरणोंके साथ समेट लिये गये। कलियुगके पापोंको चुरानेवाला अग्निहोत्रका धुआँ आकाशमें फैलने लगा। संयत यजमानोंने मौनव्रत धारण

किया। विहार करनेकी वेला होनेसे चञ्चल हो स्त्रियाँ घूमने लगीं। यज्ञकी गायोंके दुहे जानेपर उनके आगे श्यामाक जातिके धानके हरे पूले बिखेरे जा रहे थे। यज्ञकी अग्निमें हवन हो रहा था। नीले मृगछालेवाले जटाधारी तपस्वी पवित्र आसनपर बैठे हुए थे। वटुगण जप कर रहे थे। ब्रह्मासन लगाकर योगिगण ध्यान कर रहे थे। छात्रगण ताली बजाते हुए दौड़े आ रहे थे और थके हुए एवं वृद्ध उपाध्यायकी अनुमति मिलने पर मूर्ख एवं दुर्वृत्त वटुगण ऋचाओंको छोड़ छोड़कर उच्चारण करते हुए संध्योपासन कर रहे थे। तारा नामक प्रकाश आकाशमें निकल रहा था। (इस तरह) रात आरम्भ होनेपर घर आकर वह अपने स्नेही बन्धुओंके उसी समाजके साथ बैठा रहा। प्रथम पहर व्यतीत कर उसने गणपतिके घरमें बिछाये गये बिछावनका सेवन किया। अन्य सभी लोगोंको, आँखें बन्द करनेपर भी, नींद नहीं आई; सूर्योदयकी प्रतीक्षा करते हुए कमलोंकी तरह उनके लिए, कुतूहलके कारण, रात कठिनाईसे कटी।

रातके चौथे पहरमें उठकर उसी बन्दीने दो श्लोक गाये—

सोकर उठा हुआ घोड़ा पाँवको पीछेकी ओर फैला रहा है, रीढ़के पिछले भागको झुकाकर शरीरको ऊपरकी ओर लम्बा कर रहा है, कण्ठको झुकाकर मुखको छातीसे सटा रहा है, गर्दनपरकी धूलसे धूसर बालको हिला रहा है, घास खानेकी अभिलाषासे उसके मुखपरकी नासिका अनवरत चल रही है और वह धीरे धीरे हिनहिनाता हुआ धरतीको खुरसे खुरच रहा है।॥ ५॥

शुक्ति-सदृश कुञ्चित कानवाला घोड़ा पीठको झुकाकर और कन्धेको टेढ़ा कर कमरको मुँहके पास ले आया है। हिलते हुए चञ्चल और हिम-कण-वर्षी केसरसे आहत होते हुए आँखके कोनेको, जो नींदकी खुजलाहटसे लाल है और जिसकी पपनियोंमें, भूसीके बारीक कण लगे हैं, वह खुरसे रगड़ रहा है।॥६

यह सुनकर, बाणने नींद छोड़ दी। उठकर उसने मुँह धोया और भगवती सन्ध्याकी उपासना की। भगवान् सविताके उदय होनेपर ताम्बूल लेकर वह वहीं डट गया। इसी बीच उसके सभी बन्धु आ पहुँचे और घेरकर बैठ गये। पहलेके ही प्रस्तावसे उन लोगोंका अभिप्राय जानकर उसने उन लोगोंके आगे हर्षचरित कहना आरम्भ किया—

सुनिये। श्रीकण्ठ नामक एक देश है। वह पुण्यवान् व्यक्तियोंकी निवास-भूमि है, पृथिवीपर मानो स्वर्गका अवतार है। वहाँ ब्राह्मणआदि वर्णोंके आचार व्यवहार सदा शुद्ध रहते हैं और कृतयुगकी व्यवस्था है। हलोंसे खेत जोते जानेके समय स्थल-कमलोंकी अधिकताके कारण हल-मुखोंसे मृणालोंके उखाड़े जानेसे मधुकर कोलाहल करते हैं, जान पड़ता है जैसे वे हल मेदिनीके उत्कृष्ट गुणोंका गान करते हों। क्षीर-सागरका पय पान करनेवाले मेघोंसे पटाये गये पुण्ड्र जातिके ऊँखोंके घेरोंसे वह देश भरा रहता है। प्रत्येक दिशा में 'अपूर्व पर्वतोंके सदृश सस्य-पुञ्जोंसे, जो एक दूसरेसे खलिहानोंके स्थानों द्वारा विभक्त होते हैं, वहाँके सीमान्त स्थान भरे रहते हैं। चारों ओर यन्त्र-कलसोंसे सींचे जाते जीरोंके पौधोंसे वहाँकी भूमि उलझी रहती है। धानके उपजाऊ और उत्तम खेतोंसे वह देश अलंकृत है।

वहाँकी ऊँची जमीनपर गेहूँके खेत हैं, जो पकनेके कारण फुटते हुए कलायसे रंग-बिरंगे हो जाते हैं और फूटे हुए मूँगके छिलकोंसे भूरे हो जाते हैं। भैंसकी पीठपर बैठे हुए गोपाल गीत गाते हुए गौओंको चराते हैं। कीटोंकी लोभी चटकाएँ उनके पीछे पीछे जाती हैं। गलेमें लगे हुए घण्टा रूपी क्षुद्र घण्टोंके निनादसे वे (गायें) रमणीय लगती हैं। जंगलमें घूमती हुई वे दूध चुआती हैं, जान पड़ता है जैसे शिव-वृषभके द्वारा पिया गया क्षीर-सागर अपचकी आशङ्कासे अनेक (गायों) के बीच बाँट दिया गया हो। वे कोमल तृणोंसे तृप्त रहती हैं और विपिनको धवल कर देती हैं। वहांके स्थान हजारों कृष्णमृगोंसे, मानो विविध यज्ञोंके होमके धुएँसे अन्धा होकर इन्द्रके द्वारा छोड़े गये नेत्रोंसे, चित्र-विचित्र लगते हैं। धवल-पराग-वर्षी केतकी फूलोंकी रजसे सफेद हुए स्थानोंसे, मानो गणोंके भस्म-लेपसे धूसर हुए शिव-पुरके प्रवेश-मार्गोंसे, वह देश शोभित है। वहाँ गाँवोंके निकटकी धरती शाकों और केलोंसे श्यामल है। पद पदपर ऊँटोंके झुण्ड हैं। वहाँके निर्गमन-मार्ग[1] द्राक्षा-मण्डपों तथा दाडिम-उद्यानोंसे लुभावने लगते हैं; ये मण्डप पीलुनामक वृक्षके पल्लवोंसे चमकते रहते हैं, कर-पुटसे दबाये गये मातुलुङ्गीके पत्तोंके रससे लिपे रहते हैं, आप ही आप एकत्रित कुंकुम-केसर ही उनकी पुष्पमालायें हैं, और वहाँ अभिनव फलोंका रस-पान कर पथिक-गण सुखपूर्वक सोते हैं; ये मण्डप मानो पनसाले हैं, जहाँ वन-देवता अमृत-रस वितरण करते हैं। पकते

---

१. शङ्करका कथन है कि किसी किसीके मतानुसार 'उपनिर्गम' का अर्थ 'उद्यान' है।

हुए दाड़िम (अनार) के फलोंके बीजोंमें, जान पड़ता है, जैसे शुक-चञ्चुओंकी लालिमा लग गई हो और (वृक्षोंपर) चढ़े हुए कपि-कुलके कपोलोंसे अनारके फूलोंका सन्देह होता है। वहाँके उपवनोंमें वन-पाल नारियलका रसरूपी मद्य पीते हैं, पथिक-गण खजूर लुप्त करते हैं, बन्दर सुगन्धित खजूरका रस चाटते हैं, और चकोर अपनी चोंचोंसे आरुकके फलोंको विदीर्ण करते हैं। ऐसे उपवनोंसे वह देश मनोहर लगता है। वहाँके जंगली जलाशय ऊँचे अर्जुन वृक्षोंकी पाँतियोंसे घिरे हैं, गौओंके उतरनेसे उनके किनारेका जल कलुषित हो जाता है, वे सैकड़ों यात्रियोंको शरण देते हैं। ऐसे जलाशयोंसे वहाँके वनोंके भीतरी भाग सफल हैं। ऊँट पालनेवाले लड़के झुण्डके झुण्ड ऊँट और भेड़ पालते हैं। स्वच्छन्द-चारिणी वात-हरिणियों[1]की तरह बड़वाएँ दिशा दिशामें विचरण करती हैं, वे मानो रवि-रथ-तुरगोंको लुभानेके लिए लोट पोट करनेसे मर्दित कुङ्कुमोंके रससे लिप्त हो जाती हैं, नासा-पुटों और मुखको ऊपर उठाकर वे मानो उदर-शायी (गर्भस्थ) किशोरोंकी वेग-उत्पत्तिके लिये पवन पीती हैं। यज्ञके अनवरत धुआँरूपी अन्धकारसे निकले हुए सरकण्डोंसे,[2] मानो हंसोंके समूहोंसे, पृथिवी धवल हो जाती है। संगीतके मृदङ्गकी ध्वनिसे मत्त मयूरोंकी भाँति सम्पत्ति-राशि जीव-लोकको (आनन्दसे) मुखरित कर देती है। चन्द्र-किरणके सदृश निर्मल चरित्रवाले गुणियोंसे, मानो चन्द्र-किरणकी तरह स्वच्छ गोल मोतियोंकी

१. हवासे बातें करनेवाली हरिणी।

२. बाणका दूसरा अर्थ होगा 'अग्नि'।

मालासे, वह देश अलंकृत है। जिनके प्रचुर फल सैकड़ों पथिकोंने लुप्त कर दिये हैं, ऐसे बड़े वृक्षोंके सदृश उन सभी अतिथियोंके लिए जिनकी विपुल सम्पत्ति सौ सौ लुटेरोंने लूट ली है, वह देश सेवनीय है। हिमालयके बड़े बड़े प्रत्यन्त पर्वतोंकी तरह कस्तूरिकाकी सुगन्धसे युक्त मृग-रोमसे आच्छादित महान् व्यक्तियोंने इसे स्थिर कर दिया है। नारायणके नाभि-मण्डलकी भाँति लम्बे नालवाले कमलोंके पत्तोंपर बैठे हुए उत्तम द्विजोंसे[1] युक्त जलाशयोंसे वह मण्डित है। चारों ओर ग्वालोंकी बड़ी बड़ी कुटियाँ फैली हुई हैं, जहाँ दूध मथनेके समय, जैसे क्षीर-सागर-मथनके समय, मथी जाती दुग्ध-धारासे पृथ्वी प्रक्षालित होती है और घोर गर्जनसे दिशायें भर जाती हैं[2]।

वहां कुदृष्टियाँ[3] इस तरह क्षीण हो गईं, जैसे अग्नि-त्रयके[4] धुएँसे गिरते हुए अश्रु-जलसे प्रक्षालित हो गई हों। पाप इस तरह अदृश्य हो गये, जैसे पकते हुए पजावेकी ईंटोंकी आगसे जल गये हों। अधर्म इस तरह विदीर्ण हो गया, जैसे (यज्ञके) यूपके लिए लकड़ी काटनेवाले कुठारोंसे कट गया हो। वर्णसंकर[5] इस तरह नष्ट हो गया, जैसे यज्ञकी अग्निके धुएँसे निर्मित मेघकी वृष्टिसे धुल गया हो। कलियुग, मानो दानकी गई अनेकों गायोंके हजारों सींगोंसे खण्डित होता हुआ, वहांसे भाग गया।

---

१. पक्षी, ब्रह्मा।

२. "जलधिमथनवेलेव महाघोषपूरितदिगन्तरा"—कादम्बरी पृ० ५२।

३. बुरे ज्ञान, नेत्र-दोष।

४. अग्नि तीन हैं—दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय।

५. जातियों अथवा रंगोंका सम्मिश्रण।

वहाँ विपत्तियां इस तरह 'विदीर्ण हो गईं, जैसे मन्दिरोंकी शिलाएँ जोड़नेके टङ्कोंसे[१] काट दी गई हों। उपद्रव, मानो महादानके अनुष्ठानमें होनेवाले कलकलसे आक्रान्त होकर, भाग गये। व्याधियाँ, मानो यज्ञकी हजारों दीप्त रन्धन-शालाओंसे सन्तापित होकर, विलीन हो गईं। अपमृत्यु पास नहीं फटके, जैसे वृषोत्सर्गमें ताड़ित पुण्य पटहके तीक्ष्ण शब्दसे डर गये हों। ईतियाँ[२] इस तरह हट गईं जैसे अनवरत वेद-ध्वनिसे बधिर कर दी गई हों। दुर्दैव की प्रभुता नहीं चली, जैसे वह धर्मके शासनसे परिभूत हो गया हो।

ऐसे देशमें स्थाण्वीश्वर नामक एक छोटा-सा देश है। भुवनके नव-यौवनकी तरह वह नाना उद्यानोंके सुन्दर कुसुमोंके मधुर परिमलसे रमणीय है। धर्मके अन्तःपुरकी तरह कुङ्कुम-पङ्कसे रंगी हजारों महिषियोंसे[३] शोभित है। स्वर्गके एक भागकी तरह इसके पर्यन्त भाग मरुतोंके[४] द्वारा चलाये जाते हुए चमरीके बालव्यजनोंसे धवल हैं। कृतयुगके शिविरकी तरह, इसकी दशों दिशायें यज्ञकी जलती हुई हजारों अग्नियोंसे दीप्त हैं। ब्रह्म-लोकके प्रथम अवतारकी तरह वहाँ पद्मासनपर बैठे ब्रह्मर्षियोंके ध्यानसे सकल अमङ्गल शान्त हो रहे हैं। उत्तर कुरु देशके प्रतिस्पर्धीकी तरह वह कल-कल करती हुई बड़ी बड़ी

---

१. पत्थर काटनेके अस्त्र।

२. ईतियाँ शस्यको नाश करती हैं। ये छः हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, कीड़ा, मूषिक, पक्षी और निकटवर्ती राजा।

३. अभिषिक्त रानी (अन्तःपुरके पक्षमें); भैंस (स्थाण्वीश्वरके पक्षमें)।

४. देव, वायु।

नदियों और सेनाओंसे भरा है। त्रिपुर[1] जीतनेके इच्छुककी तरह वहाँके सभी लोग शिवके बाणोंके संतापसे[2] अनभिज्ञ हैं। चन्द्रलोकके प्रतिनिधिकी तरह वह सुधारससे[3] सिक्त धवल-गृह-पंक्तियोंसे श्वेत है। द्वितीय कुबेरनगरकी तरह वह मदिरासे माती हुई उत्तम महिलाओंके अलङ्कारोंकी झनकारसे भुवनको भर रहा है।

उस स्थाणीश्वरको मुनियोंने तपोवन, वेश्याओंने काम-मन्दिर, नर्तकोंने संगीत-शाला, शत्रुओंने यम-नगर, प्रार्थियोंने चिन्तामणि-भूमि, शस्त्रसे जीनेवालोंने वीरोंका क्षेत्र, विद्यार्थियोंने गुरु-कुल, गायकोंने गन्धर्व-नगर, विज्ञानियोंने विश्वकर्माका मन्दिर, व्यापारियोंने लाभ-भूमि, भाटोंने जुआ-घर,[4] सज्जनोंने साधु-समागम, शरणागतोंने वज्र-पञ्जर, विलासियोंने विलासि-समाज, पथिकोंने पुण्य-परिणाम, धातुवादके आचार्योंने खान, शान्तिके उपासकोंने बौद्ध-आश्रम, कामी जनोंने अप्सराओंकी पुरी, चारणोंने महोत्सव-समाज, और विप्रोंने धन-प्रवाह समझा।

वहाँकी प्रमदाएँ मातङ्ग-गामिनी[5] हैं और शीलवती हैं, गौरी हैं

---

१. प्राचीन समयमें शिवने अपने बाणोंसे स्त्री-सहित त्रिपुर अर्थात् तीन नगरोंको जलाया था।

२. शिवके बाणोंकी विध्वंस-लीलासे अनभिज्ञ होनेके कारण वह देश त्रिपुरसे भी बढ़कर था। या शिवकी तरह वहाँके सभी लोग राजाके उत्पीड़नोंसे अनभिज्ञ हैं'।

३. अमृत, चूने (से लिपी)।

४. वहाँ भाटोंको भरपूर इनाम मिलता था।

५. विरोधमें—चण्डालके यहाँ जानेवाली। विरोधके परिहारमें गज-गामिनी।

और विभवमें रत हैं;[1] श्यामा हैं और पद्मरागसे युक्त[2] हैं। उनके मुख धवल दाँतोंसे चमकते[3] हैं और उनकी साँसोंमें मदिराकी सुगन्धि है। उनके शरीर चन्द्रकी तरह रमणीय हैं[4] और अङ्ग शिरीषकी भाँति कोमल। वे विलासियोंकी पहुँचसे बाहर हैं और चोली पहनती हैं[5]। उनकी सुन्दर जाँघें चौड़ी हैं और कमरें पतली हैं[6]। वे लावण्यवती[7] हैं और मधुर-भाषिणी हैं। वे प्रमाद-रहित हैं और उनकी कान्ति विशद और मनोहर है[8]। वे कौतुकसे रहित हैं और प्रौढ़ हैं[9]।

वहाँ प्रमदाओंकी आँखें ही स्वाभाविक मुण्ड-माला है, कुवलय-दलकी मालाएँ तो भार हैं। कपोल-तल पर पड़नेवाले उनके अलकोंके प्रतिबिम्ब ही कानोंके अक्लिष्ट अवतंस हैं, तमाल

---

१. विरोधमें—पार्वती हैं और शिवको छोड़ अन्यत्र रत हैं।
विरोध-परिहारमें:—गोरी हैं और सम्पत्तिमें रत हैं।

२. विरोधमें—रातें हैं और पद्मोंकी लालिमासे युक्त हैं।
विरोध-परिहारमें—श्यामलाङ्गी हैं और पद्मराग रत्नोंसे अलंकृत हैं।

३. विरोधमें—उनके मुख ब्राह्मणोंकी तरह पवित्र हैं।

४. विरोधमें—उनके शरीर चन्द्रकान्त मणिकी तरह (कठोर) हैं।

५. विरोधमें—सर्पोंकी पहुँचसे बाहर हैं, और सर्पिणी हैं।

६. विरोधमें—आदिराज पृथुकी श्री उनमें है और वे दरिद्रोंके बीच गिनी जाती हैं।

७. लवण-रससे युक्त, सौन्दर्यवती।

८. विरोधमें—वे माती नहीं हैं और सुरासे उनकी कान्ति सफेद हो गई है।

९. विरोधमें—वे विवाहके कङ्कणसे रहित हैं और प्रौढ़ हो गई हैं।

के किसलय तो व्यर्थ हैं। प्रिय-जनोंकी कथाएँ ही उनके कानोंके सुन्दर अलङ्कार हैं, कुण्डल आदि तो आडम्बर हैं। उनके कपोल ही सतत आलोक करते रहते हैं, रातके मणि-प्रदीप तो सम्पत्ति (का प्रदर्शनमात्र) है। साँसोंसे आकृष्ट मधुकर-कुल ही उनके मुखोंका रमणीय आवरण है, जालिका तो कुलीन स्त्रियोंका आचार है। उनकी वाणी ही मधुर वीणा है, तन्त्री-ताड़न तो वाद्य-कौशल है। उनकी मुस्कानें ही अत्यन्त सुगन्धित चूर्ण हैं, कपूरका चूर्ण तो निरर्थक ही है। उनकी अधर-कान्ति ही उज्ज्वल अङ्गराग है, कुङ्कुम-पङ्क तो निर्गुण लावण्य-कलङ्क है। उनकी बाहें ही परिहास में प्रहार करनेकी वेत्र-लताएँ हैं, मृणाल तो निष्प्रयोजन हैं। यौवनकी उष्मताके स्वेद-बिन्दु ही उनके कुचों के सुन्दर अलङ्कार हैं, हार तो भार हैं। विशाल स्फटिक-शिलाके सदृश उनके चौकोर नितम्ब ही प्रेमियोंके विश्राम-स्थान हैं, भवनकी मणि-वेदिकाएँ तो व्यर्थ हैं। कमलोंके लोभसे आये हुए अलिकुल ही उनके पैरोंके मुखर आभरण हैं, इन्द्रनीलके बने नूपुर तो निष्फल हैं। नूपुरोंकी ध्वनिसे बुलाये गये भवन-कलहंस ही उनके समुचित सञ्चरण-सङ्गी हैं, परिजन तो ऐश्वर्य-प्रपञ्च हैं।

वहाँ पुष्पभूति नामक राजा हुआ। साक्षात् इन्द्रके समान उसके पास एक सर्व-वर्ण-धर[1] धनुष था। कल्याण-प्रकृतिमें[2] वह मेरुके समान था, लक्ष्मीको खींचनेमें वह मन्दरके समान था,

१. सभी रंगोंसे युक्त, सभी वर्णोंकी रक्षा करनेवाला।

२. कल्याणका दूसरा अर्थ 'सुवर्ण' है; कहा जाता है कि मेरु पर्वत सोने

मर्यादामें[१] सागरके समान था, शब्द-प्रादुर्भावमें[२] आकाशके समान था, कलाओंका संग्रह करनेमें चन्द्रमाके समान था, अकृत्रिम[3] वचनमें वेदके समान था, लोकधारण करनेमें धरतीके समान था, सर्व-पार्थिव-रज[४] हटानेमें पवनके समान था। वचनमें वह गुरु[५] था, उरस्थलीमें पृथु[६] था, मनमें विशाल[७] था, तपमें जनक था, तेजमें सुयात्र[८] था, रहस्यमें सुमन्त्र था, सभामें बुध[९] था, यशमें अर्जुन[१०] था, धनुषमें भीष्म[११] था, शरीरमें निषध[१२] था, समरमें शत्रुघ्न था, शूरोंकी सेनापर[13] आक्रमण करनेमें शूर था, प्रजा-कर्ममें दक्ष था[१४]। वह मानो सभी आदि-राजोंके तेज-पुञ्जसे बना था।

---

१. सीमा। २. शब्द-प्रादुर्भावका दूसरा अर्थ होगा "यश फैलानेमें"
३. अपौरुषेय, सत्य।
४. पृथिवीकी सारी धूल, सभी राजाओंका रजोगुण।
५. महान्, बृहस्पति।
६. विशाल, पृथुनामक आदिराज।
७. 'विशाल' से विशाल नामक बोधिसत्त्वका भी बोध होता है।
८. जिसकी युद्ध-यात्रा शुभ थी, युद्धका यात्री; सुयात्र नामक राजा।
९. पण्डित, बुध नामक नक्षत्र।
१०. धवल, अर्जुन नामक महाभारतका पात्र।
११. भयानक, महाभारतका पात्र-विशेष।
१२. कठोर, नलका पिता, पर्वत-विशेष।
१३. अथवा, शूरसेन नामक राजा या देश।
१४. प्रजाओंका काम करनेमें निपुण था; प्रजाओंकी उत्पत्ति करनेमें दक्ष नामक प्रजापति था।

'आदिराज पृथुने पृथ्वीको गौ बनाया था' इस तरह मानो स्पर्धा करते हुए उसने इसे महिषी[1] बना लिया। बड़ोंकी बुद्धि स्वभावतः स्वेच्छाचारिणी और अपनी रुचिके अनुसार चलनेवाली होती है। क्योंकि बिना किसीके उपदेशके शिशु-कालसे ही भक्ति-सुलभ, भुवन-रक्षक, प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाले, संसारका ध्वंस करनेवाले, भगवान् शिवमें उसकी सहज अतिशय और अन्य-देवता-विमुखी भक्ति थी। शिवकी पूजा किये विना वह स्वप्नमें भी भोजन नहीं करता था। अज, अजर, अमर-गुरु, असुर-पुरके रिपु, अपरिमित गणोंके पति, हिमालयकी दुहिताके पति, तथा जिसके चरणोंपर अखिल भुवन नत होते हैं ऐसे पशुपतिकी शरणमें आकर उसने त्रैलोक्यको अन्य देवताओंसे शून्य माना। अनुजीवियोंकी प्रकृति स्वामीके चित्तका ही अनुसरण करती है। इसलिये घर घरमें भगवान् शिवकी पूजा हुई। इसके पुण्य प्रदेशोंमें वे वायु बहते थे, जो होमके कुण्डोंमें पिघलते हुए प्रचुर गुग्गुलकी गंधसे युक्त थे, जो स्नान करानेके दूधके सीकरोंको छींटते थे और जो बेलके पल्लवोंकी मालाओंके पत्तोंको उड़ाते थे। शिवकी पूजाके योग्य उपहारों द्वारा पुरवासियोंने, (राजाके) पैरोंकी सेवासे जीनेवाले सचिवोंने तथा बाहु-बलसे जीते गये और कर देनेको बाध्य किये गये महासामन्तोंने, उसकी सेवा की। उसी प्रकार। संध्याकी पूजाके (योग्य) विशाल-काय वृषभोंसे—जो कैलासकी चोटीके समान धवल थे और जिनके सींग सोनेकी पत्र-लताओंसे अलङ्कृत थे—(शिवके) स्नान करानेके सुवर्ण-निर्मित

१. रानी, भैंस।

कलसोंसे, अर्घ-भाजनोंसे, धूप-पात्रोंसे, फूलदार वस्त्रोंसे, मणिमय दीयटोंपर रखे प्रदीपोंसे, यज्ञोपवीतोंसे और बहुमूल्य रत्नोंसे खचित मुख-कोषोंसे[1], उन लोगोंने उसके मनको सन्तुष्ट किया। रानियोंने भी स्वयं ही पूजाका चावल कूटना आरम्भ कर दिया, देवमन्दिर लीपनेसे उनके कर-किसलय और भी लाल हो गये तथा उनके समस्त परिजन फूलोंके गूथनेमें व्यग्र हुए, इस तरह रानियोंने भी उसकी इच्छाके अनुसार काम किया। और उसी प्रकार। उस परम शैव भूपालने लोगोंसे भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महाशैवके बारेमें सुना, जो पृथिवीपर मानो दक्षका यज्ञ ध्वंस करनेवाला साक्षात् दूसरा भगवान् (शिव) था, और जो विविध विद्याओंके प्रभावसे विख्यात हजारों शिष्योंके समान सद्गुणोंसे मर्त्य-लोकको व्याप्त किये था। शीलकी समानता अदृष्ट व्यक्तिको भी हृदयके निकट ले आती है, इसी लिए तो सुननेके साथ ही उसे दूसरे शिवके समान उस भगवान् भैरवाचार्यके प्रति दूरस्थ होनेपर भी बड़ी भक्ति हो गई और उसने मनरूपी रथसे भी उसे सभी प्रकारसे देखना चाहा।

अनन्तर एक दिन जब अस्ताचल-चुम्बी दिवसका अवसान हो रहा था, अन्तःपुरवर्ती राजाके निकट आकर प्रतिहारीने निवेदन किया—"देव, द्वारपर एक परिव्राजक खड़ा है और कहता है कि वह भैरवाचार्यके वचनसे आया है।" यह सुनकर राजाने सादर कहा—"वह कहाँ है। यहीं ले आओ। उसे भीतर लाओ।" प्रतिहारीने वैसा ही किया। कुछ ही देरमें राजाने परिव्राजकको भीतर आते देखा। वह लम्बा था।

---

१. ये शिव-लिङ्गपर दिये जाते हैं।

उसकी भुजाएँ जाँघ तक लटक रही थीं। भिक्षापर निर्वाह करनेसे क्षीण होनेपर भी अङ्गोंकी स्थूल हड्डियोंसे वह मोटा-सा दिखाई पड़ता था। उसका शिर चौड़ा था। गहरी सिकुड़नोंसे उसका ललाट नीचा-ऊँचा लगता था। आँखोंके नीचेकी गहराई मांस-रहित थी। आँखें मदिराके बिन्दुके समान भूरी और गोल थीं। नाक कुछ टेढ़ी थी। एक कान बहुत लम्बा था। दांतोंकी पँातियाँ कद्दूके बीजके समान सुन्दर और ऊँची थीं। उसका अधर घोड़ेके अधरके समान शिथिल था। लटकती ठुड्डीसे उसका मुख लम्बा लगता था। कंधेपर लटकते काषाय योग-पट्टकसे वैकक्ष बन गया था। उसने एक चिथड़ेका, जिसमें छातीके बीच गिरह बंधी हुई थी और जो गैरिकसे रंग जानेसे लाल था, उत्तरीय बना लिया था, मानो रागको टुकड़े टुकड़े कर छातीके ऊपर बाँधकर उत्तरीय बना लिया हो। वह बाएँ हाथसे योगभारक[1] पकड़े हुए था, जो उसके कंधे पर रखा था। उस (योग-भारक) की जड़ वालोंकी डोरीसे बार बार बांधी जानेसे निश्चल हो गई थी, उसमें मिट्टी शोधनेकी बांसकी एक चालनी बँधी हुई थी, उसके शिखरपर एक कौपीन था, खजूरके पत्तोंके दोनेमें भिक्षा-कपालक था, काठके तीन तख्तोंसे बने त्रिकोणकी तीन लकड़ियोंके भीतर कमण्डल रखा हुआ था, ऊपरमें पादुका रख दी गई थी, और कपड़ेके अञ्चलके मोटे धागोंसे पुस्तकोंका पुलिन्दा बँधा था। वह दाहिने हाथसे बेंतका आसन पकड़े हुए था।

राजाने उस अभ्यागतको उचित आदरसे अनुगृहीत किया

---

१. काठोंसे लगा हुआ झोला, जिसमें योगी आवश्यक वस्तुएँ रखता होगा।

और उसके बैठनेपर पूछा—"भैरवाचार्य कहाँ हैं ?" राजाके आदर-युक्त वचनसे आनन्दित हो परिव्राजकने कहा—"वे नगरके निकट सरस्वती नदीके तटवर्ती वनके शून्य मन्दिरमें हैं।" फिरसे उसने कहा—"आशीर्वादसे भगवान् (भैरवाचार्य) आप भाग्यवान्की पूजा करते हैं।" यह कहकर योग-भारकसे भैरवाचार्यके भेजे चांदीके बने पाँच कमल निकालकर समर्पित किये। ये कमल रत्नोंसे युक्त थे और अन्तःपुरको अतिशय आलोकसे लिप्त कर रहे थे।

शिष्टाचारका अनुसरण करता हुआ राजा प्रियजनका प्रेमोपहार अस्वीकार करनेसे डरता था और ग्रहणसे होनेवाली लघुताको लङ्घन करनेमें असमर्थ था, अतः उसका चित्त दोलायमान होने लगा। कुछ देर ठहरकर अति सुजनताके वशमें होकर उसने उन कमलोंको ले लिया और कहा—"सभी फलोंकी उत्पत्ति-भूमि हमारी यह शिव-भक्ति मनोरथोंके लिए भी दुर्लभ फलोंको उत्पन्न करती है। इसीसे तो भुवन-गुरु भगवान् भैरवाचार्य हमपर प्रसन्न हैं। कल मैं भगवान्के दर्शन करूँगा।" इतना कह उसने परिव्राजकको विसर्जित किया और इस समाचारसे बड़ा आनन्दित हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही उठकर राजा एक घोड़ेपर सवार हुआ। राजाके ऊपर श्वेत आतपत्र लगा था और (दोनों ओर) दो धवल चामर डुलाये जा रहे थे। कुछ ही राज-पुत्रोंके साथ वह भैरवाचार्यको देखने चला, जैसे चन्द्र सूर्यको (देखने जा रहा हो)। कुछ दूर जाकर उसीके दूसरे शिष्यको सामने आते देखा और पूछा—"भगवान् कहाँ हैं ?" उसने कहा—"इस

जीर्ण मातृ-गृहसे उत्तरकी ओर बेलकी बाटिकामें हैं।" उस स्थानपर जाकर वह (घोड़ेसे) उतर गया और बेलकी बाटिकामें घुस गया।

तब कौपीनधारियोंके एक बड़े दलके बीच उसने साक्षात् शिवके समान भगवान् भैरवाचार्यको देखा। वह प्रातःकाल ही स्नानकर चुका था, अष्ट-पुष्पिका दे चुका था और होम कर चुका था। वह भस्म-रेखासे घिरे हुए तथा हरे गोबरसे लिपी भूमिपर बिछाये हुए बघछालेपर बैठा हुआ था। काले कम्बलके प्रावरणके बहाने वह मानो पाताल-प्रवेशकी संभावनासे पातालके अन्धकारमें रहनेका अभ्यास कर रहा था। चमकते हुए बिजलीकी तरह कपिल आत्मतेजसे, मानो नरमांसकी बिक्रीसे खरीदे हुए मनःशिला-पङ्कसे, शिष्यलोकको लिप्तकर रहा था। ऊपर उठाकर बाँधे हुए शिखा-पाशसे, जिसके बँधे हुए एक भागसे रुद्राक्ष और शङ्ख-गुटिकाएँ लटक रही थीं, वह मानो विद्या-मदसे दुर्विनीत हुए आकाश-चारी सिद्धोंको बाँध रहा था। कतिपय केशोंके धवल हो जानेसे वह पचपन वर्षसे अधिक आयुका हो रहा था। खल्वाटताके कारण उसके ललाटपरके बाल क्षीण हो रहे थे। उसके कानोंके भीतरी भाग लोमश थे। उसका ललाट-तट चौड़ा था। ललाटपरके भस्मके तिरछे तिलकसे वह अपने शिरके आधे भागमें बार बार रखे जाते हुए जले गुग्गुलकी गर्मीसे फूटकर निकली हुई हड्डीकी श्वेत रेखाकी शङ्का उत्पन्न कर रहा था। ललाटपरके स्वाभाविक वलि-भङ्गोंसे[1] भौंहोंका मध्य भाग सङ्कोचित होनेपर दोनों भौंहोंके मिलनेसे वह मानो अविच्छिन्न,

१. तरंगित चर्मरेखा, सिकुड़न।

लम्बी, और भूरी भ्रू-रेखा धारण कर रहा था। उसकी आँखोंकी पुतली कुछ कुछ पीली थी, अपाङ्ग लाल थे, मध्य भाग धवल था और उनसे किरणें निकल रही थीं; इन्द्र-धनुषके समान ऐसी अत्यन्त लम्बी आँखोंसे वह मानो चारों ओर विविध वर्णोंसे रंगा एक बड़ा वृत्त बना रहा था और दिशाओंमें श्वेत, पीत, तथा लोहित पताका-ओंसे रंग-बिरंगी शिवकी पूजा-सामग्री बिखेर रहा था। उसकी नाककी नोक गरुड़की चोंचकी नोककी तरह कुब्ज थी। उसके होठके भाग दूर तक विस्तीर्ण होनेके कारण उसके कपोल सिकुड़े हुए थे। दाँत कुछ कुछ बड़े होनेके कारण वह दाँतोंसे निकलते आलोकसे, मानो हृदयमें सदा संनिहित शिव-शिरपरके चन्द्रके प्रकाशसे, दिशा-समूहको धवल कर रहा था। मानो जीभके अग्रभागमें रखी हुई सभी शैव संहिताओंके अत्यन्त भारसे उसका होठ कुछ लटक रहा था। उसके लम्बे कानोंमें स्फटिकके बने दो कुण्डल झूल रहे थे, जान पड़ता था जैसे शुक्र और बृहस्पति (क्रमशः) सुरों और असुरोंको जीतनेकी विद्या सिद्ध करनेकी इच्छासे उसका अनुसरण कर रहे थे। विविध ओषधियोंके अभिमंत्रित सूत्रसे बँधे हुए तथा लोहेके वलयसे युक्त प्रकोष्ठपर[1] वह एक शङ्ख-खण्ड धारण कर रहा था, जान पड़ता था जैसे भगवान् शिवके द्वारा तोड़े गये सूर्यके दाँतोंको[2] भक्तिपूर्वक भूषण बना लिया हो। वह अखिल रसके[3] कूपसे

१. केहुनीके नीचेका भाग।

२. दक्षके यज्ञमें सूर्यने शिवकी निन्दा की, अतः क्रुद्ध हो शिवने मुष्टि-प्रहारसे सूर्यके दाँत तोड़ दिये—शङ्कर।

३. अनुराग, जल।

(रस) निकालनेकी घटी-यन्त्र-मालाके[1] समान रुद्राक्ष-मालाको दाहिने हाथसे घुमा रहा था। वह छातीपर दोलायमान श्मश्रुसे, जिसका अग्रभाग कुछ कुछ भूरा था, अपनी भीतरी रजको मानो झाड़ रहा था। अत्यन्त घने नीले बालोंसे उसकी छाती भरी थी, जो मानो ध्यानमें प्राप्त ज्योतिसे जल गई थी। कुछ कुछ शिथिल त्रिवलियोंसे उसका उदर बँधा (घिरा) हुआ था। उसके नितम्ब परका मांस-पिण्ड बढ़ा हुआ था। श्वेत और पवित्र वस्त्रसे उसका कौपीन ढका था। वह अभिमान-सहित पर्यङ्कबन्ध आसन लगाकर बैठा था और अमृत-फेनके समान श्वेत कान्तिवाला योग-पट्टक घुमाकर इस तरह बाँधे हुए था, जैसे अनेक सफल मन्त्रोंके प्रभाव से आविर्भूत वासुकि उसकी प्रदक्षिणा कर रहा हो। वह लाल कमलके समान सुकुमार तलवाले पाद-युगलके निर्मल नख-मयूखों द्वारा, (पातालसे रत्नोंके) महानिधानको निकालनेकी इच्छासे, धरातलको मानो विदीर्ण कर रहा था। भागीरथी-तीर्थकी यात्रा में उससे परिचय होनेसे आये हुए हंस-मिथुनके समान जलसे प्रक्षालित होनेसे पवित्र और धवल पादुका-युगल उसके चरणों की सेवा कर रहा था। सभी विद्याओंकी सिद्धिमें विघ्न डालने-वाले गणेशको[2] हटानेवाले अंकुशके समान सदा पास रहनेवाली बाँसकी लाठीसे, जिसके ऊपर काले लोहेकी टेढ़ी काँटी गड़ी थी, वह विराजमान था। वह मित-भाषी और मन्द-हासी था। सर्व-उपकारी और नैष्ठिक-ब्रह्मचारी था। अल्प क्रोधी और बड़ा

१. यन्त्रसे चलनेवाले घड़े।

२. गणेश विघ्न डालते हैं और हटाते भी हैं, इसीलिये वे विघ्नराज कह-लाते हैं।

उदार था। महानगरके समान अदीन प्रकृतिसे[1] शोभित था। मेरुके समान वह कल्प-तरुकी पल्लव-राशिकी सुकुमार छायासे[2] युक्त था। कैलासके समान उसने अपने शिरको पशुपतिकी चरण-रजसे पवित्र कर लिया था। शिव-लोकके समान वह माहेश्वर गणोंसे[3] अनुसृत था। समुद्रके समान उसने अपने शरीरको हजारों छोटी-बड़ी नदियों (के जल) से प्रक्षालित किया था। गङ्गाके प्रवाहके समान वह अनेक पुण्य तीर्थोंमें रहनेसे शुचि होगया था। वह धर्मका आश्रय, सत्यका तीर्थ, कुशलका कोश, पवित्रताका नगर, शीलकी शाला, क्षमाका क्षेत्र, विनयका घर, मर्यादाका आवास, धैर्यका आधार, करुणाका आकर, कौतुकका निकेतन, रमणीयताका उपवन, प्रसादका प्रासाद, गौरवका आगार, सुजनताका समाज, सद्भावका उत्पत्ति-स्थान, और कलिका काल था।

दूरसे ही राजाको देखकर भैरवाचार्य इस तरह चलायमान होगया जैसे चन्द्रको देखकर समुद्र। उसके शिष्यगण पहले ही उठ खड़े हुए और (पीछे स्वयं भी) उठकर उसने उसकी अगवानी की। श्रीफलकी भेंट देकर उसने जह्नु ऋषिके कानसे निकलते हुए गङ्गा-प्रवाहकी ध्वनिके समान गम्भीर वाणीसे स्वति शब्दका उच्चारण किया।

राजाने दूरसे झुककर अभिनव प्रणाम किया; उस समय

१. स्वभाव, प्रजा।

२. कान्ति, छाँह।

३. महेश्वरके भक्त, महेश्वरके गण।

वह अपनी आँखसे, जिसकी धवलिमा प्रसन्नताके कारण विस्तीर्ण हो रही थी, मानो ढेरके ढेर श्वेत कमल (राजत कमलोंके) बदलेमें अर्पण कर रहा था; उसके ललाट-फलकपर चूड़ा-मणि झूल रही थी, जिससे किरणें फूट रही थीं, मानो उसका तीसरा नेत्र निकल आनेसे वह शिवके प्रसादको प्रकाशित कर रहा था; कर्ण-पल्लवोंके झुकनेसे मधुकर भाग रहे थे, मानो शिवकी सेवा से उन्मूलित समस्त पापोंसे वह मुक्त हो रहा था। "आइये, यहाँ बैठिये" यह कह आचार्यने अपना बघछाला दिखाया। विनय प्रदर्शित कर राजाने नदीके समान मधुरसमयी तथा प्रसन्न हंसकी बोलीके गद्‌गद स्वरसे मनोज्ञ वाणीको प्रवाहित करते हुए कहा—"भगवन्, आप अन्य (अभिमानी) नृपोंके दोषों से मुझे दोषी नहीं कर सकते। समस्त राजाओंसे अपेक्षित राज-लक्ष्मीके ही शीलका यह अपराध है, अथवा धनका दौरात्म्य[1] है, जिससे गुरु मेरे प्रति इस तरह का आचरण कर रहे हैं। यह व्यक्ति सेवा का पात्र नहीं है। अतिशय क्लेशकी जरूरत नहीं। दूरस्थ होनेपर भी यह व्यक्ति अपने मनोरथ द्वारा आपका शिष्य (हो चुका) है। गुरुका आसन, जो गुरुवत् माननीय है, उल्लंघन-योग्य नहीं। यहाँ आप ही बैठ" इतना कह वह परिजनके लाये वस्त्रपर बैठ गया। भैरवाचार्य भी नृपके अनतिक्रमणीय[2] वचनका प्रीतिपूर्वक अनुसरण करता हुआ पूर्ववत् उसी बघछाले पर बैठ गया।

राज-पुत्रों परिजनों और शिष्योंके बैठनेपर उसने जल-फूल

१. मद, दुष्टता।

२. अतिक्रमण अर्थात् उल्लंघन करने योग्य नहीं, पालन करने योग्य।

आदिसे समुचित सत्कार किया। नृपके माधुर्यने उसका अन्तःकरण हर लिया और वह क्रमपूर्वक चन्द्र-किरणवत् निर्मल तथा चमकती हुई दन्त-प्रभाको, मानो साक्षात् शिव-भक्तिको, दिखाता हुआ बोलने लगा—"हे तात, आपकी अतिनम्रता ही आपके गुणोंके उत्कर्षको बता रही है। आप सकल सम्पत्तिके पात्र हैं। आपका ज्ञान भी आपकी सम्पत्तिके ही अनुरूप है। जन्मसे ही मैंने धनको नहीं देखा। इसीलिए मेरा क्षुद्र शरीर सकल दोषरूपी अग्निके इन्धन-स्वरूप धनके लिए नहीं बेच दिया गया है। मेरे प्राण भिक्षाके अन्नसे रक्षित हैं। कठिनाईसे सीखे गये कुछ अक्षर मेरे पास विद्यमान हैं। पूजनीय भगवान् शिवके चरणोंकी सेवासे उपार्जित कुछ पुण्य-कणिका[1] सन्निहित (मौजूद) है। यहाँ जो कुछ उपयोगके योग्य हो उसे स्वीकार करें। अल्प गुणोंसे भी सज्जनोंका मन उसी तरह बँध जाता है, जैसे बारीक सूतोंसे फूल। और भी। शुद्ध शब्दोंकी तरह विद्वानोंसे सम्मत[2] साधु पुरुष कर्णगोचर होनेपर भी अत्यन्त धीर व्यक्तियोंके मनमें भी घर कर लेते हैं। कुतूहलकी फेन-धवल धाराओंमें बहता हुआ मैं आप कल्याण-राशिके द्वारा आपके गुणोंसे खींच लाया गया।" राजाने उत्तर दिया—"सज्जनोंके शरीर आदिपर कहे बिना भी प्रणयी व्यक्तियोंका स्वामित्व है। आपके दर्शनोंसे मैंने अपरिमित कुशल-राशि उपार्जन कर ली है। इस आगमनसे मैं गुरुके द्वारा स्पृहणीय पदपर पहुँचा दिया गया हूँ।" इस तरह विविध

१. पुण्यका एक छोटा-सा कण।

२. सम्मतका दूसरा अर्थ 'प्रशंसित' होगा।

कथाएँ करता हुआ वह देर तक ठहरकर घर चला गया।

दूसरे दिन भैरवाचार्य भी राजाको देखनेके लिए गया। राजाने अन्तःपुर, परिजन और कोष-सहित अपनेको उसे अर्पण किया। उसने हँसकर कहा—"हे तात, हम वन-वासियोंको विभवसे क्या प्रयोजन? मनस्विता, लताकी भाँति, धनकी गर्मीसे निश्चय ही मुरझा जाती है। जुगनुओंका-सा हमारा यह (शीतल) तेज दूसरोंको ताप देनेवाला नहीं है। आप-सरीखे ही सम्पत्तिके पात्र हैं।" इस तरह कुछ काल ठहरकर वह लौट गया।

परिव्राजकने उसी क्रमसे चाँदीके पाँच पाँच कमल भेंट किये। एक बार श्वेत कपड़ेमें आवृत कुछ लेकर उसने प्रवेश किया और पूर्ववत् बैठ मुहूर्त भर ठहरकर कहा—"हे महाभाग्यशाली, भगवान् (भैरवाचार्य) आपसे कहते हैं कि उनका पातालस्वामी नामक एक ब्राह्मण शिष्य है। उसने ब्रह्मराक्षसके हाथसे अट्टहास नामक एक बड़ी तलवार छीन ली है। यह आपकी भुजाके योग्य है, आप इसे ग्रहण करें।" यह कह उसने कपड़ेके आवरणको हटाकर म्यानसे कृपाण बाहर खींच लिया। वह (कृपाण) शरद्-गगनके समान था, जो पिण्ड[1] बना दिया गया हो। कालिन्दी-प्रवाहके समान था, जिसका जल स्तम्भित हो गया हो। कृष्ण द्वारा कोपित कालिय सर्पके समान था, जो नन्दकको[2] जीतने की इच्छासे कृपाण हो गया हो। प्रलयकालमें आकाशसे गिरे हुए मेघ-खण्डके समान था,

१. ठोस पदार्थ, अभ्र।

२. विष्णुकी तलवार।

जो लोक-विनाशके लिए अपनी धार[1] दिखा रहा था। हिंसाकी हँसीके समान था, जिसके विकट दाँत दिख रहे थे। हरिकी बाहुके समान था, जिसकी मुट्ठी दृढ़ता-पूर्वक बँधी हुई थी। वह मानो सकल भुवनोंके प्राणोंका अपहरण करनेमें समर्थ काल-कूटसे निर्मित हुआ था। मानो कृतान्तके कोपानलसे तपे लोहेसे बना था। अति तीक्ष्णताके कारण पवन-स्पर्शसे भी, मानो क्रोधसे, बज उठता था। मणिमय सभा-तलपर प्रतिबिम्ब पड़नेके बहाने अपनेको भी मानो दो भागोंमें काट रहा था। शत्रुके शिरोंके काटनेमें लगे हुए केशोंके सदृश किरणोंसे उसकी धार दँतुली लगती थी। बिजलीकी चमकके सदृश बार बार फैलती अपनी चञ्चल किरणोंसे आतपको टुकड़े टुकड़े कर वह मानो दिवसको खण्ड खण्ड कर रहा था। वह काल-रात्रिका कटाक्ष-सा, कालका कर्णोत्पल-सा[2], और क्रूरताका ओङ्कार-सा था। वह अहङ्कारका अलङ्कार, कोपका कुल-मित्र, दर्पकी देह, साहसका सहायक, मृत्युका अपत्य, लक्ष्मीका आगमन-मार्ग और कीर्तिका निर्गमन-मार्ग था।

राजाने उसे अपने हाथमें ले लिया और शस्त्र-प्रेमके कारण अपने प्रतिबिम्बके बहाने उसे आलिङ्गन करता हुआ देर तक देखता रहा। और सन्देश दिया—"भगवान् (भैरवाचार्य) से कहियेगा, पर-द्रव्य-ग्रहणकी अवहेलना करनेमें मेरा मन अत्यन्त अभ्यस्त होनेपर भी आपके विषयमें वचन उल्लङ्घन करनेका अपराध नहीं कर सकता।" उसके स्वीकार करनेपर

---

१. वर्षाकी धारा, तलवारकी धार।

२. कानका नीला कमल।

सन्तुष्ट हो परिव्राजकने कहा—"आपकी स्वस्ति हो। जाता हूँ।" इतना कह वह चला गया। स्वभावसे ही वीर-रस -अनुरागी राजाने उस कृपाणको पाकर पृथ्वीको अपनी हथेली-पर स्थित समझा।

अनन्तर कुछ दिनोंके बीतनेपर एक बार भैरवाचार्यने राजासे एकान्तमें अभ्यर्थना-पूर्वक कहा—"हे तात, सज्जनोंका स्वभाव स्वार्थसे पराङ्मुख तथा परोपकारमें दक्ष होता है। आप-सरीखोंके लिए याचकोंका दर्शन महोत्सव है, याचना आराधना है और (याचकों द्वारा) अर्थ-ग्रहण उपकार है। आप सभी लोगोंके मनोरथोंकी भूमि हैं। इसीलिए तो कहता हूँ। सुनिये। कल्पमें विहित काले माल्य वस्त्र और अनुलेपसे महाश्मशानमें महाकाल-हृदयनामक माहात्म्य-युक्त महामन्त्रकी एक करोड़ जपसे पहले ही सेवा कर चुका हूँ। वेताल साधने-पर ही उस (मंत्र) की सिद्धि होगी और सहायकोंके विना वह (सिद्धि) दुष्प्राप्य है। आप इस कामके लिए समर्थ हैं। आपके भार लेनेपर तीन और सहायक हो जायेंगे एक तो वही टीटिभ नामक परिव्राजक, जो हमारा बालमित्र है और जो आपके यहाँ (कभी कभी) उपस्थित होता है; दूसरा पाताल-स्वामी; तीसरा कर्णताल नामक हमारा ही द्राविड़ शिष्य। यदि आप उचित समझें, तो एक रात अट्टहास लेकर दिग्गजकी सूँड़के समान आपकी यह लम्बी बाहु एक दिशाका अर्गल बने।"

उसके इतना कहनेपर, अन्धकारमें प्रवेश कर प्रकाश देखनेवाले व्यक्तिकी भाँति, उपकारका अवसर पाकर, प्रसन्न-

चित्त हो राजाने कहा—"भगवन्, मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ, शिष्य-जनोंके इस सामान्य आदेशसे[1] मैं अपनेको स्वीकृत हुआ मानता हूँ।" राजाके इस वचनसे भैरवाचार्य आनन्दित हुआ और उसने सङ्केत किया—"आगामी कृष्णपक्ष-चतुर्दशीकी रातको इसी वेलामें महाश्मशानके निकटवर्ती उस शून्य मन्दिरमें शस्त्र-सहित आप दीर्घायु हमें देखें।"

अनन्तर कुछ दिनोंके बीतनेपर और कृष्णपक्षकी उस चतुर्दशीके आने पर, शैव विधिसे दीक्षित हो राजा नियमवान् हुआ। उसने अट्टहास नामक तलवारकी पूर्व विधि सम्पादित कर, गन्ध, धूप, माल्य-आदिसे उसकी पूजा की। दिवस परिणत हुआ। दिशाएँ लाल हो गईं, मानो किसीने कर्म-सिद्धिके लिए रक्तकी बलि दी हो। सूर्यकी किरणें इस तरह लटक रही थीं, जैसे रक्तोपहारकी लोभी वेताल-जिह्वाएँ हों। पश्चिम दिशामें पहुँचा हुआ सूर्य मानो नरेन्द्रके अनुरागसे स्वयं दिक्-पालका काम करना चाहता था। वृक्षकी बढ़ती हुई छाया राक्षसीकी तरह दीखती थी। पाताल-वासी दानवोंकी तरह तिमिर-मण्डल विघ्नके लिए उठने लगे। नक्षत्रगण, मानो रौद्र कर्म देखनेकी इच्छासे, आकाशमें इकट्ठे होने लगे। रात गाढ़ी हो गई। लोगोंके सो जानेपर निःशब्द और स्तब्ध निशीथमें अन्तःपुर और परिजनको ठगकर राजा अकेला ही नगरसे निकल गया। उसके बाएँ हाथमें एक छुरेकी मूठ चमक रही थी और दाहिने हाथमें म्यानसे निकाली हुई अट्टहास नामक तलवार थी। तलवारके फैलते हुए प्रभा-पटलसे, मानो

---

१. समानरूपसे सब शिष्योंको दी गई आज्ञा।

नीले रंगके रेशमी वस्त्रसे, देखे जानेके भयसे उसका समूचा शरीर ढका हुआ था। आदेश नहीं पाने पर भी राजलक्ष्मी उसका अनुसरण कर रही थी। परिमलके कारण लगे हुए भ्रमरोंकी श्रेणीके बहाने वह मानो केश पकड़कर कर्म-सिद्धिको अपने पीछे घसीटे जा रहा था। (कुछ देरमें) वह उस स्थान-पर पहुँच गया।

तब टीटिभ, कर्णताल और पातालस्वामी तीनों स्वागत करनेके लिए आये और उन लोगोंने अपनेको निवेदित किया। रात्रि-आक्रमणमें वे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्माके समान कवच पहने हुए थे। वे स्नान किये हुए थे, माला धारण कर रहे थे और विकट वेश बनाये हुए थे। उनके शिरपरके फूलोंके गुच्छोंपर भौंरे मँड़राते हुए गूँज रहे थे, मानो मंत्र पढ़ पढ़कर शिखाएँ बाँधी जा रही थीं। वे शिरपर पगड़ी धारण कर रहे थे, जिसमें ललाटके बीच स्वस्तिका गिरह बँधी हुई थी और जो महामुद्रा[1]-बन्धकी तरह दिखती थी। वे अपने मुखोंसे, जिनके कपोल एक कानके छेदसे लटकते हुए विमल दन्त-पत्रोंकी[2] प्रभाके लेपसे धवल हो रहे थे, मानो निशा-चरोंको क्षीण करनेकी इच्छासे रातके अन्धकारको पी रहे थे। दूसरे कानमें लटकते हुए रत्न-कुण्डलोंकी निर्मल प्रभासे, मानो मन्त्र-शोधित गोरोचनासे, वे लिप्त हो रहे थे। वे तेज तलवारें चमका रहे थे, जिनमें उनके प्रतिबिम्ब पड़नेसे वे मानो कर्म-सिद्धिके लिए पुरुषोंकी बलि दे रहे थे। तेज तलवारोंके किरण-

१. मुहर।

२. कानका एक आभूषण।

समूहसे (रात्रिके) अन्धकारको विभक्त करके वे मानो अपनी अपनी दिशाकी रक्षाके लिए रातको तीन भागोंमें काट रहे थे। अपने चर्म-फलकोंसे, जो अर्ध-चन्द्रसे युक्त थे, चाँदीके विन्दु ही जिनके तरल तारागण थे और जो तलवारोंकी तेज धारसे काटी गई रातके टुकड़ोंके समान थे, वे मानो असमयमें ही एक दूसरी रात बना रहे थे। वे गाढ़े नये वस्त्रोंको सोनेकी करधनियोंसे कसे हुए थे और छुरोंको (कमरमें) बाँधे हुए थे।

राजाने तीनोंसे पूछा—"यहाँ कौन कौन है ?" उन तीनोंने अपना अपना नाम कहा। उन लोगोंसे अनुसृत हो वह निःशब्द, गम्भीर और भीषण साधन-भूमिमें गया। वहाँ सभी उपकरण तैयार थे। पूजा-प्रदीपके आलोकसे गुग्गुल और धूपका धुआँ जर्जरित हो दिशाओंकी शरण ले रहा था, मानो छींटी जा रही रक्षाकी सरसोंसे अपने अन्धकार (रूपी शरीर) के अध-जला होनेके कारण रात्रि भाग रही थी।

उस साधन-भूमिमें राजाने कुमुदकी धूलके समान धवल भस्मसे रचित बड़े घेरेके बीचमें स्थित भैरवाचार्यको देखा, जिसके तेजका प्रसार अत्यन्त दीप्त था; वह मानो बड़ी परिधिसे घिरा हुआ शरत्कालीन सूर्य था या मानो मथे जाते हुए क्षीर-सागरके आवर्तके मध्यमें स्थित मन्दर था। लाल चन्दनसे लिपे, लाल माला, लाला वस्त्र और लाल अलङ्कारसे युक्त, चित पड़े हुए शवकी छातीपर बैठकर उसके मुखरूपी कुहरमें उत्पन्न अग्निमें भैरवाचार्यने, जिसकी पगड़ी काली थी, अङ्गराग काला था, हाथका सूत काला था, और वस्त्र काला था, होम आरम्भ कर दिया था। काले तिलोंकी आहुतिके बहाने मानो विद्याधर होने-की तृष्णासे अपने मानुष निर्माण (मानव शरीर) के कारण-

स्वरूप कलुषित परमाणुओंको नष्ट कर रहा था। आहुति देते समय हाथके नखोंसे फैलती हुई किरणोंसे वह मानो प्रेत-मुखके स्पर्शसे दूषित अग्निको धो रहा था। (होमके) धुएँसे आँखोंके लाल होनेसे वह मानो अग्निमें लोहूकी आहुति गिरा रहा था। जप करते समय मुखके कुछ कुछ खुले हुए अधर-पुटसे उजले दाँतोंके शिखर प्रकट हो रहे थे, मानो मंत्रके मूर्त्त अक्षरोंकी पंक्ति दिखाई पड़ रही थी। होमके श्रमसे निकले हुए पसीनेके जलमें समीपवर्ती दीपोंका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, जान पड़ता था जैसे सिद्धि प्राप्त करनेके लिए वह अपने सभी अवयवोंको जला रहा हो। उसके कंधेपर कई सूतोंका यज्ञोपवीत लटक रहा था, मानो वह गुण-युक्त विद्याराज नामक मन्त्रसे परिगृहीत था। निकट जाकर राजाने नमस्कार किया। उससे अभिनन्दित हो राजाने अपना काम शुरू किया।

तब पातालस्वामीने पूर्व दिशा अङ्गीकार की, कर्णतालने उत्तर, परिव्राजकने पश्चिम और राजाने दक्षिण दिशाको अलङ्कृत किया।

दिशाओंके इन रक्षकोंके इस प्रकार स्थान ग्रहण करनेपर, उनके भुजारूपी पिंजड़ेमें प्रविष्ट हो भैरवाचार्य निश्शङ्क भावसे भयानक कर्म करने लगा। बहुत देर तक कोलाहल कर विघ्नकारी राक्षस निष्फल-प्रयत्न हो शान्त हो गये। अर्ध-रातका समय ढलनेपर घेरेसे कुछ ही दूर उत्तरकी ओर प्रलय-कालके महावराहकी दंष्ट्रओंका-सा विवर दिखाती हुई पृथिवी अकस्मात् फट गई। सहसा ही उस विवरसे कुवलय-दलके सदृश एक श्यामल पुरुष ऊपर निकल आया। वह मानो दिग्गजके द्वारा

फेका गया, हाथी बाँधनेका लोह-स्तम्भ था। उसका चौड़ा कन्धा महावराहका-सा मोटा था। वह भू-गर्भसे निकले नरक नामक राक्षसके समान था। पाताल फोड़कर उठे हुए बलि नामक दानवके समान था। चिकने, नीले, घने, और कुटिल कुन्तल से सुन्दर दीखनेवाले मस्तकपर मालती फूलोंकी माला चमक रही थी, मानो इन्द्रनीलके प्रासादपर रत्न-प्रदीप जल रहे थे। उसका स्वर गद्गद था और आँखमें स्वाभाविक लाली थी, वह मानो यौवन-मदसे मत्त था। उसके गलेमें एक माला झूल रही थी। करोंके सम्पुटमें मली हुई मिट्टीसे वह दिग्गजके कुंभके समान अपने कंधोंको बार बार पंकिल कर रहा था। उसके शरीरपर जहाँ तहाँ गाढ़े चन्दनके बिन्दु थे, जान पड़ता था जैसे शरत्कालीन आकाशका एक भाग अत्यन्त श्वेत जलधरोंसे रंगबिरंगा हो गया हो। केतकीके भीतरी पत्तेके समान श्वेत चण्डातकके[1] ऊपर (के बन्धनसे) उसका उदर क्षीण हो गया था। कटि बाँधनेके बाद विलासपूर्वक फेका हुआ धवल और लम्बा कटि-वस्त्र पृथिवीपर लटक रहा था, जान पड़ता था जैसे शेषनाग उसे पीछेसे धारण कर रहा हो। उसकी जाँघें स्थिर और स्थूल थीं। वह मानो पृथ्वीके फटनेके भयसे धीरे धीरे पैर रख रहा था। वह अतिशय गर्वसे भारी शरीरको पहाड़की तरह कठिनाईसे ढो रहा था। अभिमानपूर्वक बार बार छातीपर वाम भुजाको द्विगुण कर, दक्षिण भुजाको तिरछा उठाकर, और जङ्घाको झुकाकर वह भुजाओंके प्रचण्ड आघातकी टंकारसे मानो कर्ममें

१. एक तरहका पहनावा।

विघ्न डालनेके लिए निर्घात[1] उत्पन्न कर रहा था। (इस प्रकार) वह मानो जीव-लोकको एक इन्द्रिय अर्थात् कानसे विहीन कर रहा था। उस पुरुषने हँसकर नरसिंहके निनादके समान भयानक वाणीमें कहा—"ऐ विद्याधरीकी कामना करनेवाले, क्या यह विद्याका गर्व है अथवा सहायकोंका अभिमान है, जो इस व्यक्तिको बलि दिये विना ही मूर्खकी भाँति सिद्धिकी अभिलाषा करते हो? तुम्हारी यह कैसी दुर्बुद्धि है? मेरे ही नामसे जिस देशका नाम पड़ा है उस देशका मैं अधिपति हूँ, श्रीकण्ठ नामक नाग हूँ, क्या इतने समय तक यह बात तुम्हारे कानोंमें नहीं पड़ी? मेरे नहीं चाहने पर ग्रहोंकी भी क्या शक्ति है कि वे गगनमें भ्रमण करें। यह राजा भी अनाथ और बेचारा है, जो तुम्हारे जैसे अधम शैवोंके द्वारा सहायक बनाया गया। अब इस दुर्नरेन्द्रके साथ इस दुर्व्यवहारका फल भोगो।" इतना कह उसने सामने दौड़कर आये हुए टीटिभ आदि तीनोंको प्रकोष्ठके निष्ठुर प्रहारोंसे कवच और कृपाण सहित गिरा दिया।

अभूतपूर्व आक्षेप (निन्दा) सुननेसे शस्त्र-व्रण नहीं रहने पर भी राजाके अवयव क्रोधसे निकले पसीनेके बहाने मानो अनेक समरोंमें पिये गये असि-धारा-जलको उगल रहे थे और रोमाञ्चके बहाने मानो शत शत शल्योंको निकालकर अपनेको युद्धके लिए हलका कर रहे थे। अट्टहास, जिसमें तारागण प्रतिबिम्बित हो रहे थे, मानो धवल दन्त-पंक्तियोंको स्पष्ट दिखाते हुए, अवज्ञा सहित हँस रहा था। ऐसे अवयवों और अट्टहाससे उसके साहसकी घोषणा की जा रही थी। कमर कसनेमें लीला-

[1] तूफान, आकाशमें टकराते हुए वायुओंका शब्द

पूर्वक हाथ घुमाये जानेपर नखोंके किरण-चक्रवालसे, मानो नाग-दमनके लिए मन्त्रोंसे मण्डल (घेरा) बनानेके बन्धनसे, (नागके) भाग जानेकी आशङ्कासे दशों दिशाओंको बाँधते हुए राजाने अवज्ञा-सहित कहा—"अरे भुजङ्ग, अरे काक, मुझ राज-हंसके रहते बलि माँगनेमें लाज नहीं लगती ? अथवा इन कठोर वचनोंसे क्या ? वीर्य भुजामें रहता है न कि वचनमें। शस्त्र ग्रहण करो। तुम रह नहीं सकते। जिन्होंने शस्त्र नहीं ग्रहण किया, उनपर प्रहार करना मेरी भुजाने सीखा नहीं।" नागने और भी अनादरपूर्वक कहा—"आओ, शस्त्रसे क्या ? भुजाओंसे ही तुम्हारा दर्प चूर्ण करता हूँ। इतना कह उसने ताल ठोका। राजाने भी निश्शस्त्रको युद्धमें शस्त्रसे जीतनेमें लज्जित हो, चर्म-फलक-सहित अट्टहासको छोड़कर अर्धोरुकके ऊपर बाहु-युद्धके लिए कमर कसी। दोनों युद्ध करने लगे। शिला-स्तम्भके समान बाहु-दण्डोंसे एक दूसरेपर प्रहार करतेहुए दोनोंने संसारको मानो शब्दमय कर दिया। और उन निष्ठुर प्रहारोंसे फुटी हुई भुजाओं-के रुधिर-शीकरसे दोनों सिक्त हो गये। कुछ ही देरमें राजाने उस भुजङ्गको भू-तलपर गिरा दिया और केश पकड़कर शिर काटनेके लिए अट्टहास निकाला। किन्तु उसकी वैकक्षमालाके बीच राजाने यज्ञोपवीत देखा और शस्त्र-व्यापार बन्द करके कहा—"दुर्विनीत, दुर्नय-निर्वाहके लिए[1] तुम्हें यह बीज प्राप्त है, जिससे निश्शङ्क हो तुम चपलताओंका आचरण कर रहे हो।" यह कह उसे छोड़ दिया। अनन्तर सहसा ही उसने अत्यधिक

---

१. दुष्कर्म-सम्पादनके लिए, दुष्कर्मके परिणामसे तुम्हारी रक्षा करने-के लिए।

ज्योत्स्ना देखी। शरत्कालमें विकसित होते कमलोंकी-सी घ्राणको लिप्त करनेवाली सुगंधि सूँघी। तुरन्त ही नूपुरोंका शब्द सुना। और शब्दका अनुसरण करनेमें दृष्टिको प्रेरित किया।

अनन्तर उसने करतलपर स्थित अट्टहासके मध्यमें एक स्त्रीको देखा, जो नीले बादलके भीतर बिजलीकी तरह चमक रही थी। वह अपनी प्रभासे मानो रात्रिको पी रही थी। उसके हाथमें एक लाल कमल था। वह (अपने पैरोंको) कोमल अंगुलियोंकी लाल आभा-ओंको, मानो चरणोंमें लगी हुई समुद्र-तटवर्ती बाल प्रवाल-लता-ओंको, (बाहर) खींच रही थी। हाथका कमल कहीं बन्द न हो जाय, इस आशङ्कासे वह निर्मल चरण-नखोंके बहाने मानो चन्द्र-मण्डल-को टुकड़े टुकड़े कर धारण कर रही थी। उसके पाँवोंपर नूपुर पड़े हुए थे, जान पड़ता था जैसे वह सघन जंजीरोंके बन्धनसे भाग कर चली आई हो। जो भाँति भाँतिके फूलों और सैकड़ों पक्षियों (के चिन्हों) से सुशोभित एवं अत्यन्त स्वच्छ था और वायुके वेगसे जिसमें तनुतर तरंगें उठ रही थीं, ऐसे वस्त्रके भीतरसे, मानो सागरके जलमें से, वह बाहर निकल रही थी[1]। समुद्रसे जन्म होनेके प्रेमसे त्रिवलिके बहाने मानो त्रिपथगा उसके मध्यभागका आलिङ्गन कर रही थी। उसके स्तन-मण्डल अति उन्नत थे, मानो दिशाके दिग्गजके कुम्भ-स्थल दिख रहे थे। उसके वक्षःस्थल पर शरत्कालीन ताराओंके सदृश एक उज्ज्वल हार था, मानो मत्त ऐरावतकी सूँडसे निकले शीकरोंकी (बनी हुई) माला शोभती थी। मन्द मन्द निश्वासों द्वारा दोलायित हार-किरणोंसे, मानो धवल चामरोंसे, वह बीजित[2]

१. बाहर प्रकट हो रही थी। २. व्यजन डुलाया जाना।

हो रही थी। उसके हाथ स्वभावसे ही लाल थे, मानो मदान्ध गन्ध-हस्तीके कुम्भोंके रगड़नेसे उनमें सिन्दूर लग गया था। शिवके शेखरपरके चन्द्रमाके द्वितीय खण्डके समान कुण्डलाकार ज्योत्स्ना-वर्षी दन्तपत्रसे[1] वह विभूषित थी। कानमें लगे अशोक-किसलयसे, मानो कौस्तुभ मणिके किरण-पुञ्जसे, वह अलंकृत थी। हाथीके मद-जलसे रचित महान् (मण्डलाकार एवं श्यामल) तिलकसे, मानो अदृश्य छत्रके छाया-मण्डलसे, उसका ललाट अशून्य था। पाद-तलसे सीमन्त तक चाँदनीके समान श्वेत चन्दनके लेपसे, मानो प्राचीन राजाओंके (उज्ज्वल) यशसे, वह धवल हो गई थी। धरणि-तल चुम्बिनी कण्ठ-कुसुम-मालाओं से, मानो सागरमें आश्रय पानेवाली सरिताओंसे, वह अधिष्ठित थी। मृणाल-सदृश कोमल अवयव बिना बोले ही उसकी कमलोत्पत्तिकी घोषणा कर रहे थे।

ऐसी स्त्रीको देखकर अचकित हो उसने पूछा—"भद्रे, आप कौन हैं? अथवा आप किसलिए दृष्टि-पथपर आई हैं?" स्त्री-जन-विरुद्ध गर्वसे उसे मानो पराजित करती हुई वह बोली—"वीर, तुम्हें विदित हो कि मैं नारायणकी उरःस्थलीमें स्वेच्छा-विहार करनेवाली हरिणी हूँ। पृथु, भरत, भगीरथ नामक प्राचीन राजाओंकी वंश-पताका हूँ। वीरोंके भुजारूपी विजय-स्तम्भपरकी विलास-पुत्तलिका हूँ। युद्धमें रक्त-नदीकी तरंगोंमें क्रीड़ा करनेकी अभिलाषासे दुर्ललित हुई राजहंसी हूँ। राजाओंके श्वेत आतपत्रोंके वनकी मयूरी हूँ। अति तीक्ष्ण शस्त्रोंके धारारूपी वनमें विलासपूर्वक भ्रमण करनेवाली सिंही हूँ। तलवारोंके

१. हाथी दाँतका बना कानका आभूषण।

धाराऋपी जलकी कमलिनी हूँ। लक्ष्मी हूँ। तुम्हारे इस शौर्य-रससे मुग्ध हूँ। माँगो। तुम्हें अभिलषित वर दूँगी।"

वीरोंके लिए परोपकार पुनरुक्त नहीं होता अर्थात् परोपकार करते वे नहीं थकते। इसीलिए तो उसे प्रणाम कर स्वार्थ-विमुख राजाने भैरवाचार्यकी सिद्धि माँगी। लक्ष्मीका हृदय बहुत प्रसन्न हुआ और उसने विस्फारित नेत्रसे, जैसे ऊपर पर्यस्त क्षीर-सागरसे, भूपालको अभिषिक्त करते हुए कहा—"एवमस्तु" और फिरसे कहा—"इस महानुभावता तथा पूजनीय भगवान् शिवकी असाधारण भक्तिके कारण आप सूर्य (-वंश) और चन्द्र (-वंश) की तरह पृथ्वीपर एक तीसरे अविच्छिन्न महान् राजवंशके प्रवर्तक होंगे। उस वंशका अभ्युदय दिन दिन बढ़ता रहेगा और उसमें प्रायः पवित्र, सुभग, सच्चे, त्यागी और धीर पुरुष-श्रेष्ठ उत्पन्न होंगे। उसमें हरिश्चन्द्रके समान सभी द्वीपोंके भोक्ता तथा द्वितीय मांधाताके समान त्रिभुवनविजयके इच्छुक हर्ष नामक चक्रवर्ती राजा जन्म लेंगे। यह हाथ भी कमल छोड़कर उनका ही चामर ग्रहण करेगा।" इतना कहकर वह अदृश्य हो गई।

यह सुनकर राजा हृदयसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ। भैरवाचार्य भी देवीके इस वचनसे तथा कर्मके सम्यक् रूपसे सम्पादित होनेसे उसी समय कुन्तल, किरीट, कुण्डल, हार, केयूर, मेखला, मुद्गर और खड्ग प्राप्त कर विद्याधर हो गया और कहने लगा—"हे राजन्, दुर्बल चित्तवाले आलसी व्यक्तियोंके मनोरथ दूर-व्यापी नहीं होते, किन्तु सज्जनोंके उपकार स्वभावसे ही दूर-व्यापी होते हैं। आपको छोड़कर कौन दूसरा व्यक्ति स्वप्नमें भी असम्भावित यह दक्षिणा देनेमें समर्थ है? सम्पत्तिका एक

छोटा कण भी पाकर लघु प्रकृतिका मनुष्य तुलाकी भाँति ऊपर उठ जाता है। आपके गुणोंसे उपकृत होकर तथा आपसे ही अपना लाभ पाकर यह मुझ मूढ़-हृदयकी निर्लज्जता है कि मैं (भविष्यमें आपके) कार्य-लेशके सम्पादनमें जिस किसी तरह लगकर अपनेको (आपसे) स्मरण कराना चाहता हूं।" किन्तु धीरोंका गम्भीर हृदय प्रत्युपकारके लिए दुष्प्रवेश ही होता है। इसीलिए तो राजाने उत्तर दिया—"आपकी सिद्धिसे ही मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। आप मान्य अब यथेच्छित स्थानको चले जायँ।"

राजा द्वारा उस प्रकार कहे जाने पर जानेको इच्छुक (भैरवाचार्य) ने टीटिभ आदिका खूब दृढ़तापूर्वक आलिङ्गन किया और तुषार-शीकर-स्रावी कमल-वनके सदृश सजल नयनसे राजाको देखते हुए पुनः कहा—"हे तात, यदि कहूँ कि मैं जाता हूँ तो यह स्नेहके अनुरूप नहीं। ये प्राण आपके हैं, यह पुनरुक्त है। यह क्षुद्र शरीर आप ग्रहण करें, यह वस्तुको अलग करना होगा[1]। मुझे तिल तिल कर आपने खरीद लिया है, यह (आपके महान्) उपकारके अनुरूप नहीं। आप मेरे बान्धव हैं, यह मानो (हम दोनोंके बीच) दूरी खड़ा करना है। आपमें मेरा हृदय स्थित है, यह प्रत्यक्ष नहीं। आपसे विरह उत्पन्न करनेवाली मेरी यह सिद्धि कष्ट-दायक है, यह विश्वास करने योग्य नहीं। आपका उपकार अकारण है, यह अनुवाद है। आप मुझे स्मरण रखें, यह आज्ञा है। कृतघ्नोंके बारेमें बातचीत करते

१. दोनों अभिन्न हैं, अतः ऐसा कहना एकताका अभाव या भेद दिखाना होगा।

समय और असज्जनोंकी कथा कहते समय,स्वार्थसाधनमें निष्ठुर इस व्यक्तिको सभी प्रकारसे स्मरण करेंगे।" इतना कह, वेगके कारण टूटे हुए हारसे निकले हुए मोतियोंसे ताराओंको ताड़ित करता हुआ वह आकाशमें उड़ गया और ग्रहोंको सीमन्त-जैसा विभक्त करता हुआ सिद्धिके योग्य धामपर चला गया। श्रीकण्ठने भी कहा—"हे राजन्, पराक्रमसे क्रीत इस व्यक्तिको, जिसे आपने विनय सिखाई है, कर्त्तव्यके आदेशसे अनुगृहीत किया करेंगे।" राजाके अनुमोदन करने पर वह फिर उसी भू-विवरमें घुस गया।

रात प्रायः क्षीण हो गई थी। जंगली वायु बहने लगा था। वह खिलती कमलिनियोंके निश्वाससे सुगन्धित था। वह तुषार-शीकरसे युक्त था, मानो वनदेवताके कुचोंपरके वस्त्र हटानेके परिहासमें पसीनेसे तर हो गया था। वह अपने परिमलसे मधुकरोंको आकृष्ट कर रहा था। कुमुदोंके लिए निद्रा ला रहा था। निशाके अवसानसे जड़ होगया था। हिम-कणोंसे युक्त था। रात्रि, मानो विरहसे विधुर चक्रवाकोंके निश्वाससे संतापित होकर, पश्चिम समुद्रमें उतर रही थी। कमलिनियाँ, मानो साक्षात् आई हुई लक्ष्मीके दर्शन करनेको उत्सुक होकर, उन्मीलित हो रही थीं। पक्षी नींदसे उठ रहे थे। कानन, जहाँ मृदु-पवनसे लताएँ नचाई जा रही थीं, फूलोंके समान तुहिन-कणोंको बरसा रहा था। मुकुलित होते कुमुद, जिनके भीतर गूँजते भौरे बन्द थे, इस तरह बजने लगे, जैसे कमलकी, लक्ष्मीको जगानेवाले मङ्गल-शङ्ख हों। ताराएँ, मानो रात्रिरूपी लताकी कलिकाएँ, पश्चिम दिशामें एकत्र हो रही थीं, जैसे नींदसे उठते हुए रविरथ-तुरगोंके निश्वासों द्वारा भगाई जा रही हों। मन्दराचलकी चोटीपर

स्थित सप्तर्षि-मण्डल धूसर हो गया, जैसे मन्द अनिलसे प्रकम्पित कल्प-लताओंके फूलोंकी धूलसे लिप्त हो गया हो। तारामय मृग[1] नीचे हट गया, जैसे ऐरावतका अङ्कुश गिर गया हो।

तब टीटिभ आदि तीनोंको लेकर राजाने नाग-युद्धके सम्पर्कसे मलिन हुए अङ्गोंको वन-वापीके निर्मल जलमें धोकर नगरमें प्रवेश किया। दूसरे दिन अपने शरीरके-से स्नान, भोजन और आच्छादनसे उन्हें प्रसन्न किया।

कतिपय दिवसोंके बीतनेपर राजाके मना करनेपर भी परिव्राजक (टीटिभ) वन चला गया। पातालस्वामी और कर्णताल राजाकी शूरतासे अनुरक्त हो उसीकी सेवा करने लगे। उन्हें मनोरथसे अधिक सम्पत्ति दी गई। वे सुभट-मण्डलीके मध्य तलवार खींच सकते थे और समरमें प्रधान नियुक्त होते थे। कथाके अवसरपर बीच बीचमें आदेश पाकर वे भैरवाचार्यके विचित्र चरित और अपने शैशवके वृत्तान्त कहते थे। राजाके ही साथ उन दोनोंने वृद्धावस्था प्राप्त की।

श्री बाणभट्ट-कृत हर्षचरितमें राजवंश-वर्णन नामक तृतीय उच्छ्वास समाप्त।

१. मृगशीर्ष; तीन ताराओंका समूह, जो अश्वके आकारका होता है।

चतुर्थ उच्छ्वास

महान् (व्यक्ति) स्वप्नमें भी योगकी[1] इच्छा नहीं करते और न कर-ग्रहण[2] ही करते, नाम (के प्रताप) से ही वे पृथिवी के पति हो जाते हैं । ॥ १ ॥

जिस प्रकार गणेशके विशाल मुखमें एक ही बड़ा दाँत रहता है, उसी प्रकार विपुल नृप-वंशमें सकल भूभृतोंको[3] कँपानेवाले पृथुके समान एक ही (प्रतापी राजा) उत्पन्न होता है । ॥ २ ॥

अनन्तर उस पुष्पभूतिसे एक राजवंश चला । मानो विष्णु (की नाभि) से एक कमल निकला, जिसके कोषको[4] द्विज-वरने[5] स्वेच्छासे ग्रहण किया । मानो रत्नाकरसे रत्न-सञ्चय निकला, जिसके आगे लक्ष्मी थी । मानो उदय-स्थानसे ग्रह-गण निकले, जिनमें गुरु, बुध, कवि, कलावान् , तेजस्वी और भूनन्दन थे[6] । मानो सगरके प्रभावसे सागर निकला, जो महान्

१. कूटनीति, उद्यम ।

२. दण्ड-ग्रहण, पाणि-ग्रहण ।

३. राजा, पर्वत ।

४. कमलका कोष, धन ।

५. ब्रह्मा, ब्राह्मण ।

६. ग्रह-गणके पक्षमें-बृहस्पति, बुध, शुक्र, चन्द्र, सूर्य, मङ्गल । राज-वंशके पक्षमें—गुरु, पंडित, कवि, कलावान् , तेजस्वी, राजा ।

भार वहन करनेके योग्य था। मानो शूरसे हरि-वंश निकला, जो दुर्जय बल[1]से युक्त था। उस वंशसे राजाओंकी उत्पत्ति हुई। मानो कृतयुगके मुखसे प्रजाओंकी सृष्टि हुई, जो धर्मके नष्ट नहीं होनेसे पवित्र थीं। मानो सूर्यसे किरणें निकलीं, जिन्होंने अपने प्रतापसे भुवनको आक्रान्त किया। मानो श्रेष्ठ भूभृत्से पर्वतोंकी उत्पत्ति हुई, जो अपने विग्रहसे[2] दिशाओंमें व्याप्त थे। मानो ब्रह्माके हाथसे दिग्गज उत्पन्न हुए, जो पृथिवी धारण करनेमें समर्थ थे। मानो वर्षा-ऋतुसे जलधर उत्पन्न हुए, जो समुद्र पीनेको[3] उद्यत थे। मानो नन्दन वनसे कल्पवृक्ष उत्पन्न हुए, जो इच्छानुसार फल देते थे। मानो विष्णुसे भाँति भाँतिके विश्वरूप उत्पन्न हुए, जो सभी भूतोंके आश्रय थे।

उन लोगोंके इस प्रकार उत्पन्न होनेपर काल-क्रमसे प्रभाकरवर्धन नामक राजाधिराज, जिसका दूसरा विख्यात नाम प्रतापशील था, उत्पन्न हुआ। वह हूणरूपी हरिणके लिए सिंह था, सिन्धुराज के लिए ज्वर था, गुर्जरके लिए प्रजागर था[4], गान्धार-राजरूपी गन्ध-हस्ती के लिए कूट-पाकल[5] था, लाटोंकी निपुणताका चोर था, और मालवकी लक्ष्मी-लताके लिए

१. दुर्जय विष्णुका भी एक नाम है और बलसे बलरामका भी बोध होता है।

२. पर्वतोंके पक्षमें—शरीर, अवयव; राजाओंके पक्षमें—सेना।

३. 'पातुम्'का दूसरा अर्थ है 'रक्षा करनेको' जो राजाओंके पक्षमें लागू होता है।

४. गुजरात (—निवासियों) को नींद नहीं होने देता था।

५. हाथीका ज्वर-विशेष।

कुठार था। अभिषेकके ही समय उसने राज्य-अङ्गोंमें[1] रहनेवाले धनका त्याग किया, जैसे शरीरका मल हो। जब कोई दूसरा भी कातरोंको प्रिय लगनेवाले जीवनको युद्ध-मुखमें तृणकी तरह धारण करता था, तब वह लज्जित हो जाता था। रणभूमिमें अपने हाथकी धुली तलवारमें पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बरूपी सहायकके कारण वह पीड़ित होता था। युद्धमें शत्रुओंके आगे अपने धनुषके झुकनेसे भी वह अभिमानी अपने मनमें खिन्न होता था। मानो अन्दरके अपरिमित शत्रुरूपी काँटियोंको ठोककर उसने राज-लक्ष्मीको निश्चल कर रखा था। सभी दिशाओंमें नदी-तटों, गर्तों, शाखाओं सहित वृक्षों, तृण-समूहों, वल्मीकों, पहाड़ों और जङ्गलोंको समतल कर सेनाके चलनेके लिए (बनाये गये) दीर्घ मार्गोंसे उसने भृत्योंके उपयोगके लिए मानो पृथिवीको कई टुकड़ोंमें विभक्त कर दिया। उसकी युद्ध-अभिलाषा पूरी न होनेसे सकल शत्रुओंको दूर करनेवाला उसका आत्मीय प्रताप भी परकीयकी तरह उसे संतापित करता था। (युद्धमें) मरे हुए शत्रु-सामन्तोंकी स्त्रियोंमें उसका प्रताप पाँच महाभूतोंका बना हुआ मूर्त-सा दिखाई पड़ता था, यह प्रताप उनके हृदयोंमें अग्निमय था, लोचन-पुटोंमें जलमय था, निःश्वासोंमें मारुतमय था, (धरती पर लोटनेके कारण) अङ्गोंमें क्षितिमय था और शून्यतामें आकाशमय था। समीपवर्ती भृत्य-रत्नोंमें उसकी लक्ष्मी तुल्य-

१, राज्यके अङ्ग सात हैं—स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, बल। अभिषेकके समय धन दान किया जाता है।

रूपसे प्रतिबिम्बित-सी दीखती थी। प्रतापरूपी अग्निसे उसे भूति[1] प्राप्त हुई। शूरतारूपी गर्मीसे उसे सिद्धि[2] मिली। असि-धारारूपी जलसे उसकी वंश[3]-वृद्धि हुई। शस्त्र-व्रणों (घावों) के मुखोंसे उसके पौरुषकी घोषणा हुई। धनुषकी प्रत्यञ्चाके किणसे[4] उसने (विजित लोगोंसे) कर ग्रहण किया[5]। उसने वैरको उपहार, विग्रहको अनुग्रह, समर-आगमनको महोत्सव, शत्रुको निधि-दर्शन, अरि-बाहुल्यको अभ्युदय, युद्धके आह्वानको वरदान, आकस्मिक आक्रमणको भाग्य-वृद्धि, और शस्त्र-प्रहारोंको सम्पत्ति-प्रहार समझा। उसके राज्यमें (यज्ञके) यूप सटे सटे थे, मानो कृतयुगके अङ्कुर उग आये थे। यज्ञका धुआं दिशाओंमें फैल रहा था, मानो कलियुग भाग रहा था। देवालय सुधासे[6] लिप्त थे, मानो स्वर्ग (पृथिवीपर) उतर आया था। मन्दिरोंके शिखरोंपर धवल ध्वजाएँ उड़ रही थीं, मानो धर्मके पल्लव हिल रहे थे। बाहर सभा-मण्डप, सत्र-मण्डप[7], प्रपा-मण्डप और प्राग्वंस-मण्डप[8] बनाये गये थे, मानो ग्रामोंने उन्हें प्रसव किया था। सम्पत्तिके सभी उपकरण काञ्चनके

१. सम्पत्ति, भस्म।

२. सफलता, अन्नका पाक।

३. कुल, बाँस।

४. प्रत्यञ्चा पकड़नेसे हाथका जो हिस्सा कड़ा और काला हो जाता है।

५. अथवा धनुषकी प्रत्यञ्चाके किणने उसके हाथको ग्रहण कर लिया।

६. चूना, अमृत।

७. सदावर्त।

८. यज्ञ-स्थानकी पर्णशाला।

बने थे, मानो मेरुपर्वत[1] फट पड़ा था। द्विजोंको अर्थ-कलश दिये जाते थे, मानो उनका सौभाग्य फलित हो रहा था।

उसकी यशोवती (या यशोमती) नामकी महारानी थी। वह शङ्करकी पत्नीके समान जन्मान्तरमें भी पतिव्रता थी। वह विष्णुकी लक्ष्मीके समान हृदय-ग्राहिणी थी। कलावान्‌की रोहिणीके समान उसकी तारकाएँ[2] चमकीली थीं। वह प्रजापतिकी बुद्धिके समान सभी लोगोंकी जननी थी। वह समुद्रकी (पत्नी) गङ्गाके समान महाभूभृत्‌के कुलमें उत्पन्न हुई थी। राजहंसकी हंसीके समान मानसका[4] अनुसरण करनेमें चतुर थी। धर्म-त्रयीके[5] समान उसके चरणोंकी[6] सभी लोग पूजा करते थे। महामुनिकी (पत्नी) अरुन्धतीके समान वह दिन-रात उसके पास रहती थी। वह चालमें मानो हंसी थी। आलापमें मानो कोकिला थी। पति-प्रेममें मानो चक्रवाकी थी। पयोधरोंकी[7] उन्नतिमें मानो वर्षा थी। विलासमें मानो मदिरा थी। अर्थ-सञ्चयमें मानो निधि थी। प्रसन्नतामें मानो सम्पत्ति-प्रवाह थी। कोष-संग्रहमें मानो कमलिनी थी। फल देनेमें मानो कुसुमावली थी। वन्दनीयतामें मानो संध्या थी। शीतलतामें मानो

---

१. मेरुपर्वत सुवर्णमय कहा जाता है।

२. आँखोंकी पुतलियाँ, ताराएँ।

३. महान् राजा, महान् पर्वत अर्थात् हिमालय।

४. राजा की इच्छा, मानसरोवर।

५. तीनों वेद।

६. वेदकी शाखाएँ, पैर।

७. मेघ, स्तन।

चन्द्रिका थी। सभी प्राणियोंको ग्रहण करनेमें[1] मानो दर्पण थी। दूसरोंके चित्त जाननेमें मानो सामुद्रिका[2] थी। व्याप्तिमें मानो परमात्मा थी। पुण्यकर्मोंके करनेमें मानो स्मृति[3] थी। संभाषण करनेमें मानो मधुमयी थी। प्यासोंके लिए मानो अमृतमयी थी। भृत्योंके लिए मानो वृष्टि थी। सखियोंके लिए मानो सुख थी। गुरुजनोंके लिए मानो वेतसमयी थी। वह मानो विलासकी वंश-वृद्धि थी। मानो स्त्रीत्वकी प्रायश्चित्त-शुद्धि[4] थी। मानो मकरध्वजकी आज्ञा-सिद्धि थी। मानो रूपकी समाधि-निवृत्ति थी। मानो रतिकी भाग्य-वृद्धि थी। मानो रमणीयताकी मनोरथ-सिद्धि थी। मानो लावण्यकी दैवी संपत्ति थी। मानो अनुरागके वंशकी उत्पत्ति थी। मानो कान्तिकी वर-प्राप्ति थी। मानो सौन्दर्यकी सृष्टिकी समाप्ति थी। मानो यौवनकी पूर्णता थी। मानो विदग्धताकी अनभ्र-वृष्टि थी[5]। मानो लक्ष्मीके कलङ्ककी प्रमृष्टि[6] थी। मानो सच्चरित्रताके यशकी पुष्टि थी। मानो धर्मके हृदयकी संतुष्टि थी। मानो प्रजापतिके सौभाग्य-परमाणुओंकी सृष्टि थी। वह मानो शमकी भी शान्ति थी; मानो विनयकी भी

१. वश करनेमें, प्रतिबिम्बित करने में।

२. समुद्र का बनाया हुआ सामुद्रिक शास्त्र।

३. धर्मशास्त्र।

४. प्रायश्चित्त द्वारा प्राप्त शुद्धि।

५. जिस प्रकार अनभ्र वृष्टि अर्थात् बिना मेघकी वृष्टि आश्चर्य-जनक है उसी प्रकार उसकी निपुणता भी आश्चर्यजनक थी।

६. प्रमार्जन। चञ्चलता लक्ष्मीका दोष है, यशोवतीने उसके इस दोषको धो डाला था, क्योंकि लक्ष्मी उसके घरमें स्थिर हो गई थी।

विनीति थी; मानो आभिजात्यकी भी अभिजाति थी; मानो संयमकी भी संयति थी; मानो धैर्यकी भी धृति थी; मानो विभ्रमकी भी विभ्रान्ति थी[1]। वह (राजा के) जीवन, प्रेम, विश्वास, धर्म और सुखकी भूमि[2] थी। वह राजाके वक्षःस्थल पर उसी प्रकार शोभित हुई, जिस प्रकार विष्णुके वक्षःस्थलपर लक्ष्मी।

स्वभावसे ही वह राजा आदित्यका भक्त था। प्रतिदिन सूर्योदयके समय स्नान कर, श्वेत वस्त्र धारण कर, सफेद कपड़ेसे शिर ढककर, पूर्वकी ओर मुँह कर, धरतीपर घुटनों द्वारा खड़ा होकर, वह कुङ्कुम-पङ्कसे लिपे घेरेमें पद्मरागके पवित्र पात्रमें रखे लाल कमलोंके गुच्छेसे, मानो सूर्यमें अनुरक्त अपने हृदय से, सूर्यकी पूजा करता था। वह सुशील जपपरायण प्रातःकालमें, मध्याह्नकालमें और सायङ्कालमें अपत्यके लिए नम्रतापूर्वक संयत चित्तसे जपनीय "आदित्य हृदय" नामक मंत्रका जप करता था।

देवताओंके मन भक्तजनोंके अनुरोधके वशमें होते हैं। क्योंकि वह राजा एक बार ग्रीष्म समयमें चन्द्र-किरण-सदृश श्वेत चूनेसे धवल प्रासादकी छतपर स्वेच्छासे सोया हुआ था और उसके पास ही द्वितीय शयनपर देवी यशोवती सोई हुई थी। निशाका अवसान समीप था। निकटवर्ती प्रभात-वेलाके कारण चन्द्रमाका लावण्य लुप्त हो रहा था, तेज क्षीण हो रहा था, और वह नीचे लटकने (उतरने) की इच्छा कर रहा था।

१. वह अत्यन्त शान्त, विनीत, कुलीन, संयत, धीर और विलासमयी थी।
२. आधार, पात्र।

अत्यन्त शीतल हिम-जल गिर रहा था, जैसे करोंके[1] अग्रभागसे स्पृष्ट कुमुदिनीके प्रमोदसे उत्पन्न चन्द्रमाका स्वेद हो। मदिराके मदसे मत्त होकर सोई हुई ललनाओंके निःश्वाससे आहत हो अन्तःपुरके प्रदीप काँप रहे थे, जैसे उन्हें भी मद (नशा) लग गया हो। राजा सो रहा था। उसके विमल नखोंमें प्रतिबिम्बित ताराएँ मानो उसके चरणोंका संवाहन कर रही थीं। वह अपने जैसे-तैसे फैलाये हुए अङ्गोंको मानो दिगङ्गनाओंको अर्पण किये हुए था। उसके मुखकी श्री मदिरा-सुवासित साँसोंसे, मानो अपने हाथके कमलरूपी पंखेकी हवासे, उसके ऊपर व्यजन डुला रही थी। अपने निर्मल कपोल-तलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमासे, जैसे रति-क्रीडामें केश पकड़े जानेसे लटके हुए उजले फूलोंके शेखरसे,[2] वह शोभित हो रहा था। सहसा ही 'आर्यपुत्र, बचाइये, बचाइये' कहती हुई अपने आभूषणोंकी ध्वनिसे मानो परिजनको बुलाती हुई देवी यशोवती उठ खड़ी हुई। उसकी देह-लता काँप रही थी।

अनन्तर, देवी-मुखकी बात तो दूर रही, समूची पृथिवीमें भी इस अश्रुतपूर्व 'बचाइये' की ध्वनिसे दोनों कानोंमें मानो दग्ध होकर तत्क्षण ही राजाने नींद तोड़ दी। क्रोधसे काँपते हुए दाहिने हाथसे सिरहानेसे खींची गई स्वच्छ धारवाली धुली तलवारसे, जैसे बाहर आते हुए कानपरके कमलसे, उसने निशामें मानो विभाजक रेखा खींच दी। उसने बाएँ हाथसे रेशमी उत्तरीयको, मानो बीचमें व्यवधान करनेवाले आकाशको, दूर

१. हाथ, चन्द्र-किरण।

२. फूलोंका गुच्छा, जो शिर पर धारण किया जाता है।

फेंक दिया। वेग-पूर्वक हाथ फेंकनेसे गिरा हुआ सुवर्ण-कङ्कण नीचे लुढ़कने लगा, मानो भयका कारण खोजनेवाला हृदय सब दिशाओंमें घूमने लगा। शीघ्रतापूर्वक उतारे गये बाएँ पैरके आघातसे उसने प्रासादको प्रकम्पित कर दिया। हार सामनेसे गिरकर खण्डित हो गया और असिधारामें प्रतिबिम्बित होकर चन्द्र-किरणोंके टुकड़ेके समान दिखाई पड़ा। नींद और कोपसे अत्यन्त लोहित लोचनोंसे, जो मानो लक्ष्मीके चुम्बनमें लगे हुए ताम्बूल-रससे रंग गये थे, उसने दिशाओंके पर्यन्त लाल कर दिये। तीन रेखाओंवाली भ्रुकुटिसे अन्धकारको बाँधकर वह मानो रात्रिको पुनः लौटा रहा था। "देवि, न डरो, न डरो" यह कहता हुआ वह वेगसे उछल पड़ा। सभी दिशाओंमें आँखें फैलानेपर जब उसने कुछ भी नहीं देखा तब उससे भयका कारण पूछा।

अनन्तर गृहदेवताओंकी भाँति यामकिनियोंके[1] दौड़ आनेपर, समीपमें सोनेवाले परिजनके जागनेपर, और हृदयमें उत्कम्प करनेवाले भयके शान्त होनेपर वह बोली—"आर्यपुत्र, जानती हूँ। स्वप्नमें (देखा कि) भगवान् सूर्यके मण्डलसे दो तेजस्वी कुमार निकल आये। वे दिशाओंको मानो बाल आतपसे भर रहे थे और जीव-लोकको मानो विद्युन्मय (प्रकाशमय) कर रहे थे। वे मुकुट, कुण्डल, केयूर, कवच और शस्त्र धारण किये हुए थे। इन्द्रगोपकके[2] रङ्गके रुधिरसे[3] वे स्नान किये हुए

१. रात में पहरा देने वाली स्त्रियाँ।
२. एक प्रकार का कीड़ा, जो वर्षा के आरम्भ में दिखाई पड़ता है।
३. श्रीकाणे यहाँ 'रुधिर' से 'कुङ्कुम' का अर्थ करते हैं।

थे। मुखको (उनकी ओर) ऊपर उठाकर और शिरपर अञ्जलि बाँधकर समस्त जगत् उन्हें प्रणाम कर रहा था। सुषुम्ण रश्मि-से निर्गत चन्द्र-मूर्तिके समान एक कन्यासे अनुसृत होकर वे भू-तलपर उतरे और मुझ विलाप करती हुईके उदरको शस्त्रसे विदीर्ण कर (मेरे) भीतर घुसने लगे। काँपते हृदयसे आर्त्त स्वरमें आर्यपुत्रको पुकारती हुई मैं जाग उठी हूँ।"

इसी समय तोरणके समीप प्रभात-शङ्ख बज उठा, मानो राज-लक्ष्मीके प्रथम आलापने स्वप्न-फलको घोषित किया। दुन्दुभियाँ जोरसे बजने लगीं, जैसे भावी अभ्युदयकी सूचना दे रही हों। कोणकी[1] चोटसे मानो आनन्दित होकर प्रातःकाल-की भेरी बजने लगी। जगानेके समय मङ्गल पाठ करनेवालोंके 'जय जय' के अमन्द वाक्य सुन पड़े। (राजाके) प्रिय अश्वोंके अस्तबलमें एक अश्वपालने धीरे-धीरे नींदसे उठकर मधुरता-पूर्वक हिनहिनानेवाले सात घोड़ोंके आगे मरकतके समान हरी घास, जिससे हिम-शीकर झर रहे थे, बिखेरते हुए वक्त्र और अपरवक्त्र का पाठ किया—

"वृक्ष-विकारसे[2] निधि, चमकते हुए तेजसे सद्रत्न और लक्षणसे शुभ (वस्तु) का आगमन स्पष्ट सूचित होता है। ॥ ३ ॥

जिस प्रकार आगे आगे जाने वाला अरुण सूर्योदयकी ओर अत्यन्त वेगवान् पवन जल आनेकी सूचना देता है, उसी प्रकार

१. ढोल आदि बजाने की लकड़ी।

२. जहाँ नीचे धन गड़ा रहता है, वहाँ वृक्षमें कुछ खास परिवर्तन हो जाता है।

पूर्व लक्षणोंका उदय लोगोंके शुभ और अशुभको सूचित करता है।॥ ४॥

यह सुनकर प्रसन्न अन्तःकरणसे राजाने रानीसे कहा—"देवि, हर्षके अवसरपर क्यों विषाद करती हो ? तुम्हारे गुरुजनोंके आशीर्वाद सिद्ध हुए। हमारे मनोरथ पूर्ण हुए। अपने कुलके देवताओंने तुम्हें स्वीकृत किया। भगवान् अंशुमाली (सूर्य) तुम पर प्रसन्न हैं और कुछ ही कालमें अत्यन्त गुणवान् तीन सन्तान देकर तुम्हें आनन्दित करेंगे।" इतना कह (छतपरसे) नीचे उतरकर उसने नित्य किये जानेवाले कर्म किये। यशोवती भी पतिके इस वचनसे संतुष्ट हुई।

तब कुछ समयके बीतनेपर देवी यशोवतीके गर्भमें पहले देव राज्यवर्धनका आगमन हुआ। जब वह गर्भमें ही था, उसी समय उसके यशसे उसकी जननी पाण्डु वर्णकी हो गई। उसके गुणोंके भारसे मानो थककर वह अपने शरीरको न सँभाल सकी। उसके कान्ति-प्रवाहरूपी अमृत-रससे ही मानो तृप्त होकर वह भोजनके प्रति पराङ्मुख हो गई। धीरे धीरे बढ़ते हुए गर्भके भारसे मन्थर हो जानेपर वह गुरुजनोंके द्वारा रोकी जानेपर भी, सखियोंके हाथोंके अवलम्बसे (गुरुजनोंकी) वन्दना करनेके लिए किसी न किसी तरह आती थी। पासके स्तम्भों और भीतोंपर विश्राम करती हुई वह मूर्ति-सी जान पड़ती थी। वह अपने चरणोंको भी नहीं उठा सकती थी, जो-मानो कमलोंके लोभसे बैठे हुए अलियोंसे भरे थे। वह मन्द मन्द चलती थी, मानो मृणालोंके लोभसे चरण-नखोंकी किरणोंमें लगे हुए भवन-हंसों द्वारा संचारित होती थी। मणियोंकी भीतपर पड़नेवाले अपने ही प्रतिबिम्बोंकी ओर हाथका सहारा

पानेके लोभसे वह अपना कर-कमल फैलाती थी, फिर सखियों (की ओर कर-कमल फैलाने) का क्या कहना। वह माणिक्य-स्तम्भोंकी किरणोंको भी पकड़ना चाहती थी, फिर भवन-लताओंका क्या कहना। वह गृह-कार्योंके लिए आदेश देनेमें भी असमर्थ थी, उनके करनेकी बात ही क्या। नूपुरोंके भारसे थका हुआ चरण-युगल तो रहे, वह मनसे भी प्रासादपर चढ़नेका साहस नहीं करती थी। वह अपने अङ्गोंको भी नहीं सँभाल सकती थी, भूषण तो दूर रहें। क्रीड़ा-पर्वतपर चढ़नेकी चिन्ता (कल्पना) करनेपर भी उसके स्तनोंमें उत्कम्प हो जाता था और वह लम्बी साँस लेने लगती थी। सत्कार करनेके लिए उठनेके समय दोनों घुटनोंके ऊपर कर-किसलय रखनेपर भी वह गर्भ (के बालक) के द्वारा मानो गर्वसे रोक ली जाती थी। वह अधोमुखी होकर स्तन-पृष्ठ पर प्रतिबिम्बित मुखकमलसे, जो मानो सन्तान देखनेकी उत्सुकतासे भीतर घुसा हुआ था, दिन भर गर्भकी ओर प्रसन्नतापूर्वक देखती रहती थी। उसके पेटमें पुत्र था और हृदयमें पति, इस प्रकार वह मानो द्विगुणित लक्ष्मीका वहन कर रही थी। सखियोंकी गोदमें अपना शरीर छोड़कर वह शरीर-परिचारिकाओंकी गोदमें और सपत्नियोंके शिरपर पैर रखती थी। दशम मासके आने पर उसने देव राज्य-वर्धनको जन्म दिया। पृथ्वीके सभी भूभृतोंके पक्षोंको[1] गिरानेके लिये वह मानो वज्र-परमाणुओंसे बना था। वह त्रिभुवनका भार धारण करनेमें समर्थ था, जैसे शेषके फण-मण्डलके उपकरणोंसे बना हो। वह सभी भूभृतोंको कँपा सकता था, जैसे

१. राजाओंके सहायक, पर्वतोंके पंख।

दिग्गजोंके अवयवोंसे बना हो। उसके उत्पन्न होनेपर प्रजाएँ प्रमुदित तथा मानो नृत्यमयी हो गईं। राजाने एक मासतक, जो एक दिवसके समान जान पड़ा, महोत्सव किया। असंख्य, शङ्ख बजाये गये और सैकड़ों ढोल पीटे गये। भेरीके गम्भीर निनादसे भुवन बिल्कुल भर गया। मर्त्यलोक आनन्दसे उन्मत्त हो गया।

अनन्तर, और कुछ समयके बीतने पर श्रावण मासमें जब केले (खूब) होते हैं, कदम्ब मुकुलित होते हैं, तृण हरे रहते हैं, कमल निश्चल रहते हैं, चातकोंका चित्त प्रसन्न रहता है और हंस मूक रहते हैं, देवीके हृदय और गर्भमें एक ही साथ हर्षका उदय हुआ, जैसे देवकीके गर्भमें कृष्णका आविर्भाव हुआ था। सभी प्रजाओंके पुण्योंसे गृहीत होकर उसकी देह-लता फिर भी धीरे-धीरे कुछ-कुछ पाण्डु-वर्णकी हो गई। गर्भका आरम्भ होनेसे उसके चारु चूचुक श्यामल होने लगे, मानो चक्रवर्त्तीके पीनेके स्तन-कलशोंपर मुहर लगने लगी। उसकी दीर्घ स्निग्ध और धवल दृष्टि मधुर हो गई, जो (स्तनोंको) दूध देनेके लिए मुखमण्डलमें स्थित दुग्ध-नदीके समान जान पड़ती थी। उसकी गति मानो सकल मङ्गलोंसे अधिष्ठित गात्रके भारसे मन्द हो गई। मन्द मन्द चलते समय निर्मल कुट्टिमपर[1] प्रतिबिम्बित पाद-पल्लवोंको पकड़कर पृथ्वीने मानो उसकी पूर्वसेवा आरम्भ की। दिन में जब वह शय्यापर पड़ी रहती थी, तब उसके विमल कपोलमें चँदोवे की चित्रित पुतली प्रतिबिम्बित होती थी, जो प्रसव-समय की प्रतीक्षा करती हुई लक्ष्मी के समान लक्षित होती थी। रातमें जब वह सौधके शिखरपर जाती थी,

१ रत्नोंसे खचित मकानका तला।

तब गर्भ के क्लेशसे वस्त्र हटाये जानेपर स्तन-मण्डलपर चन्द्र-मण्डल प्रतिबिम्बित होता था, जो किसी (परिजन) के द्वारा गर्भके ऊपर धारण किये जाते हुए श्वेत आतपत्रके समान दीखता था। जब वह निवास-भवनमें सोयी रहती थी, तब चित्रित दीवारों की चामर-ग्राहिणी स्त्रियाँ भी उसके ऊपर चामर चलाती थीं। स्वप्नमें वह देखती थी कि चारों दिग्गज अपनी सूड़ोंसे पकड़े हुए कमलके पत्तोंके पुटोंमें जल लेकर उसका अभिषेक कर रहे हैं। जागनेपर चन्द्रशालामें[1] कठपुतलीके[2] परिजन बार बार जय-शब्द उच्चारण करते थे। परिजनोंको पुकारनेपर 'आज्ञा हो' कहते हुए अमूर्त्त वाक्य विचरण करते थे। क्रीड़ामें भी वह आज्ञा-भङ्ग नहीं सह सकती थी। और भी। चारों समुद्रोंके एकत्रित जलसे उसे स्नान करने की इच्छा होती थी। उसके हृदयमें समुद्र-तट-वर्ती लता-गृहोंके पुलिनोंके समीप पर्यटन करनेकी अभिलाषा होती थी। आवश्यक कार्योंमें भी उसकी भ्रूलता विलास-पूर्वक चलने लगती थी। पासमें मणि-दर्पणोंके रहने पर भी वह नंगी तलवारमें ही मुँह देखा करती थी। वीणाको दूर हटानेवाले स्त्रीजन-विरुद्ध धनुष्टङ्कार ही उसके कानोंको सुख देते थे। पिंजड़ेके सिंहोंमें ही उसकी दृष्टि रमती थी। गुरुजनोंको प्रणाम करनेमें भी उसका निश्चल-सा शिर कठिनतासे झुकता था। उसके सखीजन समीपवर्ती प्रसव-महोत्सव (मनाने) के विचारसे आनन्द-विस्फारित लोचन-पुटोंसे भवनको धवल करते हुए तथा विकसित कुमुद, कमल और कुवलयके दलोंकी वृष्टि-द्वारा मानो (अमङ्गलोंसे) रक्षाके लिए

१. महलका ऊपरी कमरा, जहां चन्द्रकिरणें अबाध गतिसे आती होंगी।
२. मूल शब्द 'शालभञ्जिका' का अर्थ है शाल वृक्षसे बनाई गई मूर्ति।

दिशाओंमें अनवरत पूजा-विधान करते हुए, क्षण भरके लिए भी उसके पार्श्वको नहीं छोड़ते थे। अपने योग्य स्थानोंपर बैठे हुए विविध ओषधियों वाले बड़े बड़े वैद्योंने रानीको स्थिर रखा, जैसे भूधरोंसे पृथिवी स्थिर है। उसके गलेके सूतकी गिरहोंसे उत्कृष्ट रत्न बँधे हुए थे, जैसे लक्ष्मीके साथ आये हुए समुद्रोंके हृदय हों।

तब जेठ महीना आनेपर कृत्तिका नक्षत्रमें कृष्णपक्षकी द्वादशीमें संध्या समय बीतने पर रात्रिका यौवन चढ़ना ही चाहता था कि सहसा ही अन्तःपुरमें स्त्रियोंका कोलाहल हुआ। धाईकी लड़की सुयात्रा, जो यशोवतीके प्राणोंके समान प्यारी थी, शीघ्रतासे निकल कर राजाके चरणोंमें गिरकर "देव, द्वितीय पुत्रके जन्मसे आप भाग्यशाली हैं" कहती हुई पूर्णपात्र[1] लेकर चली गई।

इसी समय तारक नामक एक गणक (ज्योतिषी) निकट आया। वह राजाका परम प्रिय था। उसके अतीन्द्रिय आदेश[2] सौ सौ बार प्रत्यक्ष प्रमाणित हो चुके थे। वह प्रभावशाली था, ज्योतिषमें निपुण था, सभी ग्रहोंके पारतक देखता था। वह सभी गणकोंके बीच पूज्य था, और (राज-परिवारका) हित (-चिन्तक) था। वह त्रिकालज्ञ और सूर्यका उपासक था। निकट आकर उसने निवेदन किया—"देव, सुनिये। व्यतीपात[3] आदि सभी दोषोंके संपर्क से रहित ऐसे ही दिनमें, सभी ग्रहोंके

१. उत्सवके समय आनन्दमें आकर जो अलंकार और वस्त्रआदि खींच-कर ले लिया जाता है उसे पूर्णपात्र कहते हैं।

२. असाधारण भविष्यद्वाणी।

३. योग-विशेष जब चन्द्र और सूर्य आकाशमें एक ही मार्गपर स्थित रहते हैं।

उच्च स्थानपर रहते हुए ऐसे ही लग्नमें मान्धाताने जन्म लिया था। उसके बादसे इस बीचमें चक्रवर्तीके जन्मके योग्य ऐसे योगमें जगत्‌में फिर किसी दूसरेका जन्म नहीं हुआ। आपको जो यह पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह सातों चक्रवर्तियों[1]में श्रेष्ठ है, चक्रवर्तीके चिह्नोंसे सुशोभित तथा महारत्नोंका[2] पात्र है, सातों सागरोंका पालन करनेवाला, सभी यज्ञोंका प्रवर्तक और सूर्यके समान है।

इसी बीच बिना फूंके जानेपर भी शङ्ख आप ही आप जोरसे मधुरतापूर्वक बज उठे। ताड़ित नहीं होनेपर भी अभिषेक-दुन्दुभि क्षुब्ध समुद्रके जलकी गम्भीर ध्वनिकी भाँति गूंज उठी। चोट न दी जाने पर भी मङ्गल-तूर्य बज उठे। अखिल भुवनके अभयकी घोषणा करनेवाले पटहकी भांति तूर्यकी प्रतिध्वनि दिगन्तरोंमें भ्रमण करने लगीं। घोड़े, जिनके मुख-पुट हरी दूबके ग्रास ग्रहण करनेसे प्रशस्त लगते थे, अपने केसरोंको कंपाते हुए प्रसन्नतापूर्वक हिनहिना उठे। सूँड़रूपी पल्लवों को लीलापूर्वक ऊपर उठाकर मानो नृत्य करते हुए हाथियोंने श्रुति-सुखद गीत गाया। तत्क्षण ही विष्णु को छोड़ती हुई लक्ष्मीके निःश्वासके समान सुराके आमोदसे सुगन्धित दिव्य वायु बहने लगी। यज्ञ-शालाओंमें यज्ञ की अग्नियां बिना इन्धन के ही जल उठीं, जो अपने प्रदक्षिण शिखाकलाप[3] से कल्याणों का उदय बता रही

१. भरत, अर्जुन, मान्धाता, भगीरथ, युधिष्ठिर, सगर और नहुष, ये सात चक्रवर्ती हैं।

२. मणि, अश्व, करि, चक्र, श्रेष्ठ स्त्री, परिनायक अर्थात् सेनापति, ये छः रत्न हैं।

३. सरल ज्वाला-समूह, अथवा दाईं ओर घूमता हुआ ज्वाला-समूह।

थीं। भू-तल से महानिधियाँ ऊपर निकल आईं, जिनकी कलशियों के कोश[1] सुवर्ण-शृंखलाओंके बन्धनसे सुन्दर लगते थे। पीटे गये मङ्गल-तूर्योंकी प्रतिध्वनिके बहाने दिक्पालोंने भी मानो दिशाओंमें आनन्दसे (हर्ष की) भाग्य-वृद्धिके लिए कल-कल किया। तत्क्षण ही शुक्ल वस्त्र पहने हुए द्विजातिगण, जिनके मुखोंमें वेद थे, सन्तानके अभ्युदयके लिए उसी तरह उपस्थित हुए, जैसे कृतयुगमें ब्रह्म-प्रमुख प्रजापति प्रजाओंकी वृद्धिके लिए उपस्थित हुए थे। साक्षात् धर्मकी तरह हाथमें शान्ति-जल और फल लेकर पुरोहित सामने खड़ा हुआ। आगत वृद्ध बान्धव पुरातनी शिष्टाचार-पद्धति की भाँति दीख पड़े। लम्बे श्मश्रु-जाल से जिनके आनन जटिल हो गये थे तथा अत्यधिक मलसे जिनके शरीर काले हो गये थे, ऐसे (बन्धन-) मुक्त कैदी नष्ट होते कलिकालके बान्धव-कुलोंकी भांति घबड़ा कर दौड़ पड़े। लोगों द्वारा लूटी गई[2] बनियोंकी दुकानोंकी पाँतियां इस तरह दिखती थीं, जैसे तत्काल भागे हुए अधर्मकी शिविर-श्रेणियां हों। मुँह ऊपर उठाकर हँसते हुए वामनों और बधिरोंसे घिरी हुई वृद्ध धाइयोंने, जो साक्षात् जातमातृदेवता[3] की तरह बहुत बालकोंसे व्याकुल थी, नृत्य किया। पुत्र-जन्मका महान् महोत्सव आरम्भ हुआ। राज-कुलके नियम चले गये। प्रतीहारोंकी आकृतिकी परवाह नहीं की गई। बेतवाले सिपाहियोंके बेत हटा दिये गये।

१. कलशीका ऊपरी भाग या मुख, आवरण।

२. राजा की आज्ञासे दुकाने लुटाई जाती होंगी, जिनकी क्षति-पूर्ति राजा करता होगा।

३. वह देवता जो सूतिका-गृहमें स्थापित की जाती है, इसका मुँह बिल्ली-कासा होता है और वह अनेक पुत्रोंसे घिरी रहती है।

अन्तःपुरका प्रवेश निर्दोष हो गया। स्वामी और परिजन एक-से हो गये। बालकों और वृद्धोंके बीच कोई विशेषता नहीं रही। शिष्ट और अशिष्ट समान हो गये। मत्तों और अमत्तोंका भेद दुर्ज्ञेय हो गया। कुल-युवतियों और वेश्याओंका विलास तुल्य था। राजधानीके सभी लोगोंने नृत्य किया।

दूसरे दिनसे सभी ओर सामन्तोंकी हजारों स्त्रियाँ राज-कुलमें आती दिखाई पड़ीं, मानो सभी दिशाओंसे स्त्रियोंके राज्य उमड़ पड़े, मानो उनकी खानें खुल गईं, मानो कृष्णके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ चल पड़ीं, मानो अप्सराएँ भू-तलपर उतर आईं। पैरोंकी शीघ्र गतिसे बजते हुए मणिमय नूपुरोंसे दिशाओंको मुखरित करती हुई वे नृत्य कर रही थीं। उनके पीछे पीछे परिजन आ रहे थे। वे बड़ी बड़ी डालियोंमें मालाएँ जिनके फूलोंपर स्नान करनेके चूर्ण छिड़के हुए थे, स्फटिक-शिलाके टुकड़ेके समान सफेद कपूरसे भरे पात्र, कुङ्कुमके सुगन्धित चूर्णके मणिमय पात्र, सहकारके तेलसे सिक्त खदिरके बारीक रेशोंसे जटिल लगनेवाले तथा चन्दनके समान धवल पूगफलोंके टुकड़ोंसे दन्तुर लगनेवाले हाथी-दांतके पात्र, लाल रंगके पात्र जिनमें गूंजते भौरे पारिजातक-परिमल पी रहे थे, सिन्दूर-पात्र, सुगन्धित चूर्णके पात्र और जिनकी बाल लताओंसे पत्तोंके गुच्छे लटक रहे थे ऐसे पानके पौधे, लिये जा रहे थे।

धीरे धीरे उत्सवका आनन्द बढ़ने लगा। कहीं नृत्य करनेमें अनभ्यस्त चिरलज्जाशील कुल-पुत्रोंने नाच द्वारा राजाके प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित किया। कहीं भीतर ही भीतर मुस्कराते हुए राजाने देखा कि मद-माती क्षुद्र दासियाँ उसके प्रिय-पात्रोंको खींच रही हैं। कहीं वृद्ध आर्य सामन्त राजधानीकी माती हुई विलासिनियोंके गले लगे और राजा ठठाकर हँसा। कहीं

राजाकी आँखोंके इशारेसे आदेश पाकर दुष्ट दासी-पुत्रोंने गीत द्वारा सचिवोंका गुप्त रत सूचित किया। कहीं जल भरनेवाली मद-माती बालिकाओंसे आलिङ्गित होते बूढ़े परिव्राजकोंने लोगोंको हंसा दिया। कहीं आपसकी अतिशय स्पर्धासे उच्छृंखल दासोंने गालियोंका युद्ध आरम्भ किया। कहीं राजाकी स्त्रियोंने नृत्यसे अनभिज्ञ अन्तःपुर-पालोंको बलात् नचाया, जिससे परिचारिकायें प्रमुदित हुईं। कुसुम-राशियोंसे वह उत्सव मानो पर्वत-युक्त था। मदिरालयोंसे वह मानो जल-धारा-गृहोंसे युक्त था। पारिजातके प्रचुर आमोदसे वह मानो नन्दन-वनसे युक्त था। कपूरकी धूलोंसे वह मानो हिमकणोंसे युक्त था। पटहोंकी ध्वनिसे वह मानो (शिवके) अट्टहाससे युक्त था। कलकल (शब्द) होनेसे वह मानो अमृत-मथनसे युक्त था। रास[1]-मण्डलोंसे वह मानो आवर्त्तसे युक्त था। भूषण-मणियोंकी किरणोंसे[2] वह मानो रोमाञ्चसे युक्त था। चन्दनपङ्करूपी ललाटिकाओंसे वह मानो पगड़ीसे युक्त था। प्रतिध्वनियोंसे वह मानो सन्तानोंसे युक्त था। प्रसाद-दानोंसे[3] वह मानो अङ्कुरोंसे युक्त था।

हजारों युवकोंने क्रीड़ा की। कंधोंपर लटकती केसर[4]-मालाओंवाले काम्बोज बाजियोंकी[5] तरह उन्होंने (परस्पर)

१. हाथ पकड़कर मण्डलाकारमें नाचना।
२. ललाटपरका अलङ्कार।
३. प्रसन्नतापूर्व दिये गये दान।
४. घोड़ेके पक्षमें, घोड़ेकी गर्दनपरके बाल; युवकके पक्षमें, बकुल नामक फूल।
५. कम्बोज देशके घोड़े।

आक्रमण किया। चञ्चल पुतलियोंवाले हरिणोंकी तरह वे उछले। चरणोंके निर्दय आघातोंसे उन्होंने पृथ्वीको उसी तरह विदीर्ण किया, जिस तरह कुदालोंसे सगरके पुत्रोंने खोदा था। तालके साथ चलनेवाले चारण-चरणोंसे उत्पन्न क्षोभको पृथ्वी कठिनाईसे सह सकी। खेलते सामन्त-कुमारोंके आपसमें मार-पीट करनेसे आभरणोंके मोती फूट गये। सिन्दूरचूर्णसे, मानो पुनः उत्पन्न हिरण्य-गर्भके गर्भ शोणित से, पृथ्वीकी दिशाएँ लाल हो गईं। पटवास-रूपी[1] धूलके पटलसे आकाशमें मानो मन्दाकिनीके सहस्रों सैकत[2] प्रकटित हो गये। बिखेरे जाते हुए पटवासरूपी परागसे, मानो भुवनके क्षोभसे चूर चूर हुए पितामह-कमलके केसरोंके परागसे, दिवसका प्रकाश रंग गया। आपसकी रगड़से टूटे हारोंसे गिरे हुए मोतियोंके ढेरोंपर लोग फिसले।

स्थान-स्थान पर भाँति-भाँतिके बाजोंके साथ वेश्याएँ नाचीं। (नाचमें) मृदङ्ग मन्द मन्द बजाये गये। मञ्जु वेणु बजे। झल्लरीक झनझनाये। पटह पीटे गये। उल्टे कद्दूकी बनी वीणाएं बजाई गईं। मधुर करताल बजनेके साथ काहल भी बजा। साथ ही साथ धीरे धीरे हाथों का ताल दिया गया। झनझन करते अलङ्कारोंकी ध्वनियोंने भी, सहृदयोंकी[3] तरह, उनके ताल और लयका अनुसरण किया। कोकिलाओंकी भाँति सूक्ष्म और मधुर ध्वनिमें कोमल आलाप करती हुई उन वेश्याओं ने विलासियोंके कानोंके लिए अमृतस्वरूप अश्लील और शृंगार-

१. कपड़ोंको सुगन्धित करनेका चूर्ण।
२. बालुकामय तट।
३. रसिक, सामाजिक।

रस-उद्दीपक पद गाये। वे मुण्डमालाओं, कर्ण-पल्लवों और चन्दन-तिलकसे युक्त थीं। कंगनोंसे वाचाल बाहुलतिकाओं को ऊपर उठाकर वे मानो सूर्यका आलिङ्गन करती थीं। कुङ्कुम लगानेसे चमकीली-देहवाली[1] काश्मीर-किशोरियोंकी भाँति वे उछलती हुई चलती थीं। उनके नितम्बोंपर (लाल) कुरण्टक फूलोंकी बड़ी बड़ी मालाएँ लटकती थीं, मानो वे अनुरागकी अग्निसे दीप्त थीं। वे अप्रतिहत-शासन कंदर्पके शासन-पट्टों की पंक्तियोंकी भाँति लगती थीं, जिनकी मुख-मुद्राएँ सिन्दूरसे रञ्जित थीं[2]। यौवनके मनोरथके चलनेकी सड़कोंकी भाँति वे मुट्ठियोंसे फेंके जाते कपूर और पटवासकी धूलसे ढकी थीं। तरुणोंके महोत्सवकी प्रतिहारियोंकी भाँति वे फूलोंकी बड़ी बड़ी मालाओं से तरुण जनोंको ताड़ित करती थीं। मदनरूपी चन्दन-तरुकी लताओंकी भाँति वे नाचती थीं और उन्हीं लताओंके पत्तोंकी भाँति उनके कुण्डल हिलते थे। शृंगार-रसकी तरंगोंकी भाँति चमकती हुई वे ललित-पद हंसकोंकी[3] ध्वनिसे मुखर थीं। सौभाग्यकी बाल-क्रीड़ाकी भाँति वे वाच्य और अवाच्यके विवेकसे शून्य थीं। गम्भीर पटह-ध्वनिसे रोमाञ्चित होकर उनकी देह-लतायें उसी तरह कुसुम-धूलि गिराती थीं, जिस तरह मेघ-गर्जन से उत्कण्टकित होकर केतकी-लतायें पराग बरसाती हैं। कमलिनियोंकी भाँति दिन भर उनके मुख उत्फुल्ल

१. यह विशेषण वेश्याओंके लिये भी लागू है।

२. शङ्करके अनुसार शासन-पट्टके मुखमें (आगे) दी जानेवाली मुद्रा सिन्दूर-युक्त होती है, वेश्याओंके पक्षमें 'मुख-मुद्रा' का अर्थ है मुख-शोभा या मुखरूपी मुद्रा।

३. सुन्दर चालवाले छोटे छोटे हंस, सुन्दर चरणोंके नूपुर।

रहते थे और कुमुदिनियोंकी भाँति रातको उन्हें नींद नहीं आती थी। वे नरेन्द्र-वृन्दसे उसी तरह घिरी थीं, जैसे भूतादिसे गृहीत व्यक्ति भूत भगानेवाले मंत्रज्ञोंसे घिरे रहते हैं। प्रीतिकी भाँति वे हृदय चुराती थीं। गीतिका भाँति वे राग उद्दीपित करती थीं। पुष्टिकी[1] भाँति वे आनन्द उत्पन्न करती थीं। वे मानो मदको भी मत्त करती थीं। मानो रोगको भी रञ्जित करती थीं, मानो आनन्दको भी आनन्दित करती थीं। मानो नाचको भी नचाती थीं। मानो उत्सवको भी उत्सुक करती थीं। कटाक्ष-पातमें वे मानो अपाङ्ग-शुक्तियोंसे (लोगोंको) पीती थीं। तर्जनमें वे मानो नखोंके मयूख-पाशसे बाँधती थीं। कोपके अभिनयमें वे मानो भ्रू-लताओंसे ताड़न करती थीं। प्रणय-संभाषणमें वे मानो सकल रस बरसाती थीं। चतुरतापूर्वक चलनेमें वे मानो विकार बिखेरती थीं।

अन्यत्र बेंतवालोंके बेंतसे डरे हुए लोगोंके स्थान देने पर राज-महिषियोंने नृत्य किया। उन रानियोंके ऊपर धवल आत-पत्रोंका वन शोभा दे रहा था, जान पड़ता था, जैसे वन-देवियां कल्प वृक्षके नीचे विचरण कर रही हों। कुछ (रानियां) दोनों कंधोंसे लटकते लम्बे उत्तरीयोंमें हाथ फँसाये थीं, मानो वे क्रीड़ा-दोलापर चढ़कर झूल रहीं थीं। कतिपयोंकी बारीक चादर सुवर्ण-केयूरोंकी नोकोंसे फाड़ी गईं, मानो नदियोंकी धाराएँ चक्रवाकोंसे सीमन्तित हुईं। डुलाये जाते धवल चामरोंके लोमोंमें त्रिकण्टक[2] लगनेसे कतिपयोंके बड़ी बड़ी तिरछी चितवनें घुम गईं, मानो हंसों द्वारा सरसियोंके नीले उत्पल खींचे गये। कति-पयोंके चलते चरणोंसे गिरे अलक्तकसे लाल हुए स्वेद-शीकरोंसे

---

१. मुटाई। २. कानमें पहननेका एक तरहका आभूषण

घरेलू हंस सिक्त हुए, मानो चांदनी-रातोंके संध्या-रागसे चन्द्र-बिम्ब लाल हुआ। कतिपयोंने कंचुकियोंके[1] कण्ठोंमें सोनेकी कर-धनी-रखकर उन्हें नीचे झुकाया और इससे कंचुकियोंके (क्रोध-सूचक) विकार होनेपर उन्होंने भी अपनी भौहें टेढ़ी कर लीं, उस समय बाहु-पाश फैलाये हुई वे रानियां काम-वागुराओंके[2] समान लगती थीं।

चारों ओर नाचते हुए स्त्री-समुदायके पैरों से स्रवित होते अलक्तकसे अरुण होकर पृथवी मानो रागमयी[3] हो गई। चमकते हुए स्तन-सण्डलोंसे महोत्सव मानो मङ्गल-कलशमय हो गया। भुज-लताओं के विक्षेपसे जीवलोक मानो मृणाल-वलयमय हो गया। चमकती हुई विलासकी मुस्कानोंसे काल मानो बिजलीमय हो गया। चञ्चल आंखोंकी किरणोंसे दिवस मानो कृष्णशारमय हो गये। चमकीले शिरीष-कुसुमोंके कर्ण-पूरोंसे[4] हरी कान्तिवाला आतप मानो शुक-पिच्छमय हो गया। बंधे केश-पाशोंसे गिरते हुए तमाल-किसलयोंसे अन्तरिक्ष मानो कज्जलमय हो गया। ऊपर उठे कर-किसलयोंसे सृष्टि मानो कमलिनीमयी हो गई। इन्द्र-धनुष-सदृश माणिक्योंकी प्रभासे सूर्यकी किरणें मानो चाष-पत्र-मयी[5] हो गईं। बजते हुए आभरणोंकी प्रतिध्वनिसे दिशाएँ मानो किङ्कणीमयी[6] हो गईं। वृद्धा स्त्रियाँ भी पगलीकी भाँति चिल्लाईं। बूढ़े भी निर्लज्ज हो गये, जैसे वे ग्रहोंसे गृहीत हों।

१. रनिवासके अध्यक्ष, अन्तः पुरचारी वृद्ध विप्र। २. जाल।

३. राग = लाली, अनुराग। रागमयी = रागसे युक्त, रागसे बनी।

४. कानके अलङ्कार। शिरीषके फूलोंसे कान अलङ्कृत होते थे।

५. चाष नामक पक्षीके पंखोंसे युक्त।

६. छोटी छोटी घंटियोंसे युक्त।

विद्वान् भी मत्तकी तरह अपनेको भूल गये। नाचनेकी इच्छासे मुनियोंके भी मन स्फुरित हुए। राजाने सर्वस्व दान किया। दिशा दिशामें लोगोंने कुबेर-कोषके समान सम्पत्ति-राशियाँ लूटीं।

इस प्रकार महोत्सव समाप्त हुआ। धीरे धीरे समय बीता। देव हर्षके मस्तकपर रक्षा की सरसों रखी जानेपर मानो उसकी प्रतापाग्निके स्फुलिङ्ग बाहर निकलकर चमके। गोरोचनासे उसका शरीर रञ्जित होनेपर मानो क्षत्रियोचित स्वाभाविक तेज प्रकट हुआ। सुवर्ण-बद्ध व्याघ्र-नखोंकी एक बड़ी मालासे उसका गला मण्डित होनेपर मानो उसकी छातीसे अभिमानके अङ्कुर निकल आये। प्रथम अस्फुट बोलीसे उसने मानो धीरे धीरे सत्यका आरम्भ किया। उसकी मनोहर मुसकानोंसे बन्धुओंके हृदय उसी तरह आकृष्ट हुए, जैसे फूलोंसे भौंरे आकृष्ट होते हैं। माताके पयोधर-कलशोंके पयसे सिक्त होकर उत्पन्न होते नन्हें दाँतोंसे, जो विलास-मुसकानोंके अङ्कुर-स्वरूप थे, उसका मुख-कमल अलङ्कृत हुआ। अन्तःपुरकी स्त्रियोंने चरित्रकी तरह उसका पालन किया। सचिव-मण्डलने मंत्रकी तरह उसकी रक्षा की। कुल-पुत्रोंने सदाचारकी तरह उसे छोड़ा नहीं। अपने वंशने यशकी तरह उसे बढ़ाया। सिंह-शावककी तरह वह रक्षा करनेवाले पुरुषोंके शस्त्ररूपी पिंजड़ेके भीतर स्थित था। जब धाईके हाथकी अँगुलियोंके सहारे वह पाँच-छः पग चलने लगा और राज्यवर्धन छठे वर्षमें उतरा, तब देवी यशोवतीने देवी राज्यश्रीको उसी तरह गर्भमें धारण किया, जिस तरह नारायण-मूर्तिने वसुधाको (अपने उदरमें) धारण किया था।

प्रसवके दिवस पूरे होने पर, जैसे लम्बे नाल और लाल

मूलवाली[1] कमलिनीको सरसी, जैसे हंसके मधुर स्वरसे युक्त[2] शरद् ऋतुको वर्षा ऋतु, जैसे कुसुमरूपी कोमल अवयवों वाली[3] वन-राजिको वसन्त-लक्ष्मी, जैसे प्रचुर सुवर्णसो उज्ज्वल[4] धन-वृष्टिको आकाश, जैसे प्रभा-वर्षिणी रत्न-जातिको सागरकी वेला, जैसे सभी लोगोंकी आँखोंको आनन्द देनेवाली चांदनीको प्रतिपदा प्रसव करती है, जैसे इन्द्रके देखने योग्य[5] जयन्तीको शचीने, और जैसे सभी पर्वतोंसे[6] प्रार्थित गौरीको मेनाने प्रसव किया था, वैसे ही देवी यशोवतीने एक पुत्रीको प्रसव किया। दोनों पुत्रोंके ऊपर इस पुत्रीसे वह वैसे ही शोभित हुई, जैसे दोनों स्तनोंके ऊपर विराजमान एकावलीसे।

इसी समय देवी यशोवतीके भाईने प्रायः आठ वर्षके भण्डि नामक पुत्रको कुमारोंके अनुचरके तौरपर अर्पित किया। उसका शिखा-कलाप उड़ रहा था, वह मानो फिरसे उत्पन्न कामदेव था जिसका मस्तक शिवके हुंकारसे उत्पन्न अग्निके धुएँसे घिरा हो। उसका आधा शरीर इन्द्रनीलके कुण्डलसे श्यामल था और आधा शरीर त्रिकण्टकके मोतियोंके आलोकसे धवल था, इस प्रकार उसने मानो हरिहरका संयुक्त अवतार दिखाया। उसके मोटे प्रकोष्ठपर पुष्पलोह नामक मणिका वलय शोभित था, वह मानो बाल्यावस्थाको प्राप्त परशुराम था जो क्षत्रियोंका

---

१. राज्यश्रीके पक्षमें—जिसकी आँखें लम्बे लाल कमलके समान थीं।
२. अन्य पक्षमें—जिसका स्वर हंसका सा मधुर था।
३. अन्य पक्षमें—जिसके अवयव कुसुमोंके समान कोमल थे।
४. अन्य पक्षमें—जिसका वर्ण सुवर्णका-सा था।
५. अन्य पक्षमें—हजारों आंखोंसे देखने योग्य।
६. अन्य पक्षमें—राजाओं।

विनाश करनेमें क्षीण हुए परशुवलयसे[1] चिह्नित था। उसके गलेके सूतमें प्रवालके कुटिल अंकुर गुथे थे, वह मानो फिरसे उत्पन्न हिरण्यकशिपु था जिसकी कड़ी छातीपर नरसिंहके नखर टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े थे। शैशवमें भी वह तेजस्वी था, मानो वीर्य-वृक्षका बीज था।

भण्डि तथा दोनों पुत्रोंके ऊपर राजाकी समान दृष्टि थी, जैसे तीसरे तथा दूसरे दो नेत्रोंमें शिवकी दृष्टि (देखनेकी शक्ति) तुल्य थी। दक्षिणसे बहनेवाले मलयानिलसे युक्त चैत्र और वैसाखके समान समस्त जीव-लोकके हृदयोंको आनन्दित करने-वाले दोनों राज-कुमार भण्डिके साथ अत्यन्त शोभित हुए। प्रजाओंके आनन्दके साथ, मानो एक नये (तीसरे) भाईके साथ[2] बढ़ते हुए वे दोनों युवावस्थामें उतरे। उनकी जाँघ स्तम्भ की तरह दृढ़ थीं, उनके प्रकोष्ठ[3] चौड़े थे; उनकी भुजायें अर्गल की तरह लम्बी थीं। उनके वक्षःस्थल कवाटकी तरह विशाल थे, वे लम्बे साल वृक्षकी तरह सुन्दर थे, वे महानगरके स्थानकी तरह सभी लोगोंको आश्रय देनेमें समर्थ थे।

चन्द्र और सूर्यकी तरह फैलती हुई कीर्ति-चन्द्रिका तथा प्रतापसे सभी भुवनोंको आक्रान्त करते हुए वे अभिराम और दुर्निरीक्ष्य थे। अग्नि और पवनकी[4] तरह तेज और बल अभि व्यक्त करते हुए वे एक हो गये थे। हिमालय और विन्ध्यकी

१. घिसे हुए कुठारके अवशिष्ट कङ्कणसे।
२. "आनन्देनाग्रजेनेव"—रघु० दस ७८।
३. कोहनीके नीचेका भाग; फाटकके पासकी कोठरी।
४. "वायु अग्निका सहज सहकारी है"—मल्लिनाथ रघु० दस ८२।

तरह वे अचल थे और उनके शरीर शिला-कठिन[1] थे। महावृषों की तरह वे कृत-युग (वहन करने) के योग्य थे। अरुण और गरुड़की तरह घोड़ेपर चढ़नेसे उनके शरीर सुविभक्त हो गये[2] थे। इन्द्र और विष्णुकी तरह वे नागेन्द्र-गत थे[3]। कर्ण और अर्जुन की तरह वे कुण्डल और किरीट धारण करते थे। पूर्व और पश्चिम दिशाकी तरह वे सभी तेजस्वियोंका[4] उदय और अस्त सम्पादन करनेमें समर्थ थे। अत्यन्त अभिमानके कारण वे मानो समीपवर्ती समुद्र-तटरूपी अर्गलके निरोधसे संकुचित पृथ्वीरूपी क्षुद्र-कुटीरमें समा नहीं रहे थे। तेजसे विमुख अपनी परिछाहींकी भी उन्होंने निन्दा की। पैरोंके नखोंमें पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बसे भी वे लज्जित हुए। केश-भङ्गिसे भी वे दुःखी हुए। चूड़ामणिमें प्रतिबिम्बित द्वितीय आतपत्रसे भी वे लज्जित हुए। भगवान् कार्तिकेयके लिए प्रयुक्त होनेवाले स्वामी-शब्दसे भी उनके कानोंमें क्लेश हुआ। दर्पणमें प्रतिबिम्बरूपी प्रतिपक्षी को भी देखकर उनकी आँखोंमें पीड़ा हुई। सन्ध्योपासनमें हाथ जोड़नेमें भी उनके शिरमें दर्द होता था। जलधर द्वारा धनुष धारण किये जानेसे भी उसके हृदयमें वेदना होती थी। चित्रमें प्रणाम नहीं करनेवाले राजाओं से भी उनके चरण संतप्त हुए।

---

१. शिलाओंसे कठिन; शिलाओंके समान कठिन।

२. अरुण और गरुड़की तरह सूर्य और विष्णुका वहन करनेके लिये उनके शरीर बँटे थे।

३. इन्द्र नागेन्द्र (श्रेष्ठ हाथी) पर चढ़ता है और विष्णु नागेन्द्र (शेष) पर सोता है। राज-पुत्र भी नागेन्द्र (श्रेष्ठ हाथी) पर चढ़ते थे। अथवा उनकी चाल नागेन्द्रकी सी थी।

४. तेजस्वी ग्रह, तेजस्वी पुरुष।

परिमित मंडलमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले सूर्यके तेजको भी उन्होंने कुछ अधिक नहीं समझा। भूभृत् द्वारा जिसकी लक्ष्मी अपहृत हो गई थी ऐसे सागरका भी उन्होंने उपहास किया। बलवान् किन्तु अकृत-विग्रह[1] पवनकी भी उन्होंने निन्दा की। हिमालयके लिए भी चमरीके पुच्छरूपी व्यजन डुलाए जानेसे वे जल उठे। समुद्रके शङ्खोंसे भी वे खिन्न हुए। चारों समुद्रोंके दूसरे अधिपति वरुणको भी वे न सह सके। जिन अवनिपालोंके छत्र नहीं छीने गये थे उन्हें भी उन्होंने छाया[2]-रहित किया। सज्जनोंके ऊपर बिना सेवाके ही प्रसन्न होकर वे मुखसे मधु बरसाते थे[3]। दूर-स्थित दुष्ट राज-वंशों[4]को भी उन्होंने अपनी प्रतापाग्निसे म्लान किया। उनके कर-तल प्रतिदिनके शस्त्राभ्यास की कालिमासे चिह्नित हुए, मानो सभी राजाओंकी प्रतापाग्नि शान्त करनेसे मलिन हो गये। अभ्यास करते समय उनके धनुषोंसे गम्भीर ध्वनि निकलती थी, जान पड़ता था जैसे तत्क्षण उपभोग करने के बाद वे दिग्वधुओंके साथ आलाप कर रहे हों। इस तरह राज्यवर्धन और हर्षवर्धनकी ख्याति समूची पृथ्वीमें फैल गई। अल्प कालमें ही वे दूसरे-दूसरे द्वीपोंमें भी प्रकाशित हुए।

भोजन करनेके बाद भीतर जाकर पिताने एक दिन दोनों पुत्रोंको बुलवाया और स्नेहपूर्वक कहा—"वत्स' राज्यके अङ्ग

---

१. शरीर-रहित या युद्ध नहीं करनेवाले।

२. छायाका दूसरा अर्थ 'कान्ति' है।

३. विरोधमें—सज्जनोंके ऊपर बिना मदिरा पिये ही वे मुखसे मदिरा बरसाते थे।

४. बाँस।

सद्भृत्य दुर्लभ हैं। प्रायः परमाणुओंकी तरह क्षुद्र व्यक्ति समवायमें अनुकूल होकर पार्थिव द्रव्य उत्पन्न करते हैं[1]। जिस तरह (खेलमें) बालक मोरको नचाते हैं, उसी तरह क्रीड़ाकी रुचिसे धूर्त (अबोध नृपको) नचाते हैं। जिस तरह दर्पणके भीतर घुसकर पल्लव अपनी आकृति प्रतिबिम्बित करते हैं, उसी तरह (राजाके) भीतर प्रवेश कर धूर्त अपना स्वभाव आरोपित करते हैं। स्वप्नोंकी तरह वंचक लोग मिथ्या-दर्शनोंसे[2] असद्-बुद्धि उत्पन्न करते हैं। उपेक्षित वातरोगकी तरह उपेक्षित धूर्त गीत द्वारा, नृत्य द्वारा और हास्यद्वारा उन्मत्तता ले आते हैं। आकाश-चारी प्यासे चातकोंकी तरह तृष्णावान्, और अकुलीन व्यक्ति गृहीत नहीं हो सकते। जिस तरह धीवर मानसरोवरमें चलती मछलीको पकड़ लेते हैं उसी तरह धूर्त मनमें स्फुरित होते अभिप्रायको जान लेते है। यम-पट[3] दिखानेवालोंकी तरह धूर्त अम्बरमें चित्र लिखते हैं[4]। तीक्ष्ण तीरोंकी तरह हठी याचक हृदयमें पीड़ा पहुँचाते हैं।

इसीलिए हमने मालवराजके पुत्र, कुमारगुप्त और माधवगुप्त, दोनों भाइयोंको आपके अनुचर नियुक्त किये हैं, वे सभी दोषों के सम्पर्कसे रहित हैं। बहुत उपायोंसे उनकी परीक्षा की गई है। वे पवित्र, विनीत, पराक्रमी और सुन्दर हैं। मेरी भुजाओं

१. समवाय और द्रव्य न्याय-वैशेषिकके शब्द हैं, जो परमाणुओंके पक्षमें लागू होंगे। क्षुद्र व्यक्तिके पक्षमें :—समवाय = मन्त्रणा और द्रव्य = धन। २—झूठे शास्त्र, झूठी वस्तु दिखाकर।

३. जिसपर सपरिवार यमराजका चित्र रहता है।

४. वस्त्रपर; आकाशमें चित्र बनाते हैं अर्थात् अनहोनी बातें करते हैं।

की तरह वे दोनों हमारे शरीरसे अभिन्न हैं। आपको भी इनके साथ अन्य परिजनोंके समान वर्ताव नहीं करना चाहिए।" इतना कह दोनोंको बुलानेके लिए उसने प्रतिहारको आदेश दिया।

कुछ ही देरमें राज्यवर्धन और हर्षने, जिनकी आँखें द्वारकी ओर लगी थीं, (माधवगुप्तके) बड़े भाई कुमारगुप्तको प्रतिहार के साथ भीतर आते देखा। कुमारगुप्त अठारह वर्षका था। वह न तो बहुत ऊँचा था और न बहुत नाटा ही। अपने अत्यन्त भारी पगोंसे वह अनेक राजाओंके यहाँ जानेवाली चञ्चल पृथ्वी को मानो निश्चल कर रहा था। उछलनेका अनवरत अभ्यास करने से घनी वृद्धिके कठिन मांससे उसकी दोनों जाँघें पुष्ट थीं, इन जाँघोंसे निकले हुए घुटनोंकी हड्डियाँ ऊपर उठी हुई नहीं थीं; और घुटनोंसे निकली हुई टाँगें पतली थीं। जैसे सुरासुरों द्वारा घुमाये गये वासुकिके घर्षणसे मन्दराचलका मध्यभाग क्षीण हो गया था, उसी तरह उसकी कमर पतली दीखती थी। अति विस्तीर्ण वक्षःस्थल द्वारा वह मानो अपरिमित स्वामि-सम्मान के लिए स्थान दे रहा था। लम्बी भुजाओंके ललित सञ्चालनसे वह मानो अति दुस्तर यौवन-सागरको पार कर रहा था। उसका मोटा प्रकोष्ठ चापके घावकी दागसे चिह्नित था, जिसपर बाएँ हाथके वलयकी किरणें इस तरह पड़ रही थीं, जैसे बाहर निकलती हुई प्रतापाग्निकी शिखाएँ हों। उसके ऊँचे कंधे पर कर्ण-फूलकी मणिकी कुछ-कुछ लाल प्रभा फैल रही थी, जैसे शस्त्र-ग्रहण व्रत (के पालन) में धारण की गई रुरु मृगकी त्वचा लटक रही हो[1]। उसके कपोलके भीतर ऊपर उठी नोकोंवाले

१. क्षत्रिय ब्रह्मचारी कंधेपर रुरु मृगका चर्म धारण करते हैं।

केयूर[1] पर चित्रित प्रतिमा प्रतिबिम्बित हो रही थी; जान पड़ता था जैसे चन्द्रमाके हृदयमें रहनेवाली रोहिणी हो। अचपल एवं स्थिर पुतलियोंवाली नीचे झुकी आँखोंसे वह मानों कमलोंको, जो लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये अपने मुखोंको ऊपर उठाये रहते हैं, विनय सिखा रहा था। वह अम्लातक नामक फूलको, मानों स्वामीके प्रति अपने अनुरागको, आभूषण बनाकर शिरपर धारण किये था। कङ्कणोंके[2] निर्दयतापूर्वक तोड़े जानेके भयसे भीत होकर सभी धनुषों द्वारा मानो अर्पित की गई नम्रताको वह प्रकाशित कर रहा था। शैशवमें ही उसने इन्द्रिय रूपी शत्रुओं-को जीतकर वशमें कर लिया था। वह प्रणयिनी-सदृश विश्व-सनीय कुलीनता के अनुसार चलता था। आनन्ददायक शीलसे वह तेजस्वी उसी तरह विराजमान था, जैसे अन्तर्गत चन्द्रमासे सूर्य शोभित है। शरीरकी कर्कशतामें वह मानो पर्वतको भी मात कर रहा था। वह इतना सुन्दर था कि उसने मानो अपनी दृष्टिसे ही लोगोंको खरीदकर आनन्दके हाथमें बेच दिया।

उसके पीछे पीछे उसका छोटा भाई माधवगुप्त चल रहा था। अत्यन्त लम्बा और गोरा होनेके कारण वह मनःशिलाके शैलके समान लगता था। (उसके शिरपर शोभित) मालती फूलोंके अनुन्नत शेखरके बहाने (संसारमें फैलनेकी इच्छासे) बाहर निकलता हुआ उसका महान् यश, बिदा होते हुए गुरु-जनकी तरह, उसके शिरका मानो चुम्बन कर रहा था। उस (माधवगुप्त) में परस्पर विरोधी विनय और यौवनका चिर-कालके बाद प्रथम समागम हुआ, यह मानो उसकी परस्पर

१. भुजबन्ध, बाजूबन्द।

२. धनुषका वलय।

मिलती (जुटती) भौंहोंसे प्रकट हो रहा था। वह स्वामिभक्तिके सदृश निश्चल-दृष्टि को छातीमें गड़ाये हुए था। अत्यन्त शुभ्र चन्दन-रसके अनुलेपसे शीतल तथा हाररूपी उपधानसे युक्त उसकी छाती, अनन्त सामन्तोंके यहाँ जानेसे श्रान्त लक्ष्मी (के विश्रामके लिए) की, चन्द्रकान्तमणि-शिला-फलकोंकी विशाल शय्याके समान थी। मृगोंने उसे नेत्र, वराहों ने लम्बी नाक, महिषोंने चौड़ा कन्धा, बाघोंने प्रकोष्ठ, सिंहोंने पराक्रम और हाथियोंने गमन (चाल) दिया था; मानो मृगयासे बचे हुए और डरे हुए जानवरोंने उसे घूस दिया था।

भीतर आकर दूरसे ही चारों अंगों और मस्तकसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए दोनोंने नमस्कार किया। तब वे नरेन्द्रकी स्नेहभरी दृष्टिसे दिखाये गये उचित स्थानपर बैठ गये। एक मुहूर्त ठहरकर राजाने उन्हें आदेश दिया—"आजसे आप लोग दोनों कुमारोंका अनुसरण करें"। "देव जैसी आज्ञा दें" इतना कह, आसनसे उठकर पृथ्वीपर दोलायमान मस्तकसे उन दोनोंने राज्यवर्धन और हर्षको प्रणाम किया और इन दोनोंने भी अपने पिताको। उस समयसे निमीलन और उन्मीलनके समान एक क्षणके लिए भी वे कुमारोंकी आँखोंसे ओझल नहीं हुए, उच्छ्वास और निःश्वासके समान दिन-रात उनके सन्मुख रहे और भुजाओंके समान सदा उनके पास रहे।

अनन्तर नृत्य, गीत आदिमें निपुण सखियों एवं सभी कलाओंसे राज्यश्रीका परिचय दिन दिन बढ़ने लगा। वह भी धीरे धीरे बढ़ने लगी और कुछ ही दिनोंमें युवती हो गई। जैसे एक ही लक्ष्य-स्थानपर सभी राजाओंके तीर गिरते हैं, वैसे ही केवल उसीपर सभी राजाओंकी दृष्टि पड़ी। दूतप्रेषण आदिसे राजाओंने उसकी याचना की।

एक दिन राजा अन्तःपुरके प्रासादमें बैठा था कि उसने बाहरी कोठरीमें स्थित एक पुरुषके द्वारा अपने प्रसङ्गमें गाई जाती एक आर्या सुनी—

"जिस प्रकार प्रतिवर्ष पयोधरोंके उठनेके समय बढ़ती हुई नदी अपने तटको बड़े आवर्तमें गिराती रहती है उसी प्रकार पयोधरोंके उठनेके समय बढ़ती हुई कन्या प्रतिवर्ष पिताको शोकके बड़े भंवरमें गिराती रहती है ॥५॥"

यह सुन परिजनोंको हटाकर राजाने पासमें बैठी महारानीसे कहा—"देवि, वत्सा राज्यश्री तरुणी हो गई। इसके गुणोंकी भाँति इसकी चिन्ता मेरे हृदयसे एक क्षण भी नहीं हटती। जब कन्याओंकी जवानी शुरू होती है, तब सन्तानरूपी अनलमें पिता इन्धन हो जाते हैं। जिस तरह पयोधरोंकी उन्नति दिवसको अन्धियाला कर देती है, उसी तरह इसके पयोधरोंकी उन्नति मेरे हृदयको चिन्तामग्न कर रही है। अङ्गोंसे उत्पन्न, अङ्कमें लालित, अपरित्याज्य अपत्योंको हठात् ही आकर अपरिचित व्यक्ति ले जाते हैं, यह नियम जिस किसीने बनाया हो मुझे पसन्द नहीं। निश्चय ही यह संसारके कलंक-स्थान हैं। संतान समान होनेपर भी दुहिताके जन्म होनेपर सज्जन दुःखी होते हैं, शोकाग्निकी यह दाह-शक्ति सभीको पीड़ित करती है। इसीलिये तो सज्जन जन्म-कालमें ही कन्याओंको आँसुओंसे जल देते हैं[1]। इसी भयसे तो मुनि लोग अविवाहित ही घर-बार छोड़कर शून्य अरण्यका आश्रय लेते हैं। कोई भी अपत्यका विरह नहीं सह सकता।

१. मृत्युके बाद ही जलाञ्जलि दी जाती है, किन्तु सज्जन कन्याओंको जन्म-कालमें ही अश्रु-जल देते हैं।

जैसे जैसे वरोंके दूत आते हैं, वैसे वैसे यह बेचारी चिन्ता मानो लज्जित होकर मेरे हृदयके भीतर घर करती जाती है। क्या किया जाय ? तथापि गृहस्थोंको लोकाचारका अनुसरण करना ही पड़ता है। वरके अन्य गुणोंके रहनेपर भी बुद्धिमान् प्रायः अच्छे कुलको ही खोजते हैं। राजाओंके शिरपर स्थित मौखरि-वंशको सकल भुवन उसी तरह नमस्कार करते हैं, जैसे पर्वतके शिखरपर स्थित शिवके पद-चिह्नको। उस वंशके भी तिलक-स्वरूप अवन्तिवर्माका अग्रज पुत्र पृथ्वीपर अवतीर्ण सूर्यके समान है। वह अपने पिताके समान गुणवान् है और इसकी याचना करता है। यदि आपकी भी सम्मति हो, तो मैं उसे (कन्या) देना चाहता हूँ।" पतिके इतना कहने पर महारानीका हृदय दुहिताके स्नेहसे कातर हो गया, आँखोंमें आँसू आगये। उसने उत्तर दिया—"आर्यपुत्र, कन्याओंकी माताएँ धाईके समान केवल लालन-पालनके लिये उपयोगी होती हैं। कन्यादानके अधिकारी पिता हैं। केवल अनुकम्पाके कारण दुहितृ-स्नेह पुत्र-स्नेहसे बहुत बढ़कर है। आर्यपुत्र ही वैसा (करना) जानते हैं, जिससे हमें आजीवन मानसिक पीड़ा न हो।"

कन्या-दानके विषयमें निश्चय हो जानेपर पिताने पुत्रोंको भी बुलाकर अपना अभिप्राय विदित किया। ग्रहवर्मा द्वारा कन्या-दानके लिए प्रेषित प्रधानदूत-पुरुष पहले ही आ चुका था। शुभ-दिवसमें समस्त राजकुलके सामने राजाने उसके हाथमें कन्या-दानका जल गिराया। (आनेका) प्रयोजन सिद्ध होनेपर वह (दूत) प्रसन्नतापूर्वक लौट गया।

ज्यों ज्यों विवाहके दिवस निकट आये, राजकुल उज्ज्वल, रमणीय, औत्सुक्य-प्रद और मङ्गलमय होता गया। उदारतापूर्वक वितरण किये गये पान, सुगन्धियों और फूलोंसे सभी लोग

अलङ्कृत हुए। सभी देशोंसे शिल्पि-समूह बुलाये गये। राज-पुरुषोंने सभी ग्रामीणों द्वारा लाई गई सामग्रियोंको ग्रहण किया। राज-द्वारपाल अनेक नृपोंके उपायन (राजाके) निकट ले आये। राजाके प्रिय-पात्र निमन्त्रण पाकर आये हुए बन्धुओंकी सेवामें व्यग्र थे। मदिरासे माते हुए प्रचण्ड चर्मकार हाथोंमें कोण लेकर जोर जोरसे मङ्गल-पटह बजा रहे थे। पानीमें घुले हुए चावल आदिके चूर्णमें डुबोई पांचों अंगुलियोंसे उखली, मुसल, शिला आदि वस्तुएं मंडित की जा रही थीं। सभी दिशाओंसे आये हुए झुण्डके झुण्ड चारणोंसे प्रकोष्ठ भर गये, जहाँ इन्द्राणी देवताकी प्रतिमायें प्रतिष्ठित की जा रही थीं। उजले फूलों, लेप और वस्त्रोंसे सत्कृत सूत्रधारोंने विवाह-वेदीका सूत्र-पात किया। हाथोंमें ऊपर-उठी कूची लेकर और कन्धोंपर चूनेके बर्तन लेकर सीढ़ीपर चढ़े हुए लोग प्रासादके शिखर और प्रतोली (गली) के प्राकार-शिखरको धवल कर रहे थे। यौतक-(दहेज) के लिए निरूपित किये जाते हुए घोड़ों और हाथियोंसे आंगन तरंगित थे। गणनामें लगे हुए गणकगण लग्नके गुणोंका विचार कर रहे थे। सुगन्धित जल बहानेवाली और मकरमुखकी आकृतिसे युक्त नलियोंसे वापी-समूह भर रहे थे। सुवर्णकारोंने सोना गढ़ना शुरू कर दिया था, जिसके टङ्कारसे बाहरी कमरे गूँज उठे। नई दीवारें उठाई गई थीं, जिनसे गिरते हुए बालूसे लिप्त होकर आलेपक लोग व्याकुल हो रहे थे। चतुर चित्रकार-गण माङ्गलिक चित्र बना रहे थे। लेप्यकार लोग मिट्टीके मीन, कूर्म, मकर, नारियल, कदली और पूगके वृक्ष बना रहे थे। क्षितिपालोंने स्वयं कमर कसकर तरह तरहके काम आरम्भ कर दिये। वे स्वामीद्वारा सौंपे गये कार्यको सुन्दरतापूर्वक सम्पादित करनेमें व्यग्र थे। उन्होंने सिन्दूरसे रंगी मणिमय-

भूमिको चिकना बनाया और विवाह-वेदीके स्तम्भ उठाये, जिनपर मङ्गल-लेपसे आर्द्र हाथ रखे गये, जो अलक्तक लगाकर लाल किये गये और जिनके शिखर आम तथा अशोकके पल्लवोंसे अलंकृत हुए। सूर्योदयसे ही सामन्तोंकी स्त्रियाँ राज-कुलमें घुसकर सर्वत्र व्याप्त हुईं। वे सती, सौभाग्य-शालिनी, सुन्दरी, सुन्दर वेशवाली और अविधवा थीं, उनके ललाट सिन्दूरसे शोभित थे। वधू और वरका नाम ले ले कर उन्होंने श्रुति-सुखद मङ्गल-गीत गाये। नाना प्रकारके रंगोंसे लिप्त अंगुलियोंसे उन्होंने गलेमें पहननेके सूत रँगाये। उनमेंसे रंग-बिरंगी पत्र-लतायें बनानेमें कुशल स्त्रियोंने धवल कलशों और मिट्टीके कच्चे वर्तनोंको मण्डित किया। उन्होंने अविदीर्ण पुटोंकी कपासकी रूईको तथा वैवाहिक कङ्कणके लिए ऊनके सूतोंको रंगा। उन्होंने बलाशन नामक ओषधिके घृतसे गीले कुङ्कुम-पङ्कसे मिश्रित अङ्गराग और लावण्य बढ़ानेवाले मुख-लेप बनाये। उन्होंने कक्कोलोंसे मिश्रित, जाती फूलोंसे युक्त और स्फटिक-सदृश चमकीले बड़े बड़े कपूरके टुकड़ोंसे बीच बीचमें खचित लवङ्ग-मालाएँ बनाईं। हजारों इन्द्रधनुषोंके समान चमकते हुए क्षौम[1] बादर,[1] दुकूल, लालातन्तुज,[1] अंशुक और नेत्र जातिके वस्त्रोंसे राजकुल सभी ओर ढका था। ये वस्त्र साँपकी केंचुलीके समान थे। नई कदलीके भीतरी भागके समान कोमल थे। साँसोंमें डुलते थे और स्पर्शसे ही जाने जा सकते थे। भाँति भांतिके कपड़े बनाने में प्रवीण बूढ़ी पुरवासिनी पुरंध्रियाँ कपड़े बिन रही थीं और बिन चुकी थीं। आचारमें

---

१. क्षौम = सनका बना हुआ वस्त्र, बादर = कपासकी रूईका बना हुआ वस्त्र, लालातन्तुज = मकड़ेके जालका बना हुआ वस्त्र।

चतुर अन्तःपुरकी बूढ़ी स्त्रियां उन्हें रंग रही थीं और रंग चुकी थीं। दोनों छोरोंमें लगे परिजन वस्त्रोंको छायामें हिला हिलाकर सुखा रहे थे और सुखा चुके थे। कुञ्चित किये जानेपर ये वस्त्र पल्लवके समान शोभित होते थे। कुछ लोगोंने कुंकुम-पङ्कसे रंगना आरम्भकर दिया था। कुछ नौकर हाथोंको उठाकर भङ्गुर उत्तरीयको मोड़ रहे थे। पलंगपरकी उजली चादरें हंसोंको मातकर रही थीं; ताराओंके समान मोतियोंसे चोलियाँ अलंकृत की जा रही थीं; अपरिमित पट्ट-वस्त्र अनेक कामोंके लिये काटे जा रहे थे; तत्क्षण रंगे गये कोमल दुकूलोंसे चँदोवे चमक रहे थे; वस्त्र-पुञ्जोंसे मण्डपोंकी समस्त छतें निरन्तर ढकी जा रही थीं; चित्रित रेशमी वस्त्रोंसे खम्भे मढ़े जा रहे थे; इन सबोंसे राजकुल उज्ज्वल रमणीय, औत्सुक्य-प्रद और मङ्गलमय लगता था।

देवी यशोवतीका मन विवाहके उत्सवमें व्याकुल था। उसका हृदय स्वामीमें, कुतूहल जामातामें, स्नेह दुहितामें, उपचार निमन्त्रित स्त्रियोंमें, आदेश परिजनमें, शरीर चलनेमें, आँख कृताकृतके देखनेमें, और आनन्द महोत्सवमें था; इस प्रकार एक होनेपर भी वह मानो बहुधा विभक्त थी। राजा भी जब तब (विविध-वस्तु-वाहिनी) ऊँटनीको भेजकर जामाताको आनन्दित करता था। यद्यपि आज्ञा-संपादनमें दक्ष परिजन (उसका) मुख देखते रहते थे, तो भी दुहितृ-स्नेहसे विह्वल राजा अपने पुत्रोंके साथ स्वयं ही सब कुछ कर लेता था।

इस प्रकार यह राजकुल मानो अविधवामय हो गया। जीवलोक मानो मङ्गलमय हो गया। दिशायें मानो चारणमय हो गईं। अन्तरिक्ष मानो पटहमय हो गया। परिजन मानो भूषणमय होकर घूमने लगे। सृष्टि मानो बान्धवमय दिखाई

। समय मानो सुखमय दिखाई पड़ा। महोत्सव मानो शोभामय होकर बढ़ने लगा। सुखका निधान-सा, जन्मका फल सा, पुण्यका परिणाम-सा, विभूतिका यौवन-सा, प्रीतिका यौवराज्य-सा और मनोरथका सिद्धि-समय-सा उपस्थित हुआ। तब लोगोंकी अंगुलियोंसे मानो गिना जाता हुआ, मार्गकी ध्वजाओंसे मानो देखा जाता हुआ, माङ्गलिक वाद्योंकी प्रतिध्वनिसे मानो आगे जाकर अभिनन्दित होता हुआ, ज्योतिषियोंसे मानो बुलाया जाता हुआ, मनोरथोंसे मानो आकृष्ट होता हुआ, वधू-सखियोंके हृदयोंसे मानो आलिङ्गित होता हुआ, विवाहका दिन आ गया। प्रातःकाल ही प्रतिहारोंने सभी बाहरी आदमियोंको हटाकर राजकुलको खाली कर दिया।

अनन्तर प्रतीहारीने राजाके समीप भीतर जाकर कहा—"देव, जामाताके निकटसे पारिजातक नामक ताम्बूल-वाहक आया है।" इतना कहकर उसने सुन्दर आकृतिका एक युवक दिखाया। राजाने जामाताके प्रति अतिशय आदरके कारण दूरसे ही उसके प्रति भी आदर प्रकट करते हुए पूछा—"बालक, ग्रहवर्मा सकुशल तो हैं?" राजाका शब्द सुनकर वह कई कदम दौड़कर निकट चला आया और अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर उस सेवा-चतुरने देर तक पृथ्वीपर मस्तक रखा और उठकर निवेदन किया—"देव जैसी आज्ञा हो, वे सकुशल हैं। और नमस्कारसे देवकी पूजा करते हैं।" यह जामाताका आगमन निवेदन करने आया है, ऐसा जानकर राजाने संदेश दिया—'रातके प्रथम प्रहरमें विवाहका समय बीत जानेपर (जिससे) दोष नहीं हो', यह संदेश देकर उसे वापस भेज दिया।

अनन्तर सकल कमलोंकी श्रीको बधूके मुखमें संचारित करनेके बाद दिवसका अवसान हुआ। विवाह-दिवसकी लक्ष्मीके पादपल्लवके समान सूर्य लाल हो गया। वधू और वरके अनुराग के सामने चक्रवाक-मिथुनोंका प्रेम तुच्छ हो गया, अतः लज्जित होकर वे एक दूसरेसे अलग हो गये। लाल रेशमके समान सुकुमार संध्या-राग आकाशमें इस तरह चमकने लगा, जैसे सौभाग्य-ध्वजा फहरा रही हो। कपोत-कण्ठके समान रंग-विरंगा अन्धकार दिशाओंको इस तरह कलुषित करने लगा, जैसे बारातके आनेसे उठी हुई धूल हो। ज्योतिर्गण[1] मानो लग्न सम्पादनके लिए सज्जित हो उठने लगे। उदयाचलने बढ़ती हुई धवल कान्तिवाले चन्द्रमण्डलको विवाहके मङ्गलकलशकी भांति ऊपर फेंक दिया। वधू-वेदनके लावण्य-ज्योत्स्नाने ही सध्याकालीन अंधकारको पी लिया था। अतः कुमुदगण अपने मुखोंको ऊपर उठाकर वृथा उदित चन्द्रका मानो उपहास कर रहे थे। ऐसे ही समयमें ग्रहवर्मा, जिसका (विवाह) लग्न समीप था, आ रहा था। उसके आगे आगे पैदल चलनेवाले लोग दौड़े जा रहे थे, जो बार बार अत्यन्त चमकीले लाल चँवर चला रहे थे; मानो आगे आगे (मूर्त्त) मनोरथ दौड़े जा रहे थे। जिनके अनुरागके अग्र-पल्लव निकल आये थे। इन जानेवालोंसे तथा घोड़ोंसे, जिनका स्वागत राजधानीके घोड़ोंने प्रतिहेषितोंसे[2] किया, दिशाएँ भरी हुई थीं। घंटाओंके बजानेवाले बलवान् हाथियोंके झुण्डोंसे— जिनके कानोंपर चँवर चल रहे थे, जिनके सभी उपकरण सोनेके

१. नक्षत्रगण, गणक।

२. बारातके घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनकर उत्तरमें राजधानीके घोड़ोंका हिनहिनाना।

बने थे, और जिनके ऊपर रंगीन वस्त्र लटक रहे थे—वह (ग्रहवर्मा) चन्द्रोदयसे विलीन हुए अन्धकारको मानो फिरसे ला रहा था। सत्ताईस मोतियोंकी मालासे मण्डित मुखवाली हथिनीपर चढ़ा हुआ वह इस तरह शोभित था, जैसे नक्षत्र-मालासे अलंकृत पूर्व दिशामें चन्द्रमा विराजमान हो। जिस तरह बाल वसन्तके उपवनोंमें भाँति भाँतिके पक्षी कलरव करते हैं, उसी तरह उसके आगे आगे जानेवाले चारण तालके साथ आलाप करते हुए कोलाहल कर रहे थे। जिनमें सुगन्धित तैल ढाला गया था, ऐसे दीपोंके सुगन्धित आलोकसे, मानों कुंकुमकी पटवास-धूलिसे वह समस्त जगत्‌को पीलाकर रहा था। जिस (शिरपर) का कुसुम-शेखर विकसित मल्लि-काओंकी मुण्डमालाके मध्य रखा हुआ था ऐसे शिरसे वह चन्द्र तथा चन्द्रमण्डल सहित चान्दनी रातका मानो उपहास कर रहा था। उसके रूपसे पराजित किये गये कामदेवके हाथसे छीने गये (पुष्प) धनुषके समान फूलोंके हारसे उसे वैकक्ष्यकी शोभा मिल रही थी। फूलोंके सौरभके उल्लाससे मँड़राते हुए भ्रमर-वृन्दके मधुर गुञ्जनसे वह ऐसे मनोहर लगता था जैसे (स्वर्गका) पारिजात वृक्ष हो, जो लक्ष्मीके साथ फिरसे पृथ्वीपर उतरा हो। नई वधूका मुख देखनेके कुतूहलसे उसका हृदय मानो खिच रहा था और वह मुंहके भर गिर रहा था।

जब वह द्वारके समीप आया तब पुत्रों तथा राज-वृन्दके साथ राजा पैदल ही उससे मिलने गया। नीचे उतरकर उसने प्रणाम किया और राजाने अपनी भुजाओं को फैलाकर, जैसे वसन्त ऋतु कामदेवका आलिङ्गन करे, वैसे ही उसका गाढ़ आलिङ्गन किया। उस (ग्रहवर्मा) ने क्रमपूर्वक राज्य-वर्धन

और हर्षका आलिङ्गन किया। तब राजा उसका हाथ पकड़कर उसे भीतर ले गया और अपने ही समान आसन देकर तथा अन्य उपचारोंसे उसकी पूजाकी।

कुछ ही देरमें गम्भीर नामक एक विद्वान् द्विजने, जो राजाका स्नेही था, ग्रहवर्मासे कहा—"तात, तुम्हें पाकर राज्य-श्रीने चन्द्र-वंश और सूर्य-वंशके समान तेजस्वी पुष्पभूति-वंश और मौखरि-वंशको, विद्वानोंके कानोंको आनन्द देनेवाले[1] जिनके गुण समस्त जगत् में गाये जा रहे हैं, मिला दिया। पहलेसे ही अपने गुणोंसे राजाके हृदयमें वैसे ही स्थित हो, जैसे कि विष्णुकी छातीपर कौस्तुभमणि। अब तो राजा द्वारा वैसे ही शिरोधार्य हो, जैसे कि शिवके द्वारा चन्द्र।

इस प्रकार वह बोल ही रहा था कि राजाके समीप आकर गणकोंने कहा—"देव, लग्नकी वेला निकट है। जामाता कौतुक-गृह जायँ।" राजाके द्वारा "उठो, जाओ" कहे जानेपर ग्रह-वर्माने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वहाँ जामाताके दर्शनार्थ उत्कण्ठित स्त्रियोंकी विकसित नील-कुवलय वनके समान हजारों आँखें पड़ी थीं, जिन्हें लाँघता हुआ वह कौतुक-गृहके द्वारपर पहुँचा और अपने परिजनोंको हटाकर भीतर गया।

अनन्तर उसने वहाँ कतिपय विश्वस्त प्रिय सखियों तथा प्रायः स्त्री स्वजनोंसे घिरी हुई वधूको देखा। अरुण अंशुकसे अवगुण्ठित मुखवाली वधू प्रभात-संध्याकी भाँति प्रदीपोंको प्रभा-हीन कर रही थी। अति सुकुमारताकी आशंकासे यौवनने उसका अति गाढ़ आलिंगन नहीं किया था। भयसे दबाये गये

१. "(चन्द्र-पुत्र) बुध और (सूर्य-पुत्र) कर्णको आनन्द देनेवाले।" यह अर्थ चन्द्र-वंश और सूर्यवंशके पक्षमें लागू होगा।

हृदयसे कष्टपूर्वक छोड़ी गई गुप्त लम्बी साँसोंसे वह मानो अलग होते कुमारभावके लिए शोक कर रही थी। उस अत्यन्त काँपती हुईको लज्जाने, मानो गिरनेके भयसे, निश्चलतापूर्वक पकड़ रखा था। भयसे काँपते चित्तसे वह कमलके प्रतिद्वन्द्वी आसन्नग्रहण[1] हाथको वैसे ही देख रही थी, जैसे आसन्नग्रहण चन्द्रको रोहिणी देखती है। उसकी तनु-लता चन्दनके समान धवल थी; मानो वह कुमुदिनीके गर्भसे, जिसका लावण्य ज्योत्स्नादानसे सञ्चित हुआ था, उत्पन्न हुई थी। वह कुसुमोंके आमोदसे (मन) हरण करती थी, मानो वह वसन्तके हृदयसे निकली थी। वह साँसोंके परिमलसे मधुकर-कुलोंको आकृष्ट करती थी, मानो वह मलय-मारुतसे उत्पन्न हुई थी। वह कामदेवके अनुसार चलती थी, मानो फिरसे रति होकर उत्पन्न हुई थी। कौस्तुभ, चन्द्र, मदिरा, पारिजात और अमृत आदि रत्नोंसे उत्पन्न होनेवाले प्रभा, लावण्य, मद, सौरभ और माधुर्य आदि गुणोंसे सुरासुरोंके प्रति क्रुद्ध समुद्र द्वारा बनाई गई वह मानो एक दूसरी ही श्री थी। स्नेही बालिकाओंने मोतियोंकी किरणोंके समान सिन्धुवार फूलोंकी श्वेत मञ्जरियोंसे उसके कानोंके अवतंस बनाये थे। कानोंके आभरणोंकी मरकत मणियोंकी प्रभासे हरे शाद्वलकी[2] भाँति दीखनेवाले कपोलस्थलोंसे वह आँखोंकी मनोहर कान्तिको दूर हटा रही थी[3]। वह (लज्जावश) अपना मुँह नीचे किये हुए थी, वरके कौतुक देखनेमें व्याकुल सखियाँ बार बार उसका मुँह ऊपर उठानेकी

१. जिसका ग्रहण निकट है।

२. हरी घासोंसे युक्त स्थान।

३. अथवा, वह हरिणकी आँखोंका विनोद कर रही थी

कोशिश कर रही थीं; और वह (ढीठ) सखियों तथा अपने (लज्जाशील) हृदयकी भर्त्सना कर रही थी।

जैसे ही वह हृदय-चोर भीतर घुसा कि वधूने उसे कामदेवके हवाले कर दिया। परिहाससे मुसकुराती स्त्रियोंद्वारा कौतुक-गृहमें जो कुछ कराया जाता है, जामाताने वह सब अति दक्षता-पूर्वक किया। परिणयके अनुरूप सुसज्जित वधूको हाथसे पकड़ कर वह बाहर निकला और नये चूनेसे लिपी वेदीके निकट गया। यह वेदी निमन्त्रित राजाओंसे उसी तरह घिरी थी जैसे शिव-पार्वतीके विवाहमें बुलाये गये पर्वतोंसे हिमालयकी उपत्यका। वहाँ पाँच मुखवाले कलश थे, जो जल-सिञ्चनसे सुकुमार यव-अङ्कुरोंसे दन्तुर[1] लगते थे, जो भाँति भाँतिके कोमल रंगोंसे रंगे थे, और जिनके मुख अमित्रोंसे[2] युक्त थे। इन कलशों तथा मिट्टीकी प्रतिमाओंसे, जिनके हाथोंमें मंगल-फल थे, वेदीके पर्यन्त चमक रहे थे। वहाँ उपाध्यायोंद्वारा रखे जाते इन्धनोंसे धूमायमान अग्नि सुलगानेमें ब्राह्मण-साक्षी व्यग्र थे। अग्निके समीप ताजे हरे कुश रखे थे। पासमें ही शिला, मृग-चर्म, घृत, स्रुवा और समिधाके पूले पड़े थे। नये सूपोंमें रखे शमी वृक्षके हरे पत्तोंसे मिले लावेसे वेदी हँस रही थी। इस (वेदी) पर वह वैसे ही चढ़ा, जैसे ज्योत्स्नाके साथ चन्द्रमा आकाशमें। वह चञ्चल एवं अरुण ज्वालाओंवाली अग्निके समीप वैसे ही आया, जैसे रतिके साथ कामदेव लाल अशोक वृक्षके पास। अग्निमें हवन किये जानेपर ज्वालाएँ मानो वधूका मुख देखनेके

१. दाँतोंसे युक्त।

२. अमित्र शब्दका ठीक अर्थ यहाँ नहीं जान पड़ता है। इसका अर्थ 'व्याघ्र आदि शत्रुका चित्र' हो सकता है।

कुतूहलसे दाईं ओर घूमकर चलने लगीं और इन्हींके साथ वर ने भी प्रदक्षिणा की। अञ्जलि अञ्जलि लावा गिराते समय नखों से निकलती किरणोंकी प्रभासे अग्नि धवलित हो गई, मानो वह वर-वधूके अदृष्टपूर्व रूपसे विस्मित हो हँसती देख पड़ी।

इसी बीच स्वच्छ कपोलोंके भीतर प्रतिबिम्बित अग्निको मानो शान्त करती हुई, बड़े बड़े मोतियोंके समान विमल अश्रु-विन्दुओंसे दुर्दिन (का दृश्य) दिखाती हुई वधू इस तरह रोई कि उसके चेहरेपर विकार[1] नहीं दिखाई पड़ा। बान्धवोंकी वधुओं के बीच, जिनकी आँखोंमें आँसू निकल आये थे, महान् क्रन्दन हुआ। वैवाहिक क्रिया-कलाप समाप्त कर जामाताने वधूके साथ सास-ससुरको प्रणाम किया और वास-गृहमें प्रवेश किया। वहाँ द्वार-पार्श्वमें प्रणय-देवता रतिका चित्र बना हुआ था। सुहृदोंके समान अलि-कुल वहाँ पहले ही घुसकर कोलाहल कर रहे थे। वह वास-गृह मंगल-प्रदीपोंसे प्रकाशित था, जो भौरोंके परोंकी हवासे हिल रहे थे, मानो (वधूके) कर्णोत्पलके प्रहारके भयसे काँप रहे थे। एक भागमें चित्रमें फूलोंके गुच्छोंसे युक्त रक्त अशोकके तले चाप चढ़ाकर, नेत्रके तिहाई हिस्सेको तिरछा और सङ्कुचित कर, तीरको सीधा करता हुआ कामदेव खड़ा था। उपधान तथा सुन्दर बिछावनसे युक्त एक पलंग पड़ा था। इसके एक पार्श्वमें सोनेकी बनी चमरु मृगकी एक प्रतिकृति थी। और दूसरे पार्श्वमें सोनेकी एक प्रतिमा थी, जो हाथी-दाँतका बना कुमुद-विशेष धारण कर रही थी, मानो वह साक्षात् लक्ष्मी थी, जिसके हाथमें लम्बा नालवाला कमल था। पलंगके शिरो-भागमें कुमुदोंसे शोभित चाँदीका एक निद्रा-कलश रखा हुआ

१. भावावेश, अशान्तिका चिह्न।

था, मानो कामदेवकी सहायताके लिए चन्द्रमा आया हुआ था।

वहाँपर लज्जित नव वधू पराङ्मुख होकर सोई। उसके मुखके प्रतिबिम्ब मणियोंकी दीवाररूपी दर्पणोंमें पड़ रहे थे, जैसे प्रथम वार्तालाप सुननेके कुतूहलसे मणि-गवाक्षोंमें आगत गृह-देवताओंके मुख दिखते हों। वधूके ऐसे मुख-प्रतिबिम्बोंको देखते हुए जामाताने रात बिताई। श्वसुर-कुलमें रहता हुआ वह सासके हृदयमें अपने शीलसे मानो सुधा बरसाता रहा। वहाँ उसने नये नये सत्कारोंसे अपुनरुक्त[1] एवं आनन्दमय दस दिवस बिताये। तब राज-कुलमें राज-द्वारपालके समान (निश्चल) शोक देकर, यौतुकमें समर्पित पाथेयके समान सभी लोगोंके हृदय लेकर, किसी किसी तरह राजासे विदा होकर, वह वधूके साथ स्वदेश चला गया।

श्री बाणभट्टकृत हर्षचरितमें चक्रवर्ति-जन्म-वर्णन नामक
चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त।

---

१. पुनरुक्तिसे रहित, नये नये।

नामानुक्रमणी

उ = उत्तरार्ध, उच्छ्वास ५-८। टि = पाद-टिप्पणी।

शब्दानुक्रमणी

श्रीहर्षके दो दानपत्र

बंसखेरका ताम्र-लेख

हर्ष-संवत् २२। ई० सन् ६२८

श्री स्वस्ति महानौहस्त्यश्वजयस्कंधावाराच्छ्रीवर्धमानकोट्या महाराजश्रीनरवर्धनस् तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीराज्यवर्धनस् तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्यवर्धनस् तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्री महासेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिक्रांतकीर्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्तिहरः परमादित्यभक्तः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्धनस् तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातस्सितयशःप्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डलः परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजास्सत्पथोपार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसंप्रीणितार्थिहृदयोतिशयितपूर्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः-परमसौगतस्सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनः—

राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखास्सर्वे समं संयताः।
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधाङ्कृत्वा प्रजानां प्रियं
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः॥

तस्यानुजस्तत्पादानुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः अहिच्छत्रभुक्तावङ्गदीयवैषयिकपश्चिमपथकसम्बद्धमर्कटसागरे समुपगतान

महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिकप्रमातारराजस्थानीयकुमा-रामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन् प्रतिवासिजान-पदांश्च समाज्ञापयति—

विदितमस्तु यथायमुपरिलिखितग्रामस्स्वसीमापर्यन्तस्सोद्रङ्ग-स्सर्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेतस्सर्वपरिहृतपरिहारो विषयादु-द्धृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रार्कक्षितिसमकालीनो भूमिछिद्र-न्यायेन मया पितुः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकर-वर्धनदेवस्य मातुर्भट्टारिकामहादेवीराज्ञीयशोमतीदेव्या ज्येष्ठभ्रा-तृपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनदेवपादानाञ्च पुण्य-यशोभिवृद्धये भरद्वाजसगोत्रबह्वृचच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टबाल-चन्द्रभद्रस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्मणाग्रहारत्वेन प्रतिपादितो विदित्वा भवद्भिस्समनुमन्तव्यः ।

प्रतिवासिजानपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचित-तुल्यमेयभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्याया एतयोरेवोपनेयास्सेवोप-स्थानञ्च करणीयमिति । अपि च । अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहर-द्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् ।

लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया—
दानं फलं परयशःपरिपालनञ्च ॥
कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्यं प्राणिभिर्हितं ।
हर्षेणैतत्समाख्यातन्धर्मार्जनमनुत्तमम् ॥

दूतकोत्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्तः । महाक्ष-पटलाधिकरणाधिकृतमहासामन्तमहाराजभान (भानु-?) समादेशादुत्कीर्णम् ईश्वरेणेदमिति सम्वत् २० २ कार्तिक वदि १॥

स्वहस्तो म॰ .हाराजाधिराज श्रीहर्षस्य ॥

श्री स्वस्ति। नाव-हाथी-घोड़ोंसे युक्त श्रीवर्धमान कोटीके महान् राज-शिविरसे—

एक थे महाराज श्रीनरवर्धन। (उनकी रानी) वज्रिणी देवीसे उत्पन्न उनके पुत्र महाराज श्रीराज्यवर्धन उनके (= अपने पिताके) चरणोंके ध्यानमें रत और आदित्यके परम भक्त थे। उनकी (= राज्यवर्धनकी) रानी श्रीमती अप्सरोदेवीसे उत्पन्न महाराज श्री आदित्यवर्धन उनके (= अपने पिताके) चरणोंके ध्यानमें रत और आदित्यके परम भक्त थे। उनकी (= आदित्यवर्धनकी) रानी श्री महासेनगुप्ता देवीसे उत्पन्न उनके पुत्र परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीप्रभाकरवर्धन उनके (= अपने पिताके) चरणोंके ध्यानमें रत, आदित्यके परम भक्त, वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी रक्षामें प्रवृत्त और सूर्यके समान प्रजाओंके कष्ट-हारक (= दुःख-विनाशक) थे; उनकी कीर्ति चारों समुद्रोंको पार कर गई; उनके प्रताप और प्रेमसे दूसरे राजा उनके वशमें हो गये। उन (प्रभाकरवर्धन) की रानी विमल-यशवाली श्रीयशोमती देवीसे उत्पन्न उनके पुत्र परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीराज्यवर्धन उनके (= अपने पिताके) चरणोंके ध्यानमें रत, बुद्धके समान पर-हित-निरत (= परोपकारी), परम बौद्ध थे; उनकी उज्ज्वल कीर्ति सकल भूमण्डलमें व्याप्त हो गई थी; उन्होंने कुवेर वरुण और इन्द्र आदि लोक-पालोंके तेजको धारण किया, न्यायोपार्जित विपुल भूमि और प्रचुर धनके दानसे प्रार्थियों (के हृदय) को प्रसन्न किया तथा पूर्व-कालके राजाओंसे बढ़कर (श्रेयस्कर) कार्य किये—

उन्होंने युद्धमें श्रीदेवगुप्त आदि राजाओंका एक साथही दमन किया, जैसे चाबूककी चोटसे दुष्ट घोड़ोंको (कुमार्गसे) घुमाया जाय। शत्रुओंको उन्मूलित कर, पृथ्वीको जीतकर, प्रजाओंका हित-साधन कर, सत्यके अनुरोधसे* उन्होंने शत्रुके घरमें प्राण छोड़े।

उन (राज्यवर्धन) के अनुज, उनके चरणोंके ध्यानमें रत, शिवके समान सब जीवोंपर दया करनेवाले, परम शैव, परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री हर्ष अहिच्छत्र-भुक्तिके अन्तर्गत अङ्गदीय जिलाके पश्चिम पथसे

*(शत्रुका निमंत्रण स्वीकार कर) अपने वचनकी रक्षा करते हुए।

सम्बद्ध मर्कट-सागर (ग्राम) में समागत महासामंत[1] महाराज[2] दौस्साधसाधनिक[3] प्रमातार[4] राजस्थानीय[5] कुमारामात्य[6] उपरिक[7] विषयपति[8] भट[9] चाट[10] सेवक आदि तथा स्थानीय जनताको आज्ञा देते हैं—

विदित हो कि मैंने अपने पिता परम भट्टारक महाराजाधिराज देव श्री प्रभाकरवर्धन, अपनी माता भट्टारिका महारानी देवी श्रीयशोमती तथा ज्येष्ठ भ्राता परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्धनके पुण्य और यशकी वृद्धिके लिए अपनी सीमाओंतक विस्तृत ऊपर-लिखे (मर्कट-सागर) ग्रामको उसकी सम्पूर्ण आय सहित, जिसपर अब राज-कुलका कोई अधिकार न रहा, सब प्रकारके भारोंसे मुक्त तथा अपने जिलासे पृथक् कर, भरद्वाजगोत्र ऋग्वेदी भट्ट बालचन्द्र तथा भरद्वाजगोत्र सामवेदी भट्ट भद्रस्वामीको उनके पुत्र-पौत्र (—आदि भावी) संतानतक के लिए, जबतक चन्द्र सूर्य और पृथ्वी स्थित रहें, भूमि-छिद्र न्यायसे अग्रहारके रूपमें दान किया। यह जानकर आप लोग इसे स्वीकार करें।

इस गाँवके निवासी इस आज्ञाको मानकर यथोचित तुल्य-मेय भाग-भोग कर-सुवर्ण आदि सब प्रकारकी आय इन्हीं दोनों (द्विजों) को दें और इन्हींकी सेवा करें। और भी। हमारे कुलसे सम्बन्धका दावा करनेवाले दूसरे भी इस दानका अनुमोदन करें।

पानीके बुलबुलेके समान चञ्चल लक्ष्मी (= सम्पत्ति) का फल है दान देना तथा दूसरोंके यशकी रक्षा करना। मन, वचन और कर्मसे प्राणियोंका उपकार करना चाहिए, हर्षने इसको धर्मार्जनका उत्तम उपाय बतलाया है।

इस विषयमें महाप्रमातार महासामन्त श्रीस्कन्दगुप्त दूतक हैं। महाक्षपटलके कार्यालयमें महासामन्त महाराज भान (भानु ?) के आदेशसे ईश्वरने इसे उत्कीर्ण किया। कार्तिक वदी १, संवत् २२।

हस्ताक्षर महाराजाधिराज श्रीहर्ष।

१—८ ये राज्यके उच्च—पदस्थ कर्मचारी थे।

९ भट = सैनिक। १० चाट = सिपाही।

मधुवनका ताम्र-लेख

हर्ष-संवत् २५ । ई० सन् ६३१

इस दान-पत्रकी शब्दावली पूर्ववत् ही है, केवल घोषणा-स्थल ग्राम पात्र आदेशक लेखक और तिथिके सम्बन्धमें आदि मध्य और अन्तके कुछ शब्द भिन्न हैं। यहाँ ये ही शब्द उद्धृत किये जाते हैं। शेष अंशके लिए पाठक प्रथम दान-पत्र देखें।

ॐ स्वस्ति.........स्कन्धावारात् कपित्थकायाः......श्रीहर्षः श्रावस्तिभुक्तौ कुण्डधानिवैषयिकसोमकुण्डकाग्रामे.........समाज्ञापयति—

अस्तु वः संविदितमयं सोमकुण्डकाग्रामो ब्राह्मणवामरथ्येन कूटशासनेन भुक्तक इति विचार्य यतस्तच्छासनं भङ्क्त्वा तस्मादाक्षिप्य च स्वसीमापर्यन्तः......सावर्णिसगोत्रच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टवातस्वामिविष्णुवृद्धसगोत्रबह्वृचसब्रह्मचारिभट्टशिवदेवस्वामिभ्यां.............॥

.........—सामन्तमहाराजेश्वरगुप्तसमादेशाच्चोत्कीर्णं गुर्जरेण सम्वत् २० ५ मार्गशीर्ष वदि ६.........॥

ॐ स्वस्ति।.........कपित्थकाके महान् राज-शिविरसे—

.........श्रीहर्ष श्रावस्ति-प्रदेशके अन्तर्गत कुण्डधानी जिलेके सोमकुण्डका ग्राममें......आज्ञा देते हैं—

आप लोगोंको को विदित हो कि ब्राह्मण वामरथ्यने जाली दस्तावेजके बलसे इस सोमकुण्डका ग्रामपर अधिकार कर लिया था, यह देखकर उसके शासनको रद कर (उसके दस्तावेजको फाड़कर) उससे छीनकर अपनी सीमाओंतक विस्तृत इस ग्रामको......सावर्णि-गोत्र सामवेदी भट्टवात स्वामी तथा विष्णुवृद्ध-गोत्र ऋग्वेदी भट्ट शिवदेव स्वामीको......। ......सामन्त महाराज ईश्वरगुप्तके आदेशसे गुर्जरने इसे उत्कीर्ण किया। मार्गशीर्ष वदि ६, संवत् २५ । ......।

अतिरिक्त टिप्पणी

पृष्ठ २ । शरभके लिये देखिए—

सर्वप्राणिविहिंसकः बलवान् क्षतजाहारो
नानासत्त्वभयङ्करः अष्टपाद् ऊर्ध्वनयनः
शरभो वनगोचरः तं सिंहं हन्तुमागच्छत् ।

—महाभारत शान्तिपर्व ११७।

पृष्ठ ११२-१४ द्विजराज ने·········युधिष्ठिरने···

यह अंश सुबन्धु-कृत-वासदत्ताके अंशसे मिलता है। थोड़ा-सा अन्तर है। बाणने हर्षचरितकी प्रस्तावनामें वासवदत्ताकी जो प्रशंसा की है उससे स्पष्ट है कि उसने वासवदत्ताको पढ़ा था और उस मेधावीने अपनी रुचिके अनुकूल इसके कितने ही अंशोंको आत्मसात् कर लिया होगा। काणेके अनुसार इस प्रकारके उदाहरण सम्भवतः पहले ही संगृहीत हो चुके थे, जिनसे सुबन्धु और बाणको प्रेरणा मिली।

पृ० ९८ उ स्तवरक = कीमती रेशमी कपड़ा। यह फारसीके पूर्व रूप पहलवी भाषाका शब्द है। स्तवरक ईरानमें इस्तब्रक कहलाता था और वहाँसे पूर्वमें भारतवर्ष लाया जाता था और पच्छिम में अरबको जाता था। (अरबी भाषामें लिखे गये) कुरानके उस प्रकरणमें जहाँ स्वर्गीय स्त्रियोंका वर्णन है, इस्तब्रक कपड़ेका उल्लेख हुआ है, जिससे हूरोंके शरीर अलंकृत थे और जिसे कुरानके सभी टीकाकारोंने विदेशी शब्द माना है। वह कपड़ा नहीं रहा और इसी कारण बादके संस्कृत साहित्य और उससे निकली हुई भाषाओंमें उस शब्दका कोई रूपान्तर नहीं बचा।

देखिये ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५४ अङ्क १ में 'आजकल'से उद्धृत श्री वासुदेवशरण अग्रवालका 'शब्दोंका जाल' शीर्षक लेख।

हर्षचरितमें उल्लिखित कपड़ों और पहनावोंकी पहचानके लिए देखिये ना० प्र० प० के विक्रमाङ्कके उत्तरार्धमें प्रकाशित डा० मोतीचन्द्का भारतीय 'वेष-भूषा' शीर्षक लेख।

पृ० १४२-४४ उ। "रास्तेमें उसने क्रमसे भाँति भाँतिके तरु देखे..." इस पैराका कुछ अंश वासवदत्तासे मिलता है।

पृ० १७५ उ, पंक्ति १-२। देखिये—

अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं पशुम्।
वैवस्वतो न तृप्यति सुरया इव दुर्मदी॥

—महाभाष्य

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
पाँच	१६	अनुचित
छः	२५	१२१-२७ ड
सात	२४	अजिरवती
आठ	१३	स्वेच्छाचारी
सोलह	४	पश्चादंघ्रि
अठारह	२३	लुबाख्यायिकाभ्यो
इक्कीस	२१	परिहास
चौबीस	१	दिया
चौबीस	२२	०हरिण०
चौबीस	२२	गुर्जर०
चौबीस	२२	०द्विप०
पच्चीस	१९	मूँद
सत्ताईस	२२	ह्वेनसांग
इकतीस	२१	मदमुचां वृन्दानि
इकतीस	२२	श्रीहर्षेण
इकतीस	२२	तत्
बत्तीस	२	ब्राह्मणों को
२	१७	उच्छ्वास
३	१	उच्छ्वास
२२	८	शफरीके
३१	९	जान पड़ा
६९	१०	आनेवाले

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
८४	१८	सींच
९०	२२	५. बोधिसत्त्व, दृष्टि
९२	२	कठिन
१०९	७	सूचीबाण
१३९	१६	—एक
१६८	३	योगमें
१६८	१३	करने लगी
१७२	७	गर्भके गर्भके
१७३	१९	मेघ-गर्जन
१७४	६	रागको
१७४	१९	चादरें
१७५	१५	अन्तरिक्ष
१७५	१९	किङ्किणीमयी
१८६	१६	बैसा
१९०	२४	नहीं हो’
१९१	१२	वधू-वदन
१९१	१२	संध्याकालीन
१९१	१८	थे, जिनके
३१३	८	माताने अपने हाथ
३३३	९	जलायगी

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
५५उ	११	पूरु
५९उ	१६	वैसी... (नये पैरामें)
१३०उ	२	राज्यश्रीने सपरिवार

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
		(= परिचारि-काओंसमेत)
१४५उ	५	समान वे
१५४उ	१४	बर्बर
१५९उ	८	सुभाषित

कुछ सम्मतियाँ

कालिम्पोंग
दिसम्बर, १९४९ ।

प्रिय चौधरी जी,

आपका कार्ड मिला। मैंने आपके हिन्दी अनुवाद सहित 'सौन्दरनन्द' के बहुतसे भागों और 'हर्षचरित' (उत्तरार्ध) के हिन्दी अनुवादको सारा पढ़ डाला सौन्दरनन्दका आपका अनुवाद मूलानुसार ही है। हर्षचरितका अनुवाद जितनी योग्यतासे आपने किया है इसके लिए प्रशंसाके कुछ शब्द पर्याप्त नहीं होंगे। मेरा आग्रह है कि आप सारे हर्षचरितको हिन्दीका रूप दे डालें और कादम्बरीको भी हिन्दीमें ला देना अपने जीवनका लक्ष्य बना लें। बाणके महत्त्वको हिन्दीवालोंको समझना होगा। आपके अनुवादको देखकर मुझे विश्वास है कि आप बाणके साथ न्याय कर सकेंगे। आपकी लेखनीको तत्पर और आपके तपस्वी जीवनको दीर्घायु होनेकी कामना रखता हूँ।

आपका
राहुल सांकृत्यायन

हर्षचरितः—

बाणभट्टके हर्षचरित–जैसे दुरूह काव्यको यथासाध्य हिन्दी पाठकोंके अनुकूल बनानेके सफल प्रयास किये हैं। इस युगमें कादम्बरीसे भी अधिक महत्त्व इस काव्यका है; क्योंकि यह ऐतिहासिक सत्य लिये हुए काव्यका आनन्द प्रदान करता है। विशेषतः उस युग की सभ्यता और संस्कृतिका भी चित्रण सम्मुख उपस्थित कर उपादेय बन जाता है। अनुवाद बड़ी छानबीनके बाद किया गया है, अतएव इसकी प्रामाणिकता निस्सन्देह प्रतिष्ठित है। बाणभट्टकी अमर कीर्ति कादम्बरीकी भाँति यह ग्रन्थ भी गद्य काव्य ही है।

—विशाल भारत अगस्त १९४८।

सौन्दरनन्द काव्यः—

सदाचरणकी प्रवृत्ति रखनेवाले व्यक्तियोंके लिए यह अत्यन्त उपयोगी काव्य-ग्रन्थ है। इस सरल ग्रन्थका अनुवाद बहुत सरल एवं सरल हिन्दीमें किया गया है। बुद्धके उपदेशोंको ग्रहण करानेमें यह काव्य ग्रन्थ बड़ा ही उपादेय है।—विशाल भारत, अगस्त १९४८

(सौन्दरनन्दके) अनुवादकी भाषा सुन्दर और सुबोध है।

—बलभद्र ठाकुर (जीवन-साहित्य, अक्तूबर १९४८ ई०)।

बुद्धचरितः—

जिस ग्रन्थकी अनेक बुद्ध-भक्त कई दिनोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे, वह चौधरीजीके सत्प्रयत्नसे प्राप्त हो सका है। प्रथम शताब्दीके आसपास कवि-कुल-गुरु कालिदासके भी पूर्वज महाकवि अश्वघोषने जिस सुन्दर महाकाव्यकी रचनाकी थी, उसके देशवासियोंने इधर उसके प्रति अक्षम्य लापरवाहीका परिचय दिया। श्री सूर्यनारायण चौधरीने उस महान् काव्य-ग्रन्थ के अधिकांशका मूल संस्कृत और शेषका हिन्दी अनुवादमात्र प्रकाशित करके उस लापरवाहीका प्रायश्चित्त ही नहीं किया; अपितु आजके संस्कृत तथा हिन्दी साहित्यमें श्री-वृद्धि भी की है।

अनेक काव्य-ग्रन्थ अपनी शृंगारिकतासे विकाराग्निके लिए घृत-रूप सिद्ध होते हैं, लेकिन, अश्वघोषका यह बुद्धचरित महाकविके अपने शब्दों में—

"मनुष्योंके हित-सुखके लिए, न कि विद्वत्ता या काव्य-कौशल दिखानेके लिए रचा गया है।"

उत्कृष्ट काव्य-रसास्वादनके साथ-साथ कल्याणकारी उपदेशामृतका जो पान करना चाहें वे इसे अवश्य पढ़ें।

—भदन्त आनन्द कौसल्यायन (राष्ट्रभाषा, अगस्त १९४४)

"बुद्धचरित अनुवादके प्रत्येक पृष्ठपर सावधानी सचाई और श्रमकी छाप है। आपकी चुस्त संक्षिप्त बामुहावरा तो भी मूलका अर्थ ज्योंका त्यों देनेवाली शैली मुझे बहुत रुची।"

—जयचन्द्र विद्यालंकार (कैम्बलपुर जेलसे)।

"अनुवाद शाब्दिक और प्रामाणिक है।"

—भरतसिंह उपाध्याय, (जीवन-साहित्य, एप्रिल १९४८)।

"पुस्तक बहुत अच्छी है"—सेठ जुगलकिशोर बिरला।

"अनुवाद मूलानुसारी और स्पष्ट है। भाषा सरल और सुबोध है और वह मूल भावोंको हृदयङ्गम करनेमें पूरी सहायता देती है।"

—सरस्वती, अप्रैल १९४३।

"अश्वघोषका यह काव्य भगवान् बुद्धके जीवनकी एक झलक है। शैली सरस और वर्णन अलङ्कारपूर्ण है। अनुवाद इतना अच्छा हुआ है कि मूल श्लोकोंका आनन्द आ जाता है। यह ग्रन्थ प्रत्येक भारतीयके पढ़ने और संग्रह करने योग्य है।"

—स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (विशाल-भारत, जून १९४३)।

"A faithful rendering in simple Hindi."

—MODERN REVIEW, SEPTEMBER, 1943.

"Your Translation is excellent. It is quite close to the original. It has at the same time preserved almost all the qualities of the Sanskrit Text. The perusal of the Translation produces on the mind of a reader almost the same impression as is created on him by the study of the poem in its original text.

—LATE DR. LAKSHMAN SARUP, LAHORE.

"I have read portions of it with absorbing interest. The Hindi rendering is faithful and brings out the spirit of the original.

DR. AMARANATH JHA, ALLAHABAD.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.